ओ३म्   कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

साप्ताहिक नई दिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे | वर्ष १ | अंक ४ | रविवार ४ दिसम्बर, १९७७ | दयानन्दाब्द १५

स्व० प्रकाशवीर जी शास्त्री आर्यसमाज की निधि थे

श्री ओमप्रकाश जी पुरुषार्थी (संसद सदस्य)

एक श्रद्धांजलि

स्व० श्री प्रकाशवीर शास्त्री मेरे परम मित्रों में से थे। उन्हे मैंने बड़े समीप से देखा था। श्री शास्त्री जी अनेकों विशेषताओं के धनी थे। व्यवहारिकता में उनका सानी मिलना कठिन है। उनके समीप जो आता वह उनसे प्रभावित हुये बिना नही रहता था। उनकी वाणी व व्यवहार में वह मिठास थी कि उनके मित्रो व प्रशंसको का देश भर मे जाल बिछा था। व्यक्तियो की परख करना वे जानते थे। दूरदर्शिता उनके सभी कामो के पीछे छिपी रहती थी।

आर्य समाज की वह एक निधि थे। वैदिक धर्म के प्रचार की उनकी अनूठी प्रणाली थी। वह कोई प्रचारक न होकर सफल नेता भी थे। वह स्वय एक जीती जागती सस्था थे। जिस सस्था को वह अपने हाथ लेते वह जीवित हो जाती थी। जिस सभा मे वह बैठे हो उनकी तरफ सब का ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक था। आर्य समाज को ऊँचा उठाने की उनमे बडी तडफ थी। उन्होने अनेकों सम्मेलनो का आयोजन कर देश के बडे-२ नेताओ को आर्य समाज के चरणो मे खडा किया।

स्वर्गीय प्रकाशवीर जी शास्त्री जिनका २३ नवम्बर, १९७७ को रिवाड़ी के पास रेल दुर्घटना में निधन हो गया।

राजनीनि में प्रवेश करके भी वह आर्य समाज मे सक्रिय बने रहे। दोनों तरफ उनका योगदान समान था। लोक सभा व राज्य-सभा मे जब कभी वह बोलते थे तो अपने विषय को गहराई एव प्रभावी ढग से रखते थे। अपने भाषण मे कटुता लाना वह जानते ही नही थे। यही कारण था कि सभी राजनीतिक पार्टियो के प्रमुख नेता उनसे प्रभावित थे। ससद मे राष्ट्र-भाषा हिन्दी को स्थान दिलाने मे उनका प्रमुख हाथ था। उनके पहुँचने से पूर्व हिन्दी को गुलामो की भाषा या छोटे लोगो की भाषा समझा जाता था परन्तु उनके पहुँचने पर वह भ्रान्ति समाप्त हो गई।

सार्वजनिक कार्य-कर्ता होते हुए बहुत कम व्यक्ति अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों को निभा पाते है, परन्तु शास्त्री जी ने बडी ही खुशी से अपने पारिवारिक कर्तव्य को अन्त तक निभाया। अपने ही बच्चे नही अपितु अपने समस्त सम्बन्धियों को ऊँचा उठा दिया। जिस परिवार मे उन्होने जन्म लिया उसे ऊँचा उठाकर सम्मानित परिवार बनाकर खडा कर दिया।

वे वास्तव मे आर्य समाज के एक सबल स्तम्भ थे उनके जाने से सचमुच मे आर्य समाज की भारी क्षति हुई है। वे अपने स्वप्नो को अपने साथ ही ले गये। मेरी हार्दिक श्रद्धाजलि उनको अर्पित है।

'प्रकाशवीर शास्त्री प्रवासी भवन' का निर्माण होगा—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रामगोपाल जी की घोषणा : सरकार से रंजीत होटल के सामने भूमि प्रदान करने की अपील।

दिल्ली २८-११-७७—रविवार २७ नवम्बर की साय ४ बजे आर्य समाज मन्दिर दीवान हाल मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वाधान मे श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री की शोक सभा मे आर्य जगत के सुप्रसिद्ध नेताओं ने भावपूर्ण श्रद्धाजलि अर्पित की। सभा की अध्यक्षता आर्य जगत के बीतराग सन्यासी स्वामी सत्य प्रकाश जी ने की।

सर्व श्री राममेयर एडवोकेट रोहतक, सोमनाथ एडवोकेट प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, प्रोफेसर रत्न सिंह जी गाजियाबाद, स्वामी दीक्षानद

सम्पादक : सरदारीलाल वर्मा, सह-सम्पादक : सत्यपाल

वे हमेशा देश भक्ति से कार्य करते रहे

प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने स्व० प्रकाशवीर शास्त्री को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा 'वे हमेशा देश भक्ति से कार्य करते रहे। वे भारतीय संस्कृति, वैदिक धर्म, देश की एकता और हिन्दी भाषा में अनन्य आस्था रखते थे। परन्तु वे कट्टर नहीं थे, शालीनता थी उनके व्यवहार एवं भाषा में।'

२५ नवम्बर साय ५ बजे मावलकर भवन मे हुई शोक-सभा मे बोलते हुए उन्होने आगे कहा कि वे कभी बोलने के लिए नही बोलते थे, कोई ठोस विचार व्यक्त करने के लिए बोलते थे। हिन्दी को इतने प्रभावी ढग से बोलने वाले बहुत कम ही मिलेगे।

अपने भाषण को समाप्त करते हुए उन्होने कहा कि उनकी तमन्ना थी कि देश सुखी रहे। हमे चाहिए कि हम भारतीय सस्कृति को और मजबूत बनाएँ, यही हमारी उनके प्रति श्रद्धाजलि होगी, यही मेरी उनके प्रति श्रद्धाजलि है।

काग्रेस दल के ससदीय नेता श्री यशवत राय चह्वान ने श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहा कि वे राज्यसभा के सदस्य, सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिज्ञ सब कुछ थे। सबसे आखिर में वे प्रकाश वीर शास्त्री थे। इसके साथ उन्होने कहा कि इतनी प्रवाही हिन्दी बोलने वाला मैंने नही देखा।

विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने बहुत अवसादी आवाज में उन्हे श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि वे वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड पंडित, राष्ट्र संस्कृति के व्याख्याता, जाने माने साहित्यकार, दूरदृष्टा एवं समाज सुधारक थे। उनके विरोध मे प्रखरता तो होती थी लेकिन कटुता नही। चोट वे करते थे लेकिन उसमे उनकी गिराने की भावना नही होती थी। उनकी धाराप्रवाह भाषा को सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे।

मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री केदार नाथ साहनी ने कहा, आज हजारो परिवार ये अनुभव कर रहे है, मानो उनका निजी बधु उठ गया हो।' राज्यसभा की सदस्या श्रीमती मारग्रेट अल्का ने कहा कि वे एक महान देशभक्त थे। धार्मिक भेद उनके लिए महत्त्व नही रखता था।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रामगोपाल जी शालवाले ने कहा कि शास्त्री जी महान देशभक्त और वैदिक धर्म के महान प्रचारक थे।

मच पर सूचना मत्री श्री आडवानी, भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी, स्वर्गीय प्रकाशवीर शास्त्री की बहन श्रीमती सुशीला, पत्नी श्रीमती यशोज व परिवार के बच्चे मुँह लटकाए अवसादग्रस्त मुद्रा मे बैठे थे।

भवन में बहुत-सी बत्तियां लगी हुई थीं तथापि चहुँ ओर अंधकार-अंधकार-सा प्रतीत होता था। शायद शोक इतना व्याप्त था लोगों ने मनो में कि बाहरी रोशनी बुझी-बुझी प्रतीत हो रही थी। (स० स०)

(पृष्ठ १ का शेष)

सरस्वती, प्रो० शेरसिह राज्य मन्त्री भारत सरकार, प० शिवकुमार शास्त्री, श्री ओ३म प्रकाश जी त्यागी ससद सदस्य, श्रीमती सरला मेहता मन्त्रणी प्रान्तीय महिला सभा, श्री सच्चिदानंद शास्त्री एव लाला रामगोपाल जी वानप्रस्थ ने भावपूर्ण शब्दो मे शास्त्री जी के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की। श्री शास्त्री जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा की वक्ताओ ने सराहना करते हुये बताया कि स्व० प्रकाशवीर जी के दिल मे आर्य समाज एव ऋषि दयानद जी के मिशन को विश्वयापी आन्दोलन बनाने की उमग थी एव कई प्रकार योजनायें उनके मस्तिष्क मे थी। शास्त्री जी चलते-फिरते अपने आप मे एक आर्य समाज थे। उनके निधन से जो क्षति आय समाज को हुई है उसे पूर्ण करना कठिन है। सार्वदेशिक सभा के मान्य प्रधान श्री लाला रामगोपाल जी ने शास्त्री जी की स्मृति में उनको पाच पुस्तके जो उन्होंने लिखी थीं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से प्रकाशित कराने की घोषणा की और यह भी घोषणा की कि शास्त्री जी की इच्छानुसार दिल्ली में एक विशाल प्रभावी भवन उनकी स्मृति मे निर्माण किया जायगा। प्रो० शेर सिह एवं श्री ओ३म् प्रकाश त्यागी जी ने प्रार्थना की कि प्रयत्न करके सरकार ने रजीत होटल के समक्ष खाली प्लाट इस प्रस्तावित भवन के लिये प्राप्त करें। भवन निर्माण की जिम्मेवारी सार्वदेशिक सभा लेगी।

त्वावते हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्र ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः॥
ऋक्. ७.२५.४॥

शब्दार्थ—

(इन्द्र) हे परमेश्वर! मैं **(त्वावत)** तेरे जैसे [आत्मीय] के **(क्रत्वे)** कर्म के लिये **(हि)** ही, निःसन्देह **(अस्मि)** हूँ, सदा उद्यत हूँ और **(शूर)** हे शूर! **(त्वावतः)** तेरे जैसे **(अवितुः)** रक्षक के **(रातौ)** दान में भी हूँ। परन्तु **(तविषीव)** हे सेना वाले! **(उग्र)** हे उग्र! ओजस्विन्! तुम अब **(विश्वाइत् अहानि)** सब ही दिनों के लिये, हमेशा के लिये मुझ में **(ओक)** अपना घर **(कृणुष्व)** कर लो, बना लो **(हरिवः)** हे हरियों वाले! **(न मर्धीः)** मुझे मरने न दो।

भावार्थ

जगदीश्वर! तुम मेरे आत्मा के भी आत्मा हो। यह जान लेने पर अब मैं तुम्हारे जैसे आत्मीय के कर्म के लिए सदा उद्यत रहता हूँ। मैं प्रात से सायकाल तक और फिर सायं से प्रात तक जो कुछ करता हूँ वह सब प्रभो! तुम्हारे लिये करता हूँ। हे शूर! तुम सब जहान के रक्षक हो। इसलिये, तुम्हारे लिये कर्म करता हुआ मै अब तुम्हारे जैसे महान् रक्षक के दान में भी हो गया हूँ, तुम्हारी महान् रक्षा में आ गया हूँ। तुम से मेरा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। परन्तु फिर भी यह ससार सग्राम बड़ा विकट है। पाप की प्रबल शक्तियां मुझे समय समय पर अपना भय दिखलाती है, मुझे सत्रस्त करती रहती है। उस समय, हे इन्द्र! मै सब सुध बुध भूल जाता हूँ। तुम्हारी रक्षा, शक्ति, सब भूल जाता हूँ। इसलिये मैं तो चाहता हूँ कि हे इन्द्र! तुम मुझ मे अब अपना घर कर लो, हमेशा के लिये घर कर लो। अपनी दिव्य सेना के साथ, अपनी सब उग्रता और ओजस्विता के साथ मुझ मे अपना घर बना लो। हे सेना वाले! हे उग्र! मुझ मे अपना घर बना लो। तभी ये आसुरी शक्तियाँ मुझे भयभीत न कर सकेगी। नही तो मैं इन भयो और आशंकाओ से ही मरा जा रहा हूँ। हे इन्द्र! मुझे इस मरने से बचाओ, मुझ में अपना स्थिर घर करके मरने से बचाओ। मैं तुम से और कुछ नही चाहता, और कुछ आकाक्षा नही करता, बस, मुझ मे अब अपना घर बनाओ। हे हरिओ वाले! तुम अपनी ज्ञानक्रिया और बलक्रिया के हरियों से इस सब संसार का धारण पोषण कर रहे हो, तुम मुझे अब इस तरह विनष्ट मत होने दो, मुझ मे अपना घर बनाओ और इस तरह मुझे विनष्ट होने से बचाओ।

श्री अमर स्वामी जी महाराज ने श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री के आकस्मिक, असामयिक और दुःखद निधन को सुनकर एक पद्य उनके विषय में लिखा और कहा कि—प्रकाशवीर जी के निधन पर मुझको जितना दुःख हुआ इतना किसी की भी मृत्यु पर नही हुआ था।

प्रकाशवीर धन्य था

विद्याविशारद विनम्रता की मूर्ति था वह,
भूलकर भी स्वप्न मे भी वह न अहंमन्य था।
धर्म सुकार्य मे भी पीछे कभी रहा नही,
राजनीति क्षेत्र मे वक्ता अग्रगण्य था॥
जिसके वक्तव्य का प्रभाव सभी मानते थे,
जिसके समान मधुर "अमर" नही अन्य था।
संसद के मध्य हसरूप था विवेकशील,
नीर क्षीर ज्ञान में 'प्रकाशवीर' धन्य था॥

अमर स्वामी प्रेषक . लाजपतराय आर्य

आंध्र एवं तमिलनाडु की तूफान ग्रस्त जनता की दिल खोलकर सहायता करें

सभा प्रधान श्री सोमनाथ जी का दिल्ली की आर्य समाजों से अनुरोध

आंध्र प्रदेश एव तमिलनाडु में अभूतपूर्व तूफान मे जो जान एवं माल की भीषण क्षति हुई है, आपको उसकी जानकारी समाचार-पत्रों, आकाशवाणी एव दूरदर्शन से मिल चुकी होगी। आर्यसमाज ऐसी विपत्ति के समय तन, मन एव धन से सेवा करने मे सदैव अग्रसर रहा है। आर्य जनता एव सभी आर्यसमाजो से अनुरोध है कि वे आर्यसमाज की परम्परा के अनुरूप अधिक से अधिक धन, खाद्य-सामग्री एव वस्त्र एकत्रित करके सभा कार्यालय (१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली) मे शीघ्र भिजवाने का कष्ट करे ताकि प्राकृतिक विपत्ति में फसे लोगों की सहायता की जा सके।

गत अगस्त मास में दिल्ली की आर्यसमाजों ने दिल्ली के बाढ़ पीड़ितों की जो सेवा की, उसकी सम्पूर्ण देश मे प्रशंसा हुई। मुझे विश्वास है कि दिल्ली की आर्य जनता अपने दक्षिणी भाइयो को राहत प्रदान करने मे पूर्ण सहयोग देकर आर्यसमाज की परम्परा को पूर्णतया निभायेगी।

दानी व्यक्तियो के नाम एव दान की सूची पत्र मे प्रकाशित की जाएगी।

हा प्रकाश वीर शास्त्री

हमारे आन्ध्र प्रदेश मे तूफान से बीस हजार लोग मर गए और अरबों की सपत्ति नष्ट हो गई।

किन्तु प० प्रकाश वीर जी शास्त्री के निधन से आर्य जगत् की इससे भी अधिक गभीर क्षति हुई है। हैदराबाद की आर्य जनता इस महान् क्षति से अत्यन्त दुखी है।

अभी जब अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान हैदराबाद की ओर से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के तत्वावधान मे १५ दिसम्बर से १ जनवरी ७८ तक अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह के आयोजन का निश्चय हुआ तो मै श्री शास्त्री जी के निवास स्थान पर गया और योजना रक्खी तो वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले वेद और ऋषि दयानन्द के इस पवित्र कार्य में आप जो भी मेरे योग्य सेवा लगाये मुझे सहर्ष स्वीकार है। न करने का प्रश्न ही पैदा नही होता।

वे इस समारोह की सयोजन समिति के उपाध्यक्ष थे और उन्होंने इस समारोह को सफल बनाने की अपील स्वयं अपने हस्ताक्षरो से भी की जो प्रकाशित हो चुकी है।

अब इस समारोह को जो ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य की शताब्दी के रूप में २६ मार्च से ९ अप्रेल तक आयोजित है। आओ इसे सफल बनाकर हम सब अपने प्रिय शास्त्री जी को क्रियात्मक श्रद्धांजलि अर्पित करें।

प० वेद भूषण
(हैदराबाद के प्रसिद्ध आर्य नेता)

'आर्य सन्देश का' "श्रद्धानन्द बलिदान विशेषांक"

सहर्ष सूचित किया जाता है कि 'आर्य सन्देश' का २५ दिसम्बर का अंक 'स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान विशेषांक' होगा। अत: विद्वानों से प्रार्थना की जाती है कि वे स्वामी जी से सम्बन्धित रचनाएँ शीघ्रता से हम तक पहुचाने का कष्ट करे।

धन्यवाद

सम्पादक

अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह के स्वागताध्यक्ष श्री लालकृष्ण अडवानी निर्वाचित

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री स्वागत मंत्री

२८ नवम्बर के दिन सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री लाला रामगोपाल जी वानप्रस्थ श्री ओम प्रकाश त्यागी (ससद सदस्य) एव प० वेद भूषण (सयोजक अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह समिति) ने श्री लालकृष्ण जी अडवानी (सूचना एव प्रसारण मत्री भारत सरकार) से भेट की और श्री अडवानी जी से समारोह के स्वागताध्यक्ष की स्वीकृति प्राप्त की।

श्री आचार्य वैद्य नाथ जी शास्त्री इस समारोह के स्वागत मत्री निर्वाचित हुए हैं।

समारोह की तिथियों में परिवर्तन

आध्र एव तमिलनाडु मे भयानक समुद्री तूफान द्वारा अभूतपूर्व क्षति एव तूफान ग्रस्त अपने भाइयों की सहायनार्थ कैम्प खोलने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह की तिथियों में परिवर्तन किया गया है अब यह समारोह २६ मार्च से ९ अप्रेल तक भव्य रूप में रामलीला मैदान मे मनाया जायगा।

इसकी अधिकारिक घोषणा शीघ्र ही कर दी जाएगी। समारोह की तैयारियाँ यथा पूर्व जारी रहेगी और समारोह को पूरे पूर्व गौरव के साथ मनाने के प्रयत्न तीव्र गति से जारी रहेंगे।

आर्य पुरोहित सभा दिल्ली प्रदेश

शोक प्रस्ताव

प्रसिद्ध राजनैतिक, हिन्दी प्रचारक तथा वैदिक विद्वान स्वर्गीय श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री के आकस्मिक निधन पर आर्य पुरोहित सभा शोक प्रकट करती है।

मत्री

॥ आर्य सन्देश ॥

स्वामी स्वरूपानद, आर्य संन्यासी

(कवित्त)

वैदिक संस्कृति के अमृतमय उपदेश को,
पहुंचा रहा है रफ्तार तेज कर।
अंधकार पथ में सूर्य बन प्रकाश करे,
हृदय अन्दर देता सदगुणो की रेजकर॥
तर्क का कुठार लिये ऋषि का चुकता ऋण,
विद्वानों की लेखनी सुशोभित हर पेज पर॥
हर्ष है "आर्य सन्देश" नवीन प्रकाशित हुआ,
आर्यो ग्राहक बनिये पंद्रह रुपये भेजकर॥

शोक प्रस्ताव

आर्यसमाज गाधी नगर मे साप्ताहिक सत्सग मे श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के निधन पर दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धाजलि भेंट की गई तथा उनकी आर्यसमाज व राष्ट्र के प्रति सेवाओ पर विचार व्यक्त किये गये।

मन्त्री
आर्य समाज गाधी नगर

स्वामी दयानन्द का मेरे जीवन पर प्रभाव

—चौ० चरणसिंह

मै जहां राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी को अपना गुरु या प्रेरक मानता हूं, वहां धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में मुझे सबसे अधिक प्रेरणा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने दी। इन दोनों विभूतियों से प्रेरणा प्राप्त कर मैने धार्मिक व राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया था। एक ओर आर्यसमाज के मंच से हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध मैं सक्रिय रहा, वहां कांग्रेसी कार्यकर्त्ता के रूप में भारत की स्वाधीनता के यज्ञ में मैंने यथाशक्ति आहुतियां डालने का प्रयास किया।

स्वदेशी, स्वभाषा व स्वधर्म का गौरव

छात्र जीवन में, लगभग १६-२० वर्ष की आयु मे स्वामी सत्यानन्द लिखित महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी पढी। मुझे लगा कि बहुत समय बाद भारत मे सम्पूर्ण मानव गुणों मे युक्त एक तेजस्वी विभूति महर्षि के रूप मे प्रकट हुई है। उनके जीवन की एक-एक घटना ने मुझे प्रभावित किया, प्रेरणा दी। स्वधर्म (वैदिक धर्म) स्वभाषा, स्वदेशी, स्वराष्ट्र, सादगी सभी भावनाओ से ओत-प्रोत था, महर्षि का जीवन। राष्ट्रीयता की भावनाए तो जैसे उनकी रग-रग मे ही समायी हुई थी। इन सब गुणो के साथ तेजस्विता उनके जीवन का विशेष गुण थी। इसीलिए आर्यसमाज के नियमों मे सत्य के ग्रहण करने एव असत्य को तत्काल त्याग देने को उन्होने प्राथमिकता दी थी।

महर्षि दयानन्द की एक विशेषता यह थी कि वे किसी के कन्धे पर चढ कर आगे नही बढे थे। अंग्रेजी का एक शब्द भी न जानने के बावजूद हीन भावना ने आज कल के नेताओ की तरह, उन्हें ग्रसित नही किया। अपनी हिन्दी भाषा, सरल व आम जनता की भाषा मे उन्होने 'सत्यार्थप्रकाश' जैसा महान् ग्रन्थ लिखा। इस महान् ग्रन्थ मे उन्होने सबसे पहले अपने हिन्दू समाज मे व्याप्त कुरीतियो पर कडे से कड़ा प्रहार किया। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, महिलाओं की शिक्षा की उपेक्षा, अस्पृश्यता, धर्म के नाम पर पनपे पाखण्ड आदि पर जितने जोरदार ढग से प्रहार स्वामी जी ने किया, उतना अन्य किसी धार्मिक नेता या आचार्य ने नही किया। अपने समाज में व्याप्त गली-सडी कुरीतियो पर प्रहार करने के बावजूद स्वामी जी ने, राजा राममोहन राय आदि पश्चिम से प्रभावित नेताओ की तरह वैदिक धर्म को उन दोषो के लिए दोषी नही ठहराया, वरन् स्पष्ट किया कि वैदिक, हिन्दू धर्म सभी प्रकार की बुराइयो व कुरीतियो से ऊपर है, वैदिक धर्म वैज्ञानिक व दोषमुक्त धर्म है, तथा उसकी तुलना अन्य कोई नही कर सकता।

स्वामी जी ने अपने वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के उद्देश्य से आर्यसमाज की स्थापना की। उन्होने नाम भी आकर्षक व प्रेरक चुना। 'आर्य' अर्थात् श्रेष्ठ समाज। इसमे न किसी जाति की सकीर्णता है, न किसी समुदाय की। जो भी आर्यसमाज के व्यापक व मानव-मात्र के लिए हितकारी नियमो मे विश्वास रखे, वही 'आर्यसमाजी'। 'आर्यसमाज' नाम से उनकी दूरदर्शी, व्यापक व सकीर्णता से सर्वथा मुक्त दृष्टि का ही आभास होता है।

स्वामी जी ने स्वदेशी व स्वभाषा पर अभिमान करने की भी देशवासियो को प्रेरणा दी। अंग्रेजी को वे विदेशी, अपना भाषा तथा अपनी वेष-भूषा अपनाने पर बल देते थे। जिन परिवारो मे वे ठहरते थे, उनके बच्चो की वेश-भूषा पर ध्यान देते थे तथा प्रेरणा भी देते थे कि हमे विदेशो की नकल छोडकर अपने देश के बने कपडे पहनने चाहिए, अपना काम-काज 'सस्कृत व हिन्दी' में करना चाहिए। गाय को स्वामी जी भारतीय कृषि व्यवस्था का प्रमुख आधार मानते थे। इसीलिए उन्होने 'गोकरुणानिधि' लिखी तथा गोरक्षा के लिए हस्ताक्षर कराये। वे ग्रामो के उत्थान, किसानों की शिक्षा की ओर ध्यान देना बहुत जरूरी मानते थे।

जाति प्रथा के विरुद्ध चेतावनी

स्वामी जी दूरदर्शी सन्यासी थे। उन्होंने इतिहास का गहन अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि जब तक हिन्दू समाज जन्मना जाति प्रथा की कुरीति मे ग्रस्त रहेगा वह बराबर पिछड़ता जायेगा। इसीलिए उन्होने 'सत्यार्थप्रकाश' में तथा अपने प्रवचनो मे जाति प्रथा व अस्पृश्यता पर कडे से कडे प्रहार किये। वे दूरदर्शी थे अत उन्होंने पहले ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि यदि हिन्दू समाज ने जाति प्रथा व अस्पृश्यता के कारण अपने भाइयो से घृणा नही छोडी, तो समाज तेजी से बिखरता चला जायेगा, जिसका लाभ विधर्मी स्वत उठायेगे। उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि अस्पृश्यता का कलक हिन्दू धर्म के साथ-साथ देश के लिए भी घातक होगा।

महर्षि की प्रेरणा पर आर्यसमाज के नेताओ—लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द आदि ने अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान चलाया। आर्यसमाज ने जन्मना जाति प्रथा की हानियो से लोगो को समझाने का प्रयास किया। किन्तु आज तो जाति-पाति की भावनाएँ धर्म के नाम पर नही, 'राजनीतिक मठाधीशो' द्वारा राजनीतिक लाभ की दृष्टि से अपनायी जा रही हैं। आज तो आर्यसमाज को इस दिशा मे और भी तेजी से सक्रिय होने की जरूरत है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो अथवा आर्यसमाज के दस नियमो का पूरी तरह पालन तो बहुत ही निर्भीक सयमी व तेजस्वी व्यक्ति कर सकता है, परन्तु इस दिशा मे मैंने यथा-सम्भव कुछ-कुछ पालन करने का प्रयास अवश्य किया है।

मैने सात वर्षो तक निरन्तर गाजियाबाद मे वकालत करते समय एक हरिजन को रसोइया रखकर व्यक्तिगत जीवन मे जातिगत भावना को जड़ मूल से मिटाने का प्रयास किया। इसके बाद उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्री के रूप में प्रदेश की शिक्षा सस्थाओं के साथ लगने वाले ब्राह्मण, जाट, अग्रवाल, कायस्थ आदि जातिवाचक नामो को हटाने का दृढता के साथ कानून बनवाया। मेरे अनेक साथियो ने उस समय कहा कि इससे बहुत लोग नाराज हो जायेंगे। मैंने स्पष्ट उत्तर दिया कि "नाराज हो जायें, मै शिक्षा क्षेत्र मे जातिगत सकीर्णता कदापि सहन नही कर सकता।" जिस दिन मेरे क्षेत्र बडौत के जाट इटर कालेज का नाम बदलकर जाट की जगह 'वैदिक' शब्द जुडा, उस दिन मुझे सन्तोष हुआ कि चलो महर्षि के आदेश के पालन मे मैं कुछ योगदान कर सका। इसी प्रकार अपनी पुत्री तथा धेवती का अन्तर्जातीय विवाह कर मुझे आत्म सन्तोष तो हुआ ही।

मेरा यह दृढ विश्वाह है कि भारत महर्षि दयानन्द तथा महात्मा गाधी के आदर्शों पर चलकर ही सच्चा गौरव प्राप्त कर सकता है। दोनों महापुरुष भारत को प्राचीन ऋषियो के समय की सादगी, सच्चाई, न्याय व नैतिकता के गुणों से युक्त भारत बनाने के आकाक्षी थे, 'महर्षि' व 'महात्मा' दोनों ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राचीन सस्कृति व धर्म को जीवन मे महत्त्व दिया तथा धर्म के नाम पर किसी भी तरह घुस आयी कुरीतियो पर प्रहार किये। उनका स्पष्ट मत था कि हम विदेशियो का अन्धानुकरण करके भारत का उत्थान कदापि नही कर सकते। आज हमे उनसे दिशा ग्रहण कर इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बढना चाहिये।

दीपावली ज्योति पर्व है। इस दिन हम अन्धकार अर्थात् अस्पृश्यता, अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि से ऊपर उठकर प्रकाश के मार्ग पर चलने की प्रेरणा ले सकते हैं। ईमानदारी तथा नैतिकता को अपनाये बिना हम संसार में सम्मान कदापि प्राप्त नही कर सकते।

(धर्मयुग ६ नवम्बर, ७७ से साभार)

'खुर्सन्द' का ईश्वर विश्वास

बलभद्र कुमार हूजा, (कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

"धाय ! धाय ! धाय!" २३ दिसम्बर १९३०, पंजाब यूनीवर्सिटी लाहौर का मेनार्ड हाल। यूनीवर्सिटी के वार्षिक कन्वोकशन के अवसर पर अचानक पिस्तौल के तीन फायर हुए। हाल में खलबली मच गई। गर्वनर सर ज्योफ्री डि मांट मोरेंसी मेज के नीचे छिप गये। उनका बाडी गार्ड चननसिंह मारा गया।

उन दिनों भारत मे स्वराज्य संग्राम बड़े जोरो से चल रहा था। ३१ दिसम्बर १९२९ को रात के बारह बजे भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश सरकार को दिये गये अल्टीमेटम की अवधि समाप्त होने पर राष्ट्रीय कांग्रेस के तरुण राष्ट्र नायक जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर में रावी नदी के तट पर भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य की मांग का उद्घोष किया था। उसके बाद २६ जनवरी १९३० को राष्ट्र नेता महात्मा गाधी के आह्वान पर देश भर मे जगह-जगह देशभक्त नौजवानो, बच्चो, बूढो, महिलाओं ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का शुभ सकल्प दोहराया था। तत्पश्चात् मार्च १९३० मे महात्मा गाधी ने चुने हुए सत्याग्रहियो को साथ लेकर साबरमती आश्रम से नमक कानून तोडने हेतु समुद्र तट पर स्थित डाडी ग्राम की ओर प्रस्थान किया था। ज्यो-ज्यो उनकी अभूतपूर्व यात्रा आगे बढती गई देश मे रोमाचकारी स्फूर्ति और नवचेतना जाग्रत होती गई। निश्चित तिथि पर उन्होने डाडी पहुँच कर नमक बनाया। निःशस्त्र सत्याग्रहियो पर लाठीचार्ज हुआ। आंसू गैस छोडी गई। अडिग सत्याग्रहियो ने एक कदम भी पीछे हटाये बिना सब कुछ सहन किया। देश भर मे उत्तेजना की लहर फैल गई। हजारो, लाखों सत्याग्रहियो ने जगह जगह पर नमक कानून तोडा और ब्रिटिश जेले कृष्ण मन्दिरो मे परिणित हो गई।

उन्ही दिनों उत्तरी भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन भी चरम सीमा पर था। दो वर्ष पहले हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के सिरफिरोश नौजवानों ने पंजाब केसरी लाला लाजपत राय पर हुए घातक प्रहार का बदला अंग्रेज कप्तान पुलिस सार्डर्स की दिन दहाड़े हत्या करके लिया था। इसके कुछ ही समय बाद उसी फौज के दो मनचले जवानों भगतसिंह और दत्त ने केन्द्रीय असेम्बली मे बम्ब फेंक कर ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी थी। वह चाहते तो उस समय असेम्बली से भाग सकते थे। परन्तु वह तो सिर पर कफन बाँधे अपने कीमती जीवन की कुर्बानी देने आये थे। उन्होने 'इन्कलाब जिन्दावाद' का नारा लगाया और गिरफ्तारी कबूल की। यही उनका कार्यक्रम था। वह अपनी बलि देकर देश मे कभी न बुझने वाली आग प्रज्वलित कर देना चाहते थे। ऐसी आग जिसमे गुलामी और गरीबी के भूत जल कर सदैव के लिये भस्मीभूत हो जाये।

नवचेतना के ऐसे ही उद्दाम वातावरण मे लाहौर और पेशावर के कुछ नोजवानो ने राष्ट्रीय यज्ञ मे अपनी आहुतियाँ डालने का वीरोचित सकल्प किया। उन्होने लाहौर यूनीवर्सिटी के वार्षिक कन्वोकेशन के अवसर पर अंग्रेज साम्राज्य के प्रतिनिधि को अपना निशाना बना कर देश के स्वतन्त्रता सग्राम में अपने तरीके से योगदान दिया। मर्दान के तरुण वीर हरिकृष्ण ने इस दुःसाध्य कार्य को सम्पन्न करने का बीडा उठाया और २३ दिसम्बर १९३० की रात को उन्होने लाहौर के मेनार्ड हाल मे पिस्तौल की गोलियाँ समाप्त होने पर आत्मसमर्पण कर दिया।

इसके फौरन बाद ही पजाब पुलिस हरकत मे आई। एक दो रोज बाद खबर आई कि लाहौर से पेशावर लौटते हुए दो नौजवान चमनलाल और जयदलाल भूटानी गिरफ्तार कर लिये गये है। थोड़े दिनों के अन्दर लाहौर से प्रकाशित होने वाले दैनिक मिलाप के सम्पादक लाला खुशहाल चन्द्र खुर्सद के पुत्र रणवीर और उनके मित्र दुर्गादास भी गिरफ्तार कर लिये गये। चमन लाल और जयदयाल की गिरफ्तारी का समाचार पढ कर मेरा माथा ठनका था। अपने लाहौर प्रवास के दिनों मे चमनलाल अपने अनन्य मित्र दिलीप को मिलने डी० ए० वी० कालेज होस्टल मे आया था। दिलीप मेरे पास ठहरा हुआ था और हमने दोपहर को सहभोज किया था।

क्रिसमस की छुट्टियों के बाद लाहौर लौटने पर मेरी भी लाहौर के कुख्यात किले मे तलबी हुई और मुझसे इस सम्बन्ध में बयान देने को कहा गया। पुलिस की थ्योरी था कि इस काण्ड का षडयन्त्र रणवीर, दुर्गादास और चमनलाल ने रचा है और चमनलाल अपने मित्र हरि कृष्ण को गर्वनर पर गोला चलाने के लिये मर्दान से तैयार करके लाया गया है। हरिकृष्ण तो मौके पर ही गिरफ्तार हो गया। उसने बडी दिलेरी से अदालत मे अपनी जिम्मेदारी स्वीकार की और सहर्ष फासी के झूले पर झूल गया। पुलिस रणवीर, दुर्गादास और चमनलाल का हरिकृष्ण के साथ साजबाज होना सिद्ध करना चाहता थी, लेकिन बचाव पक्ष इस थ्योर मे दरार पैदा कर के शक का लाभ उठाना चाहता था। इसी सम्बन्ध मे मुझे और मेरे मित्रो को रणवीर के पिता लाला खुशहालचन्द्र खुर्सन्द से कई बार मिलने के अवसर प्राप्त हुए। इनके वकील मेहता अमीचद थे। जब मौका आया तो उनके द्वारा पढाये हुये पाठ के अनुसार हमने सेशन जज की अदालत मे बयान दिये। पुलिस अधिकारियो की तेवरियो से स्पष्ट था कि उन्हे हमारे बयान पसन्द नही आये। अस्तु, सेशन जज ने हमारे बयानो को अविश्वसनीय ठहराते हुए रणवीर, दुर्गादास और चमन को मृत्युदण्ड दिया और स्वयं लम्बी छुट्टी पर प्रस्थान कर गया।

उन दिनो लाला खुशहाल चन्द्र ने जिस धैर्य और ईश्वर विश्वास का सबूत दिया उसकी अमिट छाप आज इतने वर्षो के बाद भी मेरे हृदय पटल पर बनी है। जब भी हम उनको मिलने जाते उनकी जबान से यही शेर सुनते—

'राजी हूं मैं उसी में जिसमें तेरी रजा है।
या यूं भी वाह वाह है या वूं भी वाह वाह है॥
राजी रखे तू हमको या धड़ से सिर उतारे।
कहे तेरा भक्त प्रेमी अब तुझ को यूं पुकारे॥
राजी है हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
या यूं भी वाह वाह है या वूं भी वाह वाह है॥'

इस कद्र अटल ईश्वर विश्वास देखकर हम चकित रह जाते थे। ऐसा मालूम होता था कि उन्हें दुनिया के कष्ट, क्लेश द्रवित नहीं करते। पीड़ा तो होती ही होगी। आखिर वह मनुष्य थे। पिता थे। परन्तु वह रोते नहीं थे। हँसते थे। कहते थे, माँ बाप ने मेरा नाम खुशहाल चन्द्र रखा है। खुशहाल का अर्थ है हर हाल में खुश रहने वाला। मैंने अपने नाम के आगे खुर्सन्द तखल्लुस लगा लिया है। खुर्सन्द का अर्थ भी खुश रहने वाला है। अतः अब मै सदा खुश रहने वाली दो धारी नाली की बन्दूक के समान हूँ। कष्ट, क्लेश, दुख, विपदा आते ही हैं। आयेंगे ही। उनको इस दोधारी बन्दूक से नष्ट कर दूंगा।

दिल दे तो इस मिजाज का परवर दिगार दे।
जो रज की घडी भी खुशी मे गुजार दे॥

स्पष्ट था कि उन्होंने अपने मन की डोर परमात्मा के हाथो में सौप दी थी कि हे प्रभु जहाँ चाहो मुझे ले चलो .—

मैने सौप दिया है जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों मे।
अब जीत तुम्हारे हाथो में···
इसके बाद वह कहा करते थे ·—
अब हार नही···
अब प्यार तुम्हारे हाथो मे।

उन्होने वेद मन्त्रों का अध्ययन किया, उन पर गूढ मनन किया। उनके अनुसार अपना जीवन, अपना आचार-विचार एव व्यवहार ढालने का प्रयास किया :—

इदन्न मम। इदमग्नये।
इदन्नमम॥

संस्कार विधि में गार्हस्थ्य-धर्म

डा० गणेशी लाल

आर्य गृहस्थ के नित्य कर्त्तव्य—सदाचार परायण आर्य दम्पत्ति के ५ नित्य कर्म है, जो पंचमहायज्ञ कहलाते है। ऋषि यज्ञं देव यज्ञं च सर्वदा, नृ यज्ञं पितृयज्ञं च भूत यज्ञं यथाशक्ति नहापयेत। विद्यार्थी जीवन में, जिन वेद शास्त्रों का अध्ययन किया है, उन बुद्धि, बल, कल्याण को वृद्धि करने वाले सद्शास्त्रों को स्त्री-पुरुष परस्पर पढ़ें, पढ़ाए, सुने सुनाएं, सन्ध्योपासना, योगाभ्यास करे—यही ऋषि यज्ञ है। ऐसा यज्ञ करने से गृहस्थो की सदाचार मे रुचि नित्य बढती रहेगी। चारित्रिक शुद्धता, ऋषि मुनियों की सत्सगति, दान, विद्याध्यन और सदगुणो की प्राप्ति प्रत्येक आर्य नर-नारी का दूसरा पुनीत कर्त्तव्य है, जिसकी देव यज्ञ संज्ञा है।

विद्वानो, मनीषियो, विद्यार्थियो मातापिता और वृद्ध जनो के प्रति कर्त्तव्य-पालन की भावना और प्रयत्न मे, अभिप्रेत है—पितृ-यज्ञ। उपरोक्त पितरो (जीवित) को श्रद्धा (आज्ञापालन) और तर्पण (अन्न वस्त्र, भोजन तथा पानी) से सन्तुष्ट रखना प्रत्येक सद्-गृहस्थ का कर्त्तव्य है। पितृ यज्ञ और नृयज्ञ मे कुछ समान एं है ओर कुछ अन्तर भी है। दोनों यज्ञो मे समान सेवा भाव की सद्गृहस्थ से अपेक्षा की गई है। नृयज्ञ मे अतिथि के जाने की तिथि व समय निश्चित नही होता और गृहस्थी को अपने निश्चित कार्य-क्रम मे बाधा पडने से उत्पन्न असुविधा को सहन करके भी अभ्यागत का सत्कार करना पड़ता है। गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि असुविधा उठाने पर भी, लोकोपकार मे प्रवृत्त महात्मा के अनायास पधारने पर भी उसे पाद्य, अर्घ्य और आचमन के लिए जल, आसन, और भोजन ससम्मान प्रदान करे। (स० वि० पृ० १८७) पितरों की सेवामे, सद् गृहस्थ को अनायास असुविधा का सामना नही करना पडता। वह दैनिक चर्या मे पितृ यज्ञ के पुण्य कार्य को अपना सकता है।

शेष कर्त्तव्य वलि वैश्व देव यज्ञ है, जो आर्य गृहस्थ की, संसार के सब जीवो के लिए सद्भावना का प्रतीक है। आर्य गृह में जैसें रसोई तैयार होती है, आर्य दम्पत्ति उसका भोग लगाने से पहिले भूतयज्ञ (बलि वैश्व देवयज्ञ) करते हैं। रसोई से ली गई अग्नियाश पर, घृत और मिष्टान्न से वे होम करते हैं। तत्पश्चात् भोजन-सामग्री-दाल भात रोटी आदि लेकर ६ भाग भूमि पर, कुत्ते, चाडाल, पापरोगी, भूखे, कौवे, कृमि आदि के लिए, धरे जाते हैं। (पृ० १८६) स०वि०

आर्य गृहस्थ और प्रशासन--यह माना जाता है कि आर्य व्यक्तिगत रुप से ही राजनीति मे भाग ले सकता है। परन्तु आर्य गृहस्थ सामूहिक रूप से भी प्रशासन के प्रति उदासीन नही है। शासक का कार्य, सस्कार-विधि मे प्रजारंजन अर्थात्, सुरक्षा, समृद्धि, न्याय और सुखों की वृद्धि करना माना गया है। केवल सदाचारी और कर्त्तव्य-परायण शासक ही ऐसा कर है। सस्कार-विधि मे वर्णित १८ प्रकार के दुर्व्यसनो मे फँस कर प्राय. शासक कर्त्तव्य विमुख हो जाते हैं। उस समय आर्य गृहस्थों का क्या कर्त्तव्य है? गृहस्थों को उचित है कि उसे हटा देवे, चाहे वह राजा का ज्येष्ठपुत्र ही क्यो न हो।' (स वि पृ. १७६) परन्तु राज्यच्युत शासको को दण्ड देना गृहस्थों के अधिकार से बाहर है। यह कार्य सद्गृहस्थो की प्रतिनिधि सस्थाओ-सभाओं 'त्रीणि सदांसि' का है।

इस भांति सस्कार-विधि आर्यों के लिये परम उपयोगी ग्रंथ है, जिसमे गृहस्थाश्रम की पर्याप्त व्याख्या की गई है। संक्षेप में आर्य गृहस्थ को जागरूक, धार्मिक उत्साही और कर्मठ होना चाहिये उसे अपने परिवार के प्रति कर्त्तव्य-परायण होने के साथ-साथ ब्रह्मचारियो, सन्यासियो, अतिथियों और राष्ट्र के प्रति भी कर्त्तव्यनिष्ठ होना है। इन कर्त्तव्यो की सदिशिका सस्कार विधि है।

●

(पृष्ठ ५ का शेष)

प्रत्येक यजमान कितनी ही बार यह मत्र उच्चारण करता है परन्तु कितने ऐसे हैं जो सचमुच इस प्रकार अनुभव करते हैं?

मेरा मुझ में कुछ नहीं है। जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौपते क्या लागे है मेरा? ऐसा मालूम होता था कि उन्होंने सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव ही बना लिया है। वह दर्द को भी कल्याणकारी मानकर चलते थे। परमात्मा से उन्हें कोई गिला नही। वह कहा करते थे :—

दिल दिया। दर्द दिया। दर्द ने लज्जत दी है।
मेरे मौला ने मुझे क्या क्या दौलत दी है॥

तकदीर खफा हो, तदबीर खफा हो, तो भी परमेश्वर तो है। चिन्ता करनी है तो वही करेगा मेरे हृदय मे चिन्ता क्यों?

मुश्किल पडी तो क्या है? मुश्किल कुशा तो है। सिर पर पडी है तो क्या है? सिर पर खुदा तो है। यदि नाथ का नाम दया निधि है तो दया भी करेगें कभी न कभी। जब तारनहार कहावत है तब पार करेगें कभी न कभी।

ऐसा था उनका अटल विश्वास और यह भरपूर फल लाया। हाई कोर्ट ने रणवीर, दुर्गादास और चमनलाल को शक का फायदा देते हुए बरी कर दिया।

शास इत्था यहा अस्य मित्र खादोद्‌मुत न यस्य सखा न जीयते कदाचन।

"जिसने प्रभु का पलड़ा पकड़ लिया दुनिया में उसे कोई नहीं मार सकता। हर मुसीबत में वह अपने भक्त को बचा लेता है।"

गृहस्थ में खुशहाल चन्द खुसंन्द थे। जब उन्होंने सन्यास लिया तो आनन्द स्वामी नाम ग्रहण किया। आनन्द की ओर एक और कदम। अब वह तीन डायमेंशनल आनन्द बन गये। इस पृथ्वी पर ९६ वर्ष आनन्द से विचरने के बाद वह अद्भुत आत्मा गत विजयदशमी के अगले दिन परमानन्द में लीन हो गयी। असतो मा सद्गम।

××

संस्था-समाचार

हरियाणा मण्डप राष्ट्रीय कृषि मेला, १९७७

'हरियाणा मण्डप' हरियाणा की झलक प्रस्तुत करता है जिसमें राज्य की प्रगति, राज्य के मेहनती लोगो का विकासमान योजनाओ में सहयोग, राज्य की चमत्कारिक बदलावट (एक छोटा सा राज्य होने पर भी देश का दूसरा सबसे बड़ा अनाज भण्डार बनाने में सफल हुआ), राज्य की सम्पन्न सांस्कृतिक परम्पराओ, अत्युत्तम पर्यटन स्थलों, देश का सबसे बडा ट्रैक्टर उत्पादक होने आदि की विशेषताओं को दर्शाया गया है। सभी विशेषताएं बहुत आकर्षक रूप से बड़े-बडे चित्रो एवं माडलों मे अभिव्यस्त की गई है।

साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम

वक्ता	आर्य समाज
१ पं० हरि शरण जी	हनुमान रोड
२ पं० सूर्य प्रकाश जी सनातक	अमर कालोनी
३ प० महेश चन्द जी, याद राम जी भजन मण्डली	अन्धा मुगल प्रताप नगर
४ प० प्रकाश चन्द जी वेदालकार	दरिया गज
५ प० देव राम जी	तिलक नगर
६ प० ब्रह्म दत्त जी शास्त्री	किग्जवे कैम्प
७ स्वामी आो३म् आश्रित जी	विक्रम नगर
८ श्रीमती प्रकाश वती जी	न्यू मोती नगर
९ प० मनोहर लाल जी	गुड़ मन्डी
१० प्रो० सत्य पाल जी बेदार	लड्डू घाटी
११ पं० सत्य भूषण जी वेदालंकार	आर्य पुरा सब्जी मन्डी
१२ प० वेद पाल जी शास्त्री	२२।२० मोती नगर
१३ प्रो० कन्हैया लाल जी	सराय रोहिल्ला
१४ प० देविन्द्र जी आर्य	नागल राया
१५ श्री पी. एल. जी आनन्द	महरोली
१६ प० हरि देव जी सिद्धान्त भूषण	माडल बस्ती
१७ प० वेद कुमार जी वेदालकार	टैगोर गार्डन
१८ प० सत्य पाल जी आर्य	हरि नगर
१९ पं० गनेश दत्त जी वान प्रस्थी	गीता कालोनी
२० प० अशोक कुमार जी विद्यालंकार प्रात: ६ से १०	जोर बाग
२१ प० अशोक कुमार जी विद्यालंकार दोपहर ३ से ५	पारिवारिक सत्सग, नई दिल्ली साऊथ एक्सटेन्शन- II एम-१६
२२ स्वामी सूर्यानन्द जी	मोती बाग
२३ प० प्राणनाथ जी सिद्धान्तालकार	बसई दारा पुर
२४ श्री उदयपाल सिंह आर्य	गाधी नगर
२५ प० वेद भूषण जी	अशोक विहार
२६ श्री महेश कुमार जी (भजन मण्डली)	(सदर बाजार)
२७ श्री अशोक कुमार विद्यालकार	(दिल्ली कैंट)

अखिल भारतीय हकीकत राय सेवा समिति

इसका वार्षिक निर्वाचन रविवार २०-११-७७ को सम्पन्न हुआ इस प्रकार रहा :—

प्रधान	श्री रतनलाल सहदेव
उप प्रधान	सर्व श्री बलवन्त राय, सत्य देव
प्रधान मन्त्री	श्री रोशन लाल
मन्त्री	श्री सूरज प्रकाश, श्री गगाधर आर्य
कोषाध्यक्ष	श्री महीराज
पुस्तकाध्यक्ष	श्री बहोरी लाल

प्रधान मन्त्री

नेत्रहीनता-उन्मूलन पाँच वर्ष में संभव

श्रीमती चन्नन देवी आर्य समाज नेत्र धर्मार्थ चिकित्सालय के द्वितीय वार्षिकोत्सव के अन्तिम दिन, २२ नवम्बर को आयोजित स्वागत सभा मे भाषण करते हुए केन्द्रीय स्वास्थ्य राज्यमंत्री श्री जगदबी प्रसाद यादव ने कहा कि ससार के नेत्रहीनों में से एक तिहाई (९० लाख) भारत मे है। उन्होने आगे कहा कि अगर धर्मपाल जो कि इस चिकित्सालय के सस्थापक हैं, जैसे कुछ महाशय देश मे खड़े हो जाएँ तो सरकार नेत्रहीनता-उन्मूलन का लक्ष्य २० वर्ष के बजाय ५ वर्ष मे ही पूरा कर सकती है। बिना सरकारी सहायता के इस प्रकार का चिकित्सालय चलाना महान कार्य है। अत: इसकी जितनी प्रशसा की जाए कम है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रसिद्ध आर्यनेता प्रो० बलराज मधोक ने कहा कि इस नेत्र चिकित्सालय का उदाहरण दिल्ली भर मे मिलना कठिन है। उन्होने महाशय धर्मपाल, चिकित्सालय के प्रबन्धक श्री ओम प्रकाश आर्य एवं कार्यकर्त्ताओं की प्रशसा की एवं बधाई दी।

मोतीनगर में यजुर्वेद यज्ञ की पूर्णाहुति

एक माह से चल रहे यजुर्वेद प्रायण महायज्ञ की पूर्णाहुति कार्तिक पूर्णामासी के दिन २५ नवम्बर को प्रात: ९ बजे डाली गई। इस भव्य समारोह मे यज्ञ के प्रभाव से मस्त हुए सभासद ईश्वर के गुण झूम-झूम कर गा रहे थे। उत्सव श्री भारत मित्र जी शास्त्री के प्रभावी उपदेश एवं प्रसाद वितरण के साथ सम्पन्न हुआ।

मंत्री

जंगपुरा भोगल, वार्षिकोत्सव

(१० दिसम्बर से १२ दिसम्बर तक)

मुख्याकर्षण

१० दिसम्बर—दोपहर २ बजे आर्यबाल सम्मेलन भाषण प्रतियोगिता . "आर्यसमाज तब अब और आगे"

११ दिसम्बर · दोपहर २ बजे आर्ययुवक जागृति सम्मेलन अध्यक्ष : डा० वाचस्पति उपाध्याय (दिल्ली विश्वविद्यालय)

१२ दिसम्बर दोपहर १२ ३० बजे . महिला सम्मेलन अध्यक्ष श्रीमती पद्मा कपूर मुख्य अतिथि : माता लाजवन्ती जी अग्नि होत्री

१३ दिसम्बर · रात्रि ८ बजे आर्य सम्मेलन अध्यक्ष · श्री सरदारीलाल जी वर्मा (सभा मंत्री) मुख्य अतिथि . श्री अटल बिहारी वाजपेयी (विदेश मंत्री)

ऐतिहासिक यज्ञ कुण्ड सुरक्षित करा लें

रामलीला ग्राउण्ड में होने वाले एक सौ एक कुण्ड के महायज्ञ के लिए लोहे की मोटी चादर मे सौ मेखला युक्त हवन कुण्ड हैदराबाद मे बनाए जा रहे है। ये हवन कुण्ड मेखला के साथ लगभग तीन फुट के होगे और कुण्ड एक फुट का होगा। यज्ञोपरान्त ये बढिया ऐतिसिकहाकुण्ड आप १५०) रु० मे खरीद सकते है। कुण्ड केवल सौ ही हैं। अत. आज ही अपने कुण्ड के पैसे जमा करा दीजिए।

अन्तर्राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान
१५, हनुमान रोड़ नई दिल्ली—१

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मन्त्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित, कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म्   कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्
आर्य सन्देश

साप्ताहिक नई दिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक ५ रविवार ११ दिसम्बर, १९७७ दयानन्दाब्द १५२

समुद्री तूफान : आर्य समाज द्वारा सहायता कार्य शुरू

२० हजार रुपये की पहली किस्त भेज दी

३५० अनाथ बालकों को लेने की घोषणा।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान मे समुद्री तूफान से उत्पन्न संकट पर विशिष्ट आर्यजनों की सभा हुई। सभा में सार्वदेशिक सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले ने बताया कि दस हजार की राशि दक्षिण आर्य प्रतिनिधि सभा को राहत-कार्य के लिए भेज दी गई है। १० हजार रुपये प्रधानमंत्री कोष में दिये जा रहे हैं। समुद्री तूफान के कारण हो गए ३५० अनाथ बालको की उचित शिक्षा आदि का पटौदी हाउस दरियागंज और फिरोजपुर अनाथालय मे प्रबन्ध किया जा रहा है। २५० अनाथ बच्चों का प्रबन्ध फिरोजपुर आर्य अनाथालय एवं १०० बच्चो का आर्य बाल गृह दिल्ली में किया जायगा। दिल्ली को सभी आर्य समाजे तूफानी सहायता फन्ड एकत्र करने में जुट गई है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में विशाल आर्य सम्मेलन

आर्य जगत के मूर्धन्य दृढ़ स्तम्भ स्वामी श्रद्धानन्द जी के अथक परिश्रम द्वारा निर्मित परम पुनीत भारतीय सस्कृति की मूलाधार सुविख्यात संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में सम्प्रति संकट के काले घनघोर बादल मँडरा रहे हैं। गुन्डों के आतंक से ग्रस्त इस सस्था की रक्षा हेतु प्रान्तीय एव केन्द्रीय सरकारों के ध्यानाकर्षण करने हेतु समस्त आर्य जगत को क्या पग उठाना है? इस पर विचार करने के लिये गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार में एक अभूतपूर्व विशाल आर्य सम्मेलन का आयोजन किया गया है।

इस पावन संस्था के रक्षणार्थ उत्तरप्रदेश, पजाब हरयाणा एवं दिल्ली आदि प्रान्तों से हजारो की सख्या में नर-नारियां पहुँच कर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें। आर्य सस्थाओ की रक्षा करना प्रत्येक आर्य का प्रथम कर्त्तव्य है।

वेदोपदेश

का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वाया अधा म इन्द्र शृणवो हवेमा॥

ऋक्. ७ २९ ३॥

शब्दार्थ

(**सूक्तैः**) स्तुति के सुन्दर वचनो से (**ते**) तेरी (**का**) क्या (**अरंकृतिः**) अलकृति, शोभा (**अस्ति**) हो सकती है? (**मघवन्**) हे ऐश्वर्य वाले! (**ते**) तेरे लिये हम (**कदा**) कब (**नूनम्**) सचमुच (**दाशेम**) अपने आप को दे देंगे? मै अपनी (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**मतीः**) मतियाँ (**त्वाया**) तेरी कामना से ही (**आततने**), विस्तृत कर रहा हूँ (**अधा**) अब तो (**इन्द्र**) हे इन्द्र! (**मे**) मेरी (**इमा**) इन (**हवा**) पुकारों को (**शृणव**) सुन लो।

भावार्थ

अपने सूक्तो से, स्तोत्रों से और वेदमत्रों की स्तुतियो से भी हम तेरी क्या अलकृति कर सकते हैं, हम तेरी क्या शोभा बढ़ा सकते है? हम तो, हे इन्द्र! उस समय की प्रतीक्षा में हैं जब हम अपने आप को तुझे समर्पित कर देंगे, तुझे दे देंगे। कब हम, हे मघवन्, सचमुच तेरे लिये अपनी भेट चढा सकेंगे? वह समय कब आयेगा? अपने आप को तुझे दे देने के लिये आतुर हो रहे हैं। मेरे सम्पूर्ण ज्ञान, मेरे सम्पूर्ण विचार, मेरे सम्पूर्ण संकल्प तेरी ही कामना के लिए उठ रहे है। दिन रात की मेरी सम्पूर्ण मतियाँ अपने पंख फैलाये तेरी ही तरफ उड रही हैं। मेरे मन की सम्पूर्ण गतियाँ तेरे उद्देश्य से हो रही है। मैं अपने सम्पूर्ण अन्त करण से निरन्तर तुझे ही याद कर रहा हूँ। फिर भी, हे इन्द्र! न जाने क्यों तू मेरी सब पुकारो को अनसुनी कर रहा है। मैं दर्शन पाने के लिये, तुझे आत्मसमर्पण कर देने के लिये पुकार रहा हूँ। न जाने कब से पुकार रहा हूँ। हे इन्द्र! अब तो तू मेरी इन पुकारो को सुन ले। हे ऐश्वर्य वाले! मघवन् अब तो तू मेरी इन पुकारों को सुनी करदे, सफल कर दे।

'आर्य सन्देश' का 'श्रद्धानन्द बलिदान विशेषांक'

सहर्ष सूचित किया जाता है कि 'आर्य सन्देश' का २५ दिसम्बर, ७७ का अक 'श्रद्धानन्द बलिदान विशेषांक' होगा। इस विशेषांक में अधिक सामग्री होने के कारण १८ दिसम्बर रविवार का अंक भी इसी में सम्मिलित होगा। पाठकों को इस विशेषांक में स्वामी श्रद्धानन्द लिखित अप्राप्य सामग्री भी पढ़ने को मिलेगी।

सम्पादक

सम्पादक : सरदारीलाल वर्मा, सह-सम्पादक : सत्यपाल

वैदिक राष्ट्र

डा० सत्यकाम वर्मा

अथर्ववेद के ४१वे सूक्त का एक मंत्र है

'भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जात तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥

इस मन्त्र का सामान्य अर्थ यह है "सुख और प्रकाश के रहस्य को जानने वाले ऋषि कल्याण और ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए सर्वप्रथम तप और दीक्षा का आचरण करते है। तब ही राष्ट्र, बल और ओज की उत्पत्ति अथवा सिद्धि होती है। उस ऐसे (बल और ओजसम्पन्न तथा तप और दीक्षा से सम्भूत) राष्ट्र को दिव्यगुणयुक्त ज्ञानी पुरुष इस राजा या यजमान के लिए उपलब्ध कराएँ।"

आज हम 'राष्ट्र' का अर्थ 'एकता के सूत्र मे बधे एक देश विशेष के जनसमुदाय' से लेते है; भले ही यह समुदाय आवरण और निष्ठा मे कैसा ही हो। और जब राष्ट्र का सम्बन्ध किन्हीं निश्चित आदर्शो एव आचरण के मानदण्डों से नहीं है, तब उसके 'जनो' एव 'नेताओ' से किसी निष्ठामय एव आदर्श जीवन की आशा कैसे की जा सकती है? इसीलिए 'राष्ट्र' कहलाने पर भी आज के विश्व में बहुत कम ही राष्ट्र ऐसे हैं, जो कल्याण एवं ऐश्वर्य की सम्पन्नता से युक्त हैं। विश्व के समृद्धतम राष्ट्र भी केवल भौतिक धनसम्पत्ति की दृष्टि से ही सम्पन्न कहे जा सकते है। वे विश्व राजनीति मे अपना दखल एव हस्तक्षेप केवल इसी धन सम्पन्नता के बल पर ही रखते है। धन की दृष्टि से पिछड़े होने पर कोई भी राष्ट्र इनका मुखापेक्षी हो जाता है, भले ही उसको सास्कृतिक विरासत कितनी ही महान् एव प्राचीन हो। धन का दुरुपयोग करके ये राष्ट्र उन निर्धन राष्ट्रों के नेताओं का आसानी से ही खरीद लेते है और उनके माध्यम से अपने राजनीतिक स्वार्थो को सिद्ध करते है। इस प्रकार निर्धन राष्ट्रों के नेता अपनी सस्कृति के आदर्शो को ताक पर रख कर केवल धनलिप्सा के कारण अपने ही के विरुद्ध आचरण करने लगने है इस धन के आकर्षण से ही अनाधिकारी जन भी नेता का पद पा लेते हैं। और, इस प्रकार अपनी उच्चतम विरासत और सांस्कृतिक आदर्शो पर गर्व करने वाला राष्ट्र भी पतन के गर्त में गिर कर ध्वस्त हो जाता है।

फिर क्या केवल धन-सम्पदा का अर्थ ही 'ऐश्वर्य' है। वेद के इस मन्त्र मे जिस 'भद्र' शब्द का प्रयोग किया गया है, उसका अर्थ 'कल्याण और ऐश्वर्य से संयुक्त' रूप मे है। केवल वही सम्पदा ऐश्वर्य कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है, जिससे राष्ट्र और उसके निवासियों का कल्याण-साधन होता हो। जिस राष्ट्र के नागरिक मन, कर्म और वचन की दृष्टि से, अथवा भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से, सर्वथा कल्याण के भागी नही होते, उनका ऐश्वर्य केवल बुरे और अवांछित तत्वो के ही हितसाधन के लिए रह जाता है। और जो ऐश्वर्य सबको कल्याण एव ऐश्वर्य प्रदान नही कर सकता, उसका होना न होना एक बराबर ही है।

तो क्या पूर्वकथित धन-सम्पदापूर्ण देश सच्चे अर्थों मे ऐश्वर्य से युक्त हैं। नहीं; क्योकि उनके राष्ट्र में भी सभी नागरिक समान रूप से सुखी एव सम्पन्न नहीं है। उन्हें मन-वचन-कर्म की सम्पन्नता और स्वाधीनता प्राप्त नही है। अत. ऐसा राष्ट्र भौतिक दृष्टि से सम्पन्न होकर भी सच्चे ऐश्वर्य से युक्त नही है। हम आज जिसे, 'वैल्फेयर स्टेट' कहते हैं, वह केवल आर्थिक बराबरी से नही आ सकता। जिस राष्ट्र मे नेता के चुनाव में ही आर्थिक समर्थता-असमर्थता का खेल अपना जादू दिखाता हो, वह राष्ट्र सच्चे वैदिक आदर्शो के अनुकूल 'राष्ट्र' कैसे कहला सकता है।

वैदिक आदर्शो का राष्ट्र बनने के लिए सबसे पहले उसके नेताओ को उत्तमोत्तम चरित्र से युक्त होना होगा। उनके आचरण में तप और निष्ठा के कूट-कूट कर भरे होने पर ही राष्ट्र में सच्चा बल और ओज पैदा होगा। केवल फौजो के बल पर ही कोई राष्ट्र नही जीत सकता। त्याग और बलिदान की भावना के बिना कोई भी राष्ट्र सच्ची और स्थायी विजय एवं शान्ति नहीं पा सकता। स्थिरता, सुख और शान्ति पाने के लिए राष्ट्र के नेताओं और ज्ञानी जनो को आचरण के उच्चतम आदर्शों को अपने जीवन में ढालना होगा। तभी वे सच्चे कल्याणमय आचरण की अपेक्षा रख सकेंगे। जिनके अपने जीवन आदर्शमय नही है, जनता को सन्मार्ग पर किस तरह ले जा सकते है?

इस लिए वैदिक आदर्शों के अनुरूप सच्चा राष्ट्र केवल वही हो सकता है, और केवल उसी राष्ट्र में सच्चा बल और ओज रह सकता है, जो अपने नेताओं और ज्ञानी जनों के तपोमय और दीक्षा-युक्त आचरण से समृद्ध होकर भौतिक एवं सर्वजनहितकारी सम्पदा से संयुक्त हो। अन्यथा राजनीतिक अर्थों में राष्ट्र कहलाकर भी वह सच्चा 'वैल्फेयर स्टेट' नही बन सकता।

क्या हम भारत को इन वैदिक आदर्शो के अनुकूल राष्ट्र बनाना चाहते हैं? यदि हाँ, तो हम और हमारे नेता उस दिशा में कितने प्रयत्नशील हैं?

"प्रकाशवीर चल बसे"

श्री देवेन्द्र आर्य (जम्मू तवी)

प्रकाश के सुपुंज तुम प्रकाशवीर चल वसे ।
मातृ भूमि के सपूत कर्मवीर चल बसे ॥
आर्य्यत्व के प्रतिनिधि महान चल बसे ।
राष्ट्र के सुप्राण कर्णधार आज चल बसे ॥
सस्कृत निशणात, पडित कर्तव्य परायण चल बसे।
वीर शिरोमणि, धर्मवीर, देश भक्त चल बसे ॥
आर्य्य समाज का निरन्तर मार्ग दर्शन करने वाले।
आर्य्यो के परम हितैषी आर्य्य नेता चल बसे ॥
देवदयानन्द के अनुगामी सदाचारी भक्त ।
देश को जगाने वाले जागरूक चल बसे ॥
ससदीय प्रणाली के सुविज्ञ कोविद चल वसे ।
वक्ता महान चल बसे राजनीतिज्ञ चल बसे
राष्ट्र भाषा के प्रबल समर्थक सस्कृत के रक्षक ।
धर्मवीर राष्ट्र नायक सुविधायक चल बसे ॥
सौरभ सुगन्धि निज फैला के राष्ट्र उद्यान में ॥
अर्द्धविकसित से सुमन ससार से तुम चल बसे ॥
तेरे विरह में शोकमगन हो रहे हैं आज सब।
रोते छोड तुम सभी को ऐ प्रकाश चल बसे ॥

स्व० प्रकाशवीर शास्त्री जी के निधन पर शोक

स्व० श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के आकस्मिक निधन पर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा अपनी हार्दिक सम्वेदना एव सहानुभूति उनके पारिवारिक जनों के प्रति प्रकट करती है। साथ ही परमात्मा से प्रार्थना करती है कि उनकी दिवंगत आत्मा को शाति प्रदान करे।

आर्यसमाज के अविस्मरणीय नेता स्व० शास्त्री जी के निधन पर हमे निम्न आर्य समाजो के शोक-प्रस्ताव प्राप्त हुए है जिनमे शास्त्री जी के गुणो पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि एव उनके परिवार के प्रति सवेदना प्रकट की गई है :—

आर्यसमाज, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८
आर्य समाज, श्री निवासपुरी, नई दिल्ली-२४
आर्य समाज, रामस्वरूप हाल दिल्ली-७
आर्य समाज, दुर्गापुर, पश्चिमी बंगाल
गुरू विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय करतारपुर-पंजाब

सम्पादकीय

तूफानी संकट : हमारा कर्त्तव्य

आंध्र प्रदेश मे समुद्री तूफान से भारी हानि हुई है। इस तूफान में मरने वालो की संख्या लगभग एक लाख है। बेघर बार हुए लोगो की संख्या इससे कई गुणा अधिक है। तूफान से तमिलनाडु के लोगों को भी बहुत क्षति उठानी पडी हैं।

भारत मे ऐसा विनाशकारी तूफान १८६४ ई० मे आया था। १९७० मे ऐसा ही चक्रवात बंगला देश की तबाही का कारण बना था। इन दैवी प्रकोपो के लिए किसी को दोषी नही मानना चाहिए। हमे चिंता तो ऐसे सकट को शीघ्रातिशीघ्र दूर करने की होनी चाहिए।

आर्य समाज, शुरू से ही राष्ट्र सेवा के ऐसे कार्यों के लिए सुप्रसिद्ध रहा है।

ऐसे अवसरो पर आर्य समाज ने सदैव अपने आवश्यक कार्य-क्रम रोककर देश सेवा की है। इस बार भी अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह, जो कि दिसम्बर मे मनाया जाना था, मार्च ७८ तक के लिए स्थगित कर दिया गया है। राष्ट्र विरोधी 'प्राचीन भारत' जैसी पाठ्य-पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगवाने हेतु आदोलन भी स्थगित कर दिया गया है।

परम्परा के अनुरूप, इस राष्ट्र सकट को दूर करने के लिए, प्रत्येक आर्य नर-नारी, चक्रवाती-सकट-ग्रस्त आध्र और तमिलनाडु के निवासियो के लिए सहायता-जुटाने मे जुटे हुए है। अब तक पहली किस्त के रूप मे एक बडी रकम भेज दी गई है। अनाथ बच्चो को भी आर्य शिक्षण सस्थाओ मे लेने के लिए प्रबन्ध किया जा रहा है। आर्य जगत को इस सहायता कार्य में अधिक तीव्रता लानी है जिसके लिए प्रत्येक आर्य को अपना कर्त्तव्य निभाना है।

मंत्रो के उच्चारण के सम्बन्ध मे उपयोगी परामर्श

(सोमदत्त विद्यालंकार)

महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि में 'सामान्य प्रकरण' के अन्त में लिखा है कि—"सब संस्कारों में मधुर स्वर से मंत्रों-च्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करें, किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, करें।

१—प्राय : देखा जाता है कि आर्य सभासद मंत्रों का उच्चारण ठीक नहीं करते। 'स्वास्तिवाचन' तथा 'शन्तिप्रकरण' में ऋषि ने जो मंत्र दिये हैं, उनमें चारों वेदों से मंत्र संगृहीत हैं। स्वास्ति-वाचन में प्रारंभ में २० मंत्र ऋग्वेद के फिर 'इषे त्वोर्जोत्वा' से प्रारंभ करके ६ मंत्र यजुर्वेद के फिर २ मंत्र सामवेद के और अन्त में एक मंत्र अथर्व-वेद का दिया है। इसी प्रकार शान्तिप्रकरण' में प्रारंभ में १३ मंत्र ऋग्वेद के इसके बाद 'इन्द्रो विश्वस्य' से लेकर १२ मंत्र यजुर्वेद के और फिर एक मंत्र साम-वेद का फिर २ मत्र अथर्ववेद के दिये हैं।

नियमानुसार ऋग्वेद के मंत्र द्रुतगति से तथा यजुर्वेद के विलम्बित स्वर में बोलने का नियम है। सामवेद के मत्र गायन द्वारा बोले जाने चाहिए। इसी लिये महर्षि ने लिखा है कि मत्रों को "जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, वैसा करें।" आर्यसमाजों में हवन करते समय इस बात का ध्यान नही रखा जाता। सब वेदो के मंत्रों का एक ही स्वर से पाठ किया जाता है। जब सामवेद के मत्र आते हैं तब आर्य पुरुष अपने निराले स्वर मे उन मत्रों को गाना प्रारभ करते है। यह स्वर सर्वत्र भिन्न २ प्रकार का होता है।

२ :—प्राय : सभी सभाओ में पुरोहित नियुक्त है। उनका यह कर्त्तव्य है कि वे सभासदो को मत्रोच्चारण का तरीका समझाये। साथ ही उन्हे (सभासदो को) शुद्ध मत्र बोलना भी सिखाय।

उदाहरणार्थ :—विश्वानिदेव' मत्र बोलते समय कई सभासद 'सवितर्दु रितानि' के स्थान पर 'सवितुर्दु रितानि' बोलते हैं। गायत्री मत्र में जहा 'सवितु' शब्द आया है वह सविता शब्द का षष्ठी विभक्ति का रूप है जिसका अर्थ है 'सविता का' परन्तु विश्वानिदेव मे जहा यह शब्द आया है वहा सविता शब्द का सम्बोधन का रूप है अर्थात् हे सविता 'यद्भद्रं' के स्थान पर 'यदभद्रं' बोलने से तथा 'सविता-र्दु रितानि' के स्थान पर 'सविता दुरितानि' बोलने से मत्र का अर्थ सर्वथा उलटा हो जाता है। हमने प्रार्थना तो यह करनी चाही है कि—"हे जगत् के उत्पादक प्रभो! आप हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणो को दूर कर दीजिये, वहा मत्र का अशुद्ध उच्चारण करके हम यह प्रार्थना कर रहे होते है कि—'आप हमारे सब सद् गुणो को, अच्छे गुणो को दूर कर दीजिये। और फिर 'यद्भद्र' की जगह 'यदभद्र' बोलकर हम जहा यह प्रार्थना करना चाहते थे कि जो (भद्र) कल्याण कारक (अच्छे गुण) है वे हमे प्राप्त कराइये। हम 'यदभद्रं' बोलकर 'अभद्र (बुरे) गुण मागते हैं। हमारे अशुद्ध उच्चारण का उल्टा अर्थ हो जाता है कि—हे परमेश्वर हमारी सब अच्छाइयो को निकालकर बुराइयां (दुर्गुण) हममे प्रविष्ट कराइये।"

हमने यहा एक ही मंत्र का उदाहरण दिया है इस प्रकार हम अनेक मत्रों का उच्चारण अशुद्ध करके पाप के भागी होते हैं।

३ :—यजुर्वेद के मत्रो मे नियमानुसार अनुस्वार के स्थान पर 'ऌ' आता है। इसे सामान्य-तया 'ग्वं' उच्चारण करके बोला जाता है। कई उपदेशक महानुभावो के विरोध करने पर कई सभाओं में इस 'ग्व' के स्थान पर अन्य वेदो के मंत्रो की तरह अनुस्वार ही बोला जाता है। यह विविधता भी अखरती है। उचित होगा पुराने वेद पाठियो से सीखकर इसका शुद्ध-शुद्ध उच्चारण सर्वत्र प्रचलित किया जाय। दक्षिण भारत मे बहुत से वेद पाठियो से यह पता किया जा सकता है।

अशुद्धस्वर मे मंत्र बोलना.—शिक्षाकारो ने स्वरो के विषय मे लिखा है कि—मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रु स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् जो मत्र यज्ञ मे स्वर और वर्णो के उच्चारण को बिगाडकर उच्चारित किया जाता है वह ठीक अर्थ को प्रकट नही करता और अशुद्ध उच्चारण अनर्थ होकर यजमान के नाश का कारण होता है. जैसे स्वर को भूल से इन्द्र शत्रु का भाव इन्द्रस्य शत्रु (इन्द्र का शत्रु) हो जाता है।

स्वर भेद से किस प्रकार अर्थ भेद हो जाता है इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। एक व्यक्ति के पास एक ही समय मे मे एक भिखारी और महाजन आया। दोनो उस आदमी से मागते है। एक ने भीख मागनी है और दूसरे ने तकाजे के तौर पर कर्ज वसूल करना है। दोनों एक ही शब्द बोलते है—'दीजिये।' भिखारी इस शब्द को प्रार्थना के स्वरो मे लपेट कर बोलता है और महाजन उसी शब्द को दर्प भरे शब्दो मे बोलता है। भिखारी के 'दीजिये' शब्द से करुणा प्रकट हो रही है जबकि महाजन के शब्द से दर्प और क्रोध का संचार हो रहा है। यद्यपि दोनो ने एक ही शब्द 'दीजिये' बोला है, लेकिन स्वरो का फेर, अर्थ को इतना बदले हुए है कि जमीन आसमान का अन्तर हो गया है। यदि हम सारगी मे भिखारी की याचना के स्वर और महाजन के तकाजे वाले स्वरो को निकालें तो तुरन्त मालूम हो जायगा कि दोनो की 'सरगम' अलग २ हैं। इस उदाहरण से स्वरो की खूबी समझ मे आ जाती है। वेदो के स्वर इसी तरह अपने शब्द का अर्थ निश्चित रखते है।

इस प्रकार हमने देखा कि स्वर अपने कौशल से किस प्रकार अर्थ को पुष्ट करते है और स्वर के बिगड़ जाने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

थीवो साहब ने ठीक ही कहा था कि 'उच्चारण सम्बन्धी नियमो का आविष्कार इसी-लिये हुआ था कि अशुद्ध उच्चारण से यज्ञकर्त्ता यजमान का अनिष्ट हो जायगा। वे कहते है —

"The laws of Phonetics were investigated because the

(शेष पृष्ठ ६ पर)

अन्धेरे से प्रकाश की ओर

श्री बलभद्रकुमार हूजा (कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

३० अक्तूबर १९७७ को आर्य समाज मन्दिर हनुमान रोड के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अधिकारी गण ने आर्य स्कूलो के विद्यार्थियो को एक वाद विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया। विषय था, मद्यनिषेध। बच्चों के भाषण सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। यह बात विशेषकर उल्लेखनीय है कि भाषण कर्त्ताओ मे कन्याओ की संख्या बालको से अधिक थी। जिस समाज की कन्याये सही विचारधारा मे ओत-प्रोत हो जाती है, उस देश का भविष्य क्यो न उज्ज्वल होगा? यही ऋषि दयानन्द की धारणा थी। उसी महान देव पुत्र की प्रेरणा से भारत आज उन्नति पथ पर अग्रसर है। आर्य समाज हनुमान रोड के अधिकारी गण तो इस प्रतियोगिता के आयोजन के लिये धन्यवादी है ही। साथ में इन बालिकाओ की अध्यापिकायें एव इनकी माताये भी बधाई की पात्र है।

बड़े ही सुन्दर भाषण सुनने को मिले। सुश्रीसगीता प्रथम रही और उसने अपने स्कूल के लिये शील्ड अर्जित की। वाद-विवाद का स्तर ऊँचा था। बोलने की शैलियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से रोचक थी। विचार सयोजन संगठित एव स्वस्थ था।

एक दिन पूर्व ही अमृतसर नगर की चौथी शताब्दी के समारोह के अवसर पर बोलते हुए पजाब के मुख्य मन्त्री प्रकाश सिंह बादल ने घोषणा की थी कि आगामी वर्ष से पजाब सप्ताह में दो दिन मद्य निषेध करेगा। प्रधान मन्त्री मुरारजी भाई देसाई ने इसका स्वागत करते हुए कहा था कि यदि प्रत्येक वर्ष इस तरह दो दो दिन जुड़ते गये तो चार वर्ष मे पजाब में सम्पूर्ण मद्यनिषेध हो जायेगा। उन्होने कहा कि यदि इस प्रकार वीरो का स्रोत पजाब सारे देश को नेतृत्व प्रदान करता है तो कोई शक नही देश मे एक महान क्रान्ति आ जायेगी।

लेकिन जो बात हम सबको याद रखनी है वह यह है कि इस तरह के आन्दोलन केवल राज्या देशों के आश्रय से ही सफल नही हो सकते। इसके लिये हमे जन-मानस की विचारधारा बदलनी होगी, सामाजिक मूल्य बदलने होगे। कानून तो आज भी चोरी का, डाकाजनी का, कत्ल का, बलात्कार का, रिश्वत का निषेध करता है। क्या यह जुर्म बंद हो गये हैं? क्या अब चोरी नहीं होती, या डाके नही पडते या कत्ल नही होते? या फिर रिश्वत नही दी ही जाती? सो केवल कानून के आश्रय मद्यनिषेध हो जाय यह स्वय को धोखा देना होगा। इसीलिये तो आर्य समाज समाज जैसी क्रान्तिकारी संस्थाओ की जिम्मेदारी बदस्तूर काइम है कि वह प्रचार प्रसार के साधनो का पूरा उपयोग करते हुए, पठन-पाठन द्वारा, वाद-विवाद द्वारा, अध्ययन मनन द्वारा इस नाशकारी रोग से देश को मुक्त कराये। कहना न होगा कि शराब सब जुर्मो की मा है। मैं अपने पिछले ४०वर्षों के अदालती तजरुबे के आधार पर निःसंकोच कह सकता हूँ कि जितने भी मुजरिम मेरे सामने आये प्रायः सभी ने संगीन जुर्म की वारदात करने से पहले शराब पी थी। बिना शराब पिये जुर्म करने की जुर्रत नही होती। शराब का अर्थ ही है—शर अथवा शरारत पैदा करने वाला पानी। शराब पीकर मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। फिर वह मनुष्य श्रेणी से गिरकर आसुरी वृति ग्रहण कर लेता है और राक्षसीय कृत्यों के लिये तैयार हो जाता है। मैंने जान बूझ कर पाशवीय वृत्ति शब्द का इस्तेमाल नही किया, क्योकि पशु तो शराब नही पीते और इस दृष्टिकोण से यह कहना कि मनुष्य शराब पीकर पाशवीय वृति को प्राप्त होता है, पशु जाति का तिरस्कार करना है। केवल इसीलिये ही नही अन्य दृष्टियों से भी पशु कितनी ही तरह से मनुष्यों से बढ चढकर है। हाँ मैंने आसुरी वृत्ति का जिक्र किया है। आर्य और दस्यु में, देव और असुर में यही भेद है। आर्य और देव अमृतपान करते है दस्यु और असुर सुरापान करते है। आर्य और देव ब्रह्म ज्योति की ओर अग्रसर होते हैं, दस्यु और असुर अन्धलोक मे प्रवेश करते हैं। यदि अगले ४ वर्षों में शराब बंदी नही होती तो यह राज्य सरकार की असफलता नही होगी। राष्ट्र की उन क्रान्तिकारी प्रगतिशील सस्थाओ की असफलता होगी जो सरकारी आश्रय मिलने के बावजूद अपने मिशन मे नाकाम रही। वह भारत के इतिहास में पहला सुनहरी अवसर है कि उनको राज्य सरकार से ऐसी सबल सहायता प्राप्त हुई है। मुरारजी भाई ने तो यहाँ तक कह दिया है कि इन्दिरा सरकार इसलिये गई कि वह नसबंदी पर जोर देती थी यदि मुझे इसलिये जाना पड़े कि मैं नशाबंदी पर जोर देता हूँ तो मुझे जरामात्र भी दुःख न होगा। मुरारजी भाई इस वीरोचित गर्जना के लिये हमारी ओर से धन्यवादाई हैं। अब यह हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम सामाजिक तौर पर ऐसा वातावरण पैदा करें कि शराब पीने वालों में आज जो उच्चता की भावना विद्यमान है वह हीनता की भावना में बदल जाये। वह खुले आम शान से शराब नोशी करने की बजाय शराब पीने में शरम महसूस करे। सामाजिक प्रतिबन्ध बड़े शक्तिशाली होते है। आज तक देश के सर्व साधारण तबके में जो मान मर्यादायें स्थिर चली आ रही हैं वह सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण है। यह तो नही कि सभी सामाजिक प्रतिबन्ध स्वस्थ हो, परन्तु यदि सामाजिक प्रतिबन्ध कुरीतियो को कायम रखने में इतने शक्तिशाली हो सकते है, तो क्यो न उनका उपयोग कुरीतियों को दूर करने के लिये किया जाये?

यही शिक्षा का क्षेत्र भी है। शिक्षा का प्रयोजन मनुष्य के सस्कार बदलना ही तो है। मनुष्य को सुसस्कृत करना ही तो है। उसके आचार विचार व्यवहार को सुसभ्य करना ही तो है। यदि शिक्षा संस्थाएँ शुद्ध अग्रगामी विचारधारा, आचार व्यवहार पैदा नही कर सकती तो वह शिक्षा सस्थाये न होकर कुशिक्षा संस्थायें बन जाती है। तो फिर राष्ट्र और समाज उनपर इतना खर्च क्यों करे?

आज कहा जाता है कि शराब की बिक्री से सरकारो को ५ अरब की आय है। शराब बंदी से यह आय समाप्त हो जायेगी। अर्थ-शास्त्री और उत्पादन शास्त्र वेत्ता इस बात से सहमत होगे कि कुछ भी हो शराब से मनुष्य की उपादेयता क्षीण हो जाती है। उसकी कार्य कुशलता शिथिल हो जाती है। यदि इस हानि को भी इस हानि-लाभ के हिसाब में गणना की जाय तो निःसदेह ही आर्थिक दृष्टि से भी शराब त्याज्य सिद्ध होगी और फिर यदि जहर बेचने, खाने खिलाने से एक रुपये का भी लाभ होता है, वह कहाँ तक एक संकल्पमय, व्रताचारी समाज के लिये स्वीकार्य हो सकता है?

इसीलिये तो प्रायः सभी मत मतान्तर मद्यनिषेध पर विशेष जोर देते है। बुद्धमत से लेकर इस्लाम और सिखमत तक सभी मतों में मद्यपान त्याज्य है।

यह कहना कि मद्यपान से वीरता पैदा होती है एक भ्रान्ति है। क्या रामायण और और महाभारत के योद्धा शराब पीते थे? क्या गुरु गोबिन्द सिंह और शिवाजी शराब पीते थे? क्या भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानी शराब पीते थे? क्या तिलक, गांधी, अरविन्द, लाजपतराय, मास्टर अमीचद, भगतसिंह, चन्द्र शेखर आजाद, राम प्रसाद बिस्मल शराब पीते थे? हाँ, यदि वह शराब पीते थे तो राष्ट्रप्रेम की, रामनाम की शराब पीते थे। वह ऐसी शराब पीते थे जिसका नशा कभी उतरता नही, जिस शराब की मस्ती सदा कायम रहती है। जिस शराब की मारी चिरस्थायी है।

शराब पीकर उतरने वाली पिलाई तो क्या पिलाई साकी।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

आर्यों का संदेश

(प्रिंसीपल ओम्प्रकाश, नई दिल्ली)

आर्यों का सन्देश
सुनाने के लिए
'आर्य सन्देश' मैदान में निकला है
आओ! इसका स्वागत करें!!

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'
ससार को आर्य बनाओ
प्रभुवाणी वेद की इस आज्ञा के अनुसार
संसार का प्रत्येक मानव
'आर्य' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष बन जाए
सदाचार व ईमानदारी की
सजीव मूर्ति बन जाए
सत्यता व निष्कपटता का
पुजारी हो जाए
साधुता की रक्षा और दुष्टता के हनन
मे लग जाए
यही आर्यों का सन्देश है!

ऊँचे-ऊँचे पर्वतो
गहरे-गहरे सागरों
घने-घने जंगलों
बड़े-बड़े मैदानों
और
चमकते हुए सूर्य-चन्द्र और तारो
लहलहाते खेतो और खिलखिलाते पुष्पों
से सजे
इस भूमि-आकाश
की सृष्टि
जिस महान् शक्ति
सर्वव्यापक परमात्मा ने
की
उसे
सर्वोत्कृष्ट योनि
नर-तन चोला प्राप्त,
मनुष्य
भूले नही!

और
मनुष्य
हर मानव को,
परमात्मा का 'अमृत पुत्र'
मानता हुआ
उस से बन्धुत्व की भावना
बढ़ाता रहे!!

तथा
जीवात्मा के आनन्द-मंगल के लिए बनी
प्रकृति—
यह अन्न-जल, वह सब्जी-फल,
यह कोठी, वह कार,
यह धन, वह गोदाम,
यह ऊँचा पद, वह पत्नी-पुत्र—
का भोग करता हुआ—
मधुमक्खी की तरह
फूल का रस लेता हुआ—
उसकी चका-चौंध में फँसे नही!!!
अर्थात्
भौतिकता के वशीभूत हो
आध्यात्मिकता को तिलांजलि न दे दे,
बल्कि आध्यात्मिकता और भौतिकता
में सामजस्य लाए
यही आर्यों का सन्देश है!

● ● ●

कोई अज्ञानी न रहे
यह ब्राह्मण देखे
कोई किसी से अन्याय न कर सके
यह क्षत्रिय देखे
कोई भूखा-नगा-प्यासा न रहे
कही किसी प्रकार का अभाव न रहे
यह वैश्य देखे
और शूद्र
समाज का महत्त्वपूर्ण अग होते हुए
इन सबको सेवा-सहयोग दे
कोई किसी से वैमनस्य न रखे
कोई किसी को नीच-पतित-दलित,
अछूत न कहे
समाज के चारों अंग—
शरीर मे
सिर, भुजा, पेट, पाँव की तरह-
पूरे मेल से
समाज के स्वस्थ निर्माण के लिए
अपना-अपना योगदान
प्रसन्नता-पूर्वक दे
'वर्ण-व्यवस्था का ऐसा विशुद्ध रूप'
यही आर्यों का सन्देश है!

● ● ●

समाज के निर्माण की बात
सोचने से पहले
हर व्यक्ति को
अपना निर्माण करना होगा—
क्योंकि व्यक्तियो से ही
समाज, जाति, राष्ट्र बनता है—
अत:
जन्म से मरण तक
व्यक्ति
योजना-बद्ध, अनुशासित ढग से
ब्रह्मचारी
की २५ वर्ष की अवस्था तक
शक्ति और विद्या की प्राप्ति
की साधना में लगा रहे
गृहस्थी
के रूप मे
घर-परिवार व धनोपार्जन
का कार्य लग्न से करे
वानप्रस्थी
बन
समाज व राष्ट्र की सेवार्थ
सासारिक धन्धों के मोह
से हटने का अभ्यास करे
और
७५ वर्ष की अवस्था होने पर
'वित्त-पुत्र-लोक'
तीनो बलवती इच्छाओं
का परित्याग कर
'सब के कल्याण' में
लगने के लिए
संन्यासी
का चोला धारण कर ले
भारत के ऋषियों द्वारा निर्धारित
'आश्रम-प्रणाली की
ऐसी अद्भुत व्यवस्था'
यही आर्यों का सन्देश है!

(क्रमश)

क्या हम वास्तव में सुख-शांति चाहते हैं?

—सत्यपाल

एक वृद्ध सज्जन थे, सेवा निवृत्त। उन्हें लगभग ४०० रुपये मासिक पेंशन मिल जाती थी। उनकी तीनों लड़कियाँ अपने-अपने घर सुखी थी। एक लडका था, वह भी शादी-शुदा। वृद्ध दम्पत्ति अपने लड़के के पास ही रहा करते थे। मकान निजी ही था। दुर्भाग्यवश उनका एक ही लड़का था वह भी नालायक निकला। वृद्ध सज्जन पेंशन से प्राप्त रुपयों में से १५० रुपयों के लगभग अपने पास रखकर बाकी रुपये अपने लडके को दे देते थे। लडका कहता था कि मुझे सारे पैसे दो लेकिन वृद्ध सज्जन इस बात को नही मानते थे। इसी समस्या को लेकर उनमे अकसर बैहसा-बैहसी हो जाती थी। एक बार तो लडके ने हद ही कर दी। पास मे पडी सौटी उठाकर निर्दयता से कमर मे कई सौटियाँ जड दी।

महात्मा आनन्दस्वामी कथा करके उठ ही रहे थे कि ये वृद्ध सज्जन आँखों मे आँसू लिए एवं चेहरे पर गहरी उदासी लिए उनके पास पहुँचे। उन्हे प्रणाम करके अपना सारा दु ख सुनाया। कलियुग की एक सन्तान की हर-कत देख कर स्वामी जी भी कुछ पल चिन्तित हो उठे। कुछ पलों तक खामोश रहकर वे बोले—"देखो! इस अवस्था मे तुम्हे किसी भी प्रकार की चिंता नही करनी चाहिए। तुमने अपने सभी कर्त्तव्यों को भली-भांति पूरा कर दिया है अर्थात् तीनो लड़कियों का विवाह कर दिया, लडके का विवाह कर दिया। उसके रहने के लिए मकान और जीविका का भी प्रबन्ध कर दिया। तुम्हारी आर्थिक स्थिति भी अच्छी है जिससे तुम दोनों शांतिपूर्वक एव आराम-चैन की बाकी जिन्दगी बिता सकते हो। तुम मेरे पास आ जाओ। मैं किसी सुन्दर तपोवन मे तुम्हारे रहने का इंतजाम कर दूँगा। साथ मे सेवा के लिए एक सेवक का भी प्रबन्ध कर दूँगा। तुम आराम से ईश्वर का स्मरण करते रहना।"

वृद्ध सज्जन स्वामी जी को बड़े ध्यान से सुनता रहा तथा स्वामी जी से सहमत भी हो गया। लेकिन घर जाकर वह अपने मन को समझा नही सका

(शेष पृष्ठ ६ पर)

(पृष्ठ ४ का शेष)

जो चढ़ के इक बार फिर न उतरे, वो मय पिलाये तो हम भी जाने।

गुरुनानक देव जी ने भी तो कहा है :—

भंग मसूरी सुरापान उतर जाय प्रभात
नाम खुमारी नानका चढी रहे दिन रात।

यहां मुगलवश के सस्थापक राजा बाबर और राणा सग्राम सिह के बीच १५२७ में हुए कनवाहा के युद्ध का जिक्र करना अप्रासगिक न होगा। जब बाबर ने देखा कि उसकी फौजे राणा सग्राम के वीर राजपूतों की तलवारो का मुकाबला नही कर पा रही है, उनके पांव डगमगाने लगे हैं इतिहास साक्षी है, तब राजा बाबर ने शराब के प्याले तोड दिये, लाल परी को सर्वदा के लिये त्याग दिया और नारा बुलद किया तखत या तखता। लडाई के मैदान मे वीरोचित सकल्प की, युद्ध की साज सज्जो की, कुशल रण सचालन की, अनुशासन की आवश्यकता होती है, न कि शराब की, जिसका नशा क्षण भंगुर ही होता है।

इस प्रतियोगिता मे एक बालिका ने कहा कि न्यायाधीशों के लिये मद्यपान का सर्वथा निषेध होना चाहिये अन्यथा वह न्याय प्रदान करेगे, इस मे शक हो सकता है। मैं एक कदम आगे जाऊंगा और कहूंगा कि न्यायाधीशो के अतिरिक्त प्रशासक वर्ग एवं अध्यापक वग के लिये भी मद्यपान का निषेध होना चाहिये। विमान चालकों के लिये तो है ही। ट्रक ड्राईवरो, कार चालको के लिये भी होना चाहिये।

यह भी सर्वविदित ही है कि शिरोमणी स्वामी श्रद्धानद ने अपने जीवन काल मे जो भी कार्य किया, वह सुरापरी का त्याग करने के बाद ही किया। इस कायाकल्प का श्रेय दो व्यक्तियो को है,—एक रुद्र मूर्ति ऋषि दयानद को, दूसरे उनकी पतिव्रता आर्य भार्या शिवदेवी को। उनकी पत्नी का नियम था कि वह सदा अपने पति के पीछे ही भोजन किया करती थी, एक बार श्रद्धानद (तब के मुशीराम) रात को बडी देर से घर लौटे। वह शराब के नशे मे मदहोश थे। घर पहुँचते ही उन्हे उल्टी होने लगी। तभी एक छोटा सा नाजुक उगलियों वाला हाथ उनके सिर पर पहुँचा और उन्होने खुलकर उल्टी की। अब वह शिवदेवी के हाथो में बालवत् थे। उसने उन्हें कुल्ला कराया, उनका मुँह पोंछा, उनका अगरखा बदला, उन्हे पलग पर लिटा कर उनका सिर दबाने लगी। मुशीराम अपने आत्मचरित्र में लिखते हैं कि मुझे उस समय का करुणा और शुद्ध प्रेम भरा मुख कभी न भूलेगा। मैंने अनुभव किया कि मानो मातृशक्ति की छत्रछाया के नीचे निश्चिन्त लेट गया हूँ। रात के एक बजे के लगभग उनकी जाग खुली। यह देवी, १४-१५ वर्ष की बालिका उनके पैर दबा रही थी। उसने मिश्री डालकर उन्हे गरम दूध पिलाया। अब मुशीराम पूर्ण होश में थे। बोले 'देवी' तुम बराबर जागती रही, भोजन तक नही किया। अब भोजन करो।" "शिवदेवी" ने चिरस्मरणीय उत्तर दिया, "आपके भोजन किये बिना मे कैसे खाती ?" यह शब्द सुनकर मुंशीराम को बहुत ग्लानि हुई। उन्होने शिवदेवी से क्षमा याचना की। भारत की सन्नारी फिर बोली. आप मेरे स्वामी हो। यह सुबः सुना कर मुझ पर पाप क्यो चढाते हो ? मुझे तो यह शिक्षा मिली है, कि नित्य आपकी सेवा करूँ।"

धन्य है भारत की सन्नारी। जब तक इस देश मे ऐसी सन्नारियाँ उत्पन्न होती रहेगी, देश पर कोई आँच नही आ सकती।

लेकिन कहानी का अन्त यही नही होता। मुंशीराम की लत अभी पूरी तरह टूटी नही थी। उनके हम प्याला हम निवाला मित्र उन्हे यदाकदा दावतों में शरीक कर लेते। एक दिन एक बड़े वकील के यहाँ निमत्रण था। खुलकर दौर चला। उनके एक साथी बुरी तरह लडखडा रहे थे। उन्हें घर पहुँचने के लिये यह भी साथ हो लिये। जब लौट कर घर पहुँचे तो क्या देखते है कि जिस मित्र के यहाँ उतरे है वह बोतल खोले बैठे हैं। फिर दौर पर दौर चला। थोडी देर बाद उनका मित्र साथ के कमरे मे गया। उसके जाते ही उन्होने एक पैग और पी लिया। दूसरी बार प्याला भरने ही को थे कि अन्दर से एक चीख आई। वह भागे भागे कमरे मे गये तो देखा कि उनके राक्षस मित्र के हाथों एक देवी छटपटा रही है। मुंशीराम की आंखों के आगे मानों शिवदेवी आ खडी हो। उन्होंने अपने मित्र को नीचे गिरा दिया। जैसे ही वह गिरा, वह देवी काँपती हुई अन्दर भाग गई।

मुशीराम का सारा गत जीवन उनकी आँखों के सामने घूम गया, और उन्हें वैराग्यभाव ने आन घेरा। उन्होने सोचा कि शेष बोतल समाप्त करके ही इस प्रलोभन से मुक्ति पाऊँ। लेकिन जैसे ही गिलास उठाया एक और मूर्ति उनके सामने आन खड़ी हुई। यह थी यति दयानद की विशाल कोपीनधारी, दण्डपाणि मूर्ति। मानों कह रहे हो, क्या अब भी तेरा ईश्वर पर विश्वास न होगा। मुशीराम ने आख मली। इतने में मूर्ति गायब। मुन्शीराम ने गिलास दीवार पर दे मारा और फिर बोतल। उठकर हाथ मुँह धोया और बैठ कर सोचने लग गये। अगले दिन उठकर सीधे लाहौर की ट्रेन पकडी।

यह था उनके जीवन का कायाकल्प। लाहौर में जब पहली रात सोकर उठे तो मानों किसी नये जगत में प्रवेश कर चुके हो।

(पृष्ठ ५ का शेष)

और स्वामी जी की बातों को भूला दिया।

इस प्रकार के व्यक्तियों की यहाँ कमी नहीं जो अपने को अकारण ही दुःख एव अशांति में डुबाए हुए हैं। अगर ये व्यक्ति थोड़ा सा भी विचार करके, विवेक का सहारा लेकर सही रास्ता अपना लें तब शेष जीवन को सुख, शांति एव स्वाध्याय में बिता सकते हैं।

हमारी संस्कृति मे भी इस बात की स्वीकृति है कि गृहस्थाश्रम के बाद व्यक्ति को चाहिए कि वह वानप्रस्थ होकर अत में सन्यासी हो जाए। यही अवस्था है जब व्यक्ति सब चिन्ताओं से मुक्त होकर उस सर्वव्यापक ईश्वर से नैकट्य अनुभव कर सकता है, अपने जीवन के गहरे अनुभवो से समाज में कुछ ठोस कार्य कर सकता है और निष्पक्ष होकर सत्य की अभिव्यक्ति बिना हिच-किचाहट के कर सकता है। लेकिन हम हैं कि इस उम्र तक पहुँचकर भी अपने मन को काबू में नही करते, अपने को नहीं संभालते और इस नश्वर ससार को ही सब कुछ समझते रहते हैं।

उपर्युक्त सज्जन घर छोडने को तैयार नही। अगर ये विवेक का सहारा ले तो क्या ये उस स्थान को अपना घर मानेगे जहाँ कोई इनकी बात सुनता नही हो, कोई इनकी बात मानता नही हो और जहाँ इन पर कौडे भी लगा दिये जाते हो ? साथ ही इस पर विचार करे कि क्या कौडे मारने वाले को पुत्र मानना चाहिए ? हाँ उसे कुपुत्र तो मान सकते है। एक बात और ध्यान मे रखनी चाहिए कि कु-वस्तुओ का साथ छोड बिना क्या सुख, शाति, और आराम-चैन कभी नसीब हो सकता है ?

✱

(पृष्ठ ३ का शेष)

wreath of the Gods followed the wrong pronunciation of a single letter of the sacrificial formula."

क्या अशुद्ध स्वर द्वारा किया हुआ मंत्र पाठ हमे लाभ के स्थान पर हानि नही पहुँचायेगा ?

हम तो स्वर के अलावा बहुधा मंत्र के अक्षर भी बदल कर मंत्र का उच्चारण कर रहे होते हैं।

एक विद्वान् अपने पुत्र से कहता है कि—

"यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्
स्वजन. श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्"

हे पुत्र ? तू अधिक नही पढना चाहता तो मत पढ़, परन्तु व्याकरण तो पढ ही ले जिससे स्वजन (अपना आदमी) को श्वजन (कुत्ता) न कहे। सकल (संपूर्ण) को शकल (टुकड़ा) न कहा करे और सकृत् (एकबार) को शकृत् (पाखाना) न कहा करें।

इस उदाहरण मे 'स' की जगह 'श' पढ़ने से अर्थो मे कितना भेद हो गया।

संस्था-समाचार

तूफान पीढ़ितों हेतु धन प्राप्ति की सूची

१ दक्षिणी दिल्ली-आर्य समाज जगपुरा विस्तार—२१००/—
२ आर्य समाज न्यू मोती नगर के प्रधान श्री तीर्थराम जी आर्य के छोटे भाई श्री चरण दास टण्डन द्वारा हरदोइ (उ०प्र०) से एकत्रित राशि—२४७·२५ रुपये, आर्य समाज न्यू मोती नगर —५३ ७५ रुपये। कुल राशि ३०१/-

११-१२-७७ का

साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम

वक्ता	आर्य समाज
१ पं० अशोक कुमार जी भारद्वाज	हनुमान रोड
२ प० सुदर्शन देव जी शास्त्री	अमर कालोनी
३ प० अशोक कुमार जी विद्यालकार तथा ज्ञानचन्द्र डोगरा	ग्रेटर कैलाश
४ श्री वीरेन्द्र जी परमार्थ	प्रताप नगर
	अन्धा मुगल
५ प० देव राम जी वैदिक मिश्नरी	दरिया गज
६ प० महेश चन्द्र जी, याद राम जी	तिलक नगर
७ पं० राम किशोर जी वैद्य, पं० सत्य पाल जी एवं स्वामी स्वरूपानन्द जी	जग पुरा
८ आचार्य हरिदेव जी तथा स्वामी स्वरूपानन्द जी	सोहन गंज
९ पं० ब्रह्म प्रकाश जी शास्त्री	विक्रम नगर (कोटला फिरोज शाह)
१० स्वामी ओ३म् आश्रित जी	न्यू मोती नगर (कर्मपुरा)
११ पं० गनेश दत्त जी वानप्रस्थी	गुड मन्डी
१२ प्रो कन्हैया लाल जी	लडडू घाटी
१३ स्वामी देवानन्द जी	सराय रोहिल्ला
१४ प० प्राणनाथ जी सिद्धान्तालंकार	नागल राया
१५ पं० सत्य भूषण जी वेदालंकार	अनाज मन्डी शाहदरा
१६ पं० वेद पाल जी शास्त्री	महरौली
१७ प० मनोहर लाल जी ऋषि	गीता कालोनी
१८ स्वामी सूर्यानन्द जी	लक्ष्मीबाई नगर
१९ पं० प्रेम चन्द जी श्रीधर	जोर बाग (लोधी रोड़)
२० श्री पी. एल. जी आनन्द	किदवई नगर
२१ डा० नन्द लाल जी	विनय नगर
२२ डा० वेद प्रकाश महेश्वरी	रोहतास नगर
२३ पं० देविन्द्र जी आर्य	बसई दारा पुर
२४ पं० श्रुत बन्धु शास्त्री	महावीर नगर
२५ पं० राज कुमार शास्त्री	मोती नगर
२६ स्वामी भूमानन्द जी	रघुबीर नगर
२७ प्रो० वीरपाल	गाधीनगर

उत्सव एवं कथा

१ ५/१२ से ११/१२ तक कथा व उत्सव, आर्य समाज जग पुरा भोगल
२ ५/१२ से ११/१२ तक कथा व उत्सव, आर्य समाज सोहन गंज
३ ५/१२ से ११/१२ तक कथा व उत्सव, आर्य समाज माडल बस्ती
४ ७/१२ से ११/१२ तक यज्ञ व कथा, आर्य समाज ग्रेटर कैलाश
५ १०/१२ शनिवार, उत्सव, वैदिक प्रचार सत्संग सभा अशोक विहार।

दयानन्द आया

कविराज बनवारी लाल शादाँ

दयानन्द आया, दयानन्द आया।
अविद्या जहाँ लत का, परदा हटाया॥
अबलाओं, विधवाओ, दीनजनों को।
धीरज बँधा, सबका कष्ट मिटाया॥
दयानन्द ने वेद प्रचार करके।
गफलत की निद्रा से, सबको जगाया॥
मिटा ढोंग पाखन्ड, मिथ्या मतों को।
वैदिक धरम पर, सबको चलाया॥
दरिया बरफ के, पहाड़ों की राहें।
सहे कष्ट लाखों, कदम ना हटाया॥
भारत की जिसने, दशा आ सुधारी।
वही पूज्य गुरुवर, दयानन्द आया॥
सदाचार व त्याग, सद्भावना से।
अनार्यों को आर्य, जिसने बनाया॥
दिया जहर जिसने, नादानियों से।
क्षमा उसको करके, ऋषि ने बचाया॥
गिनाये कहाँ तक, अहसान शादाँ।
स्वतन्त्रता का मारग, गुरु ने दिखाया॥

शोक प्रस्ताव

आर्य समाज हनुमान् रोड, आर्य समाज के मूर्धन्य नेता लोकप्रिय सासद, हिन्दी के उद्भट विद्वान और भारतीय सस्कृति के व्याख्याता श्री प० प्रकाशवीर जी शास्त्री की अकाल मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट करता है। मंत्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गाँधीनगर दिल्ली में मुद्रित, कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

साप्ताहिक नईदिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ दूरभाष . ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक १० रविवार १५ जनवरी, १९७८ दयानन्दाब्द १५३

वेद सन्देश

हमें सुखी कर !

यो नः शश्वत् पुराविथ, अमृध्रो वाजसातये ।
स त्वं न इन्द्र मृडय । ऋ० ८.८०.२॥

शब्दार्थ—

(इन्द्र) हे इन्द्र! (यः) जिस (अमृध्रः) अहिंसक एवं अहिंसनीय तू ने (नः) हमारी (पुरा) पहिले (शश्वत्) सदा (वाजसातये) बल प्राप्ति के लिये (आविथ) रक्षा की है (सः त्वं) वही तू (नः) हमें,(मृडय) सुखी कर।

विनय

हे इन्द्र! तू वह है जो सर्वथा अहिंसक है, इतना प्रेममय और सर्वसमर्थ है कि तुझे कभी हिंसा करने की जरूरत नही होती, और अहिंसक होने से ही तू सर्वथा अहिंसित भी है, तेरा कभी विनाश नही किया जा सकता। और इन्द्र हे ! तू वह है जो ऐसा अहिंसक होकर, ऐसा प्रेममय होकर पहिले से सदैव ही हमारी रक्षा करता आया है, जब जब कठिन समय आया है, जब जब दुनिया के सब बलो को हारकर भग्नाभिमान निर्बल होकर हमने तुझे पुकारा है, तब तब तू ने हमारी रक्षा की है और हमें बललाभ कराया है। सदा नये नये बललाभ के लिये तू हमारी रक्षा करता आया है। हे इन्द्र! हे वही हमारे इन्द्र! तू इस समय भी हमारी रक्षा कर और हमे सुखी कर। इस समय चारों तरफ निराशा छा रही है, पाप की शक्तियो ने हमे चारों तरफ से दबा लिया है, हमारा कुछ बस नही चलता है। हे इन्द्र! इस समय तू ही हमे बचा, तू ही हमारा उद्धार कर। हमें नया बल प्राप्त कराता हुआ फिर सुखी कर। हे सदा से हमारे बचाने वाले! अमृध्र! हमे सुखी कर, फिर सुखी कर।

गुरुकुल कांगड़ी

सत्याग्रह का १७ वाँ दिन

हरिद्वार, ६ जनवरी। गुरुकुल कांगडी में चल रहे अनशन के १७ वें दिन आज आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि—'इस संस्था को हमने अपने खून से सींचा है, इसको नष्ट नहीं होने देंगे।' इसके साथ-साथ उन्होंने सरकार को चेतावनी दी है कि यदि सरकार शीघ्र ही गुरुकुल से अवैध लोगों को निकाले नहीं तो हम सरकार का बहिष्कार करेंगे। आचार्य जी ने यह भी बताया कि कमिश्नर (मेरठ क्षेत्र) ने भी कागजातों की जांच करके श्री बलभद्र कुमार हूजा को ही कुलपति माना।

भारत सरकार के गृह मंत्री माननीय चौ० चरण सिंह जी का महर्षि दयानंद जन्म स्थान टंकारा में आगमन।

टंकारा (सौराष्ट्र), २८-१२-७७। पिछले दिनो माननीय चा० चरण सिंह जी केन्द्रीय गृह मंत्री अपनी गुजरात यात्रा के मध्य महर्षि दयानन्द जी की जन्म भूमि टंकारा में पधारे थे। मान्य गृह मंत्री जी राजकोट मे होने वाले उपचुनाव तथा अन्य राज्य कार्य के कारण पधारे थे। जब उन्हे पता चला कि राजकोट मे केवल २२ मील पर महर्षि दयानन्द का जन्म स्थान टंकारा है तो उन्होंने अपने व्यस्त समय से कुछ समय निकाल कर महर्षि के जन्म स्थान टंकारा में व्यतीत किया। वह प्रातः ११ बजे के लगभग गुजरात सरकार के कुछ अन्य मान्य मंत्रियो के साथ टंकारा पधारे। महर्षि दयानन्द स्मारक महालय की यज्ञशाला मे ग्राम के प्रमुख लोगों ने तथा उपदेशक विद्यालय के आचार्य श्री सत्यदेव जी विद्यालकार ने उनका भावभरा स्वागत किया। महर्षि दयानन्द स्मारक संस्था की ओर से, आर्य समाज टंकारा की ओर से, लायन्स क्लब की ओर से तथा टंकारा के व्यापारियो द्वारा उनके गले में हार पहनाये गये। महर्षि दयानन्द उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियो ने संस्कृत और हिन्दी के स्वागत गीतों का गान किया। मान्य गृहमन्त्री जी ने भावभीने शब्दो मे अपने गुरु महर्षि दयानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की तथा आचार्य श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने उनके प्रति महर्षि दयानन्द स्मारक संस्था व ग्राम की ओर से आभार प्रकट किया। श्री मान्य गृहमंत्री जी ने इस अवसर पर महर्षि स्मारक संस्था को पाँच (५०००/—) हजार रुपये के दान की घोषणा की।

इसके अनन्तर उन्होने उपदेशक विद्यालय, गौशाला, पुस्तकालय तथा दयानन्द-दिव्य-दर्शन चित्रावली का निरीक्षण किया तथा महर्षि स्मारक संस्था मे हो रहे कार्य की भूरी-भूरी प्रशंसा की। जब उन्हें यह पता चला कि गुजरात सरकार ने महर्षि जन्म स्थान वाले भवन को प्राप्त करने का निश्चय कर लिया है तो उन्हें बडी प्रसन्नता हुई और आचार्य श्री सत्यदेव जी को विश्वास दिलाया कि वह इस-जन्म-स्थान भवन को प्राप्त कराने में पूरी सहायता करेंगे। इसके बाद मान्य गृहमंत्री जी बडी भाव भरी श्रद्धा से महर्षि दयानन्द के बोध मन्दिर में गये। मन्दिर का दर्शन और परिक्रमा उन्होंने बहुत ही भावना से की। बहुत व्यस्त होने के कारण मान्य गृहमंत्री जी ने विश्वास दिलाया कि वह पुनः कभी अधिक समय निकाल कर यहाँ महर्षि जन्म स्थान मे अवश्य आयेंगे। इसके बाद वे राजकोट के लिये गोंडल चले गये।

सत्यदेव विद्यालकार

प्रधान सम्पादक : मुरारीलाल वर्मा, सह-सम्पादक : सत्यपाल

लेखमाला—३

"कुछ आप बीती, कुछ जग बीती"

—स्वामी श्रद्धानन्द

अनुवादक—प्रिंसिपल कृष्ण चन्द्र
एम० ए० (त्रय) एम० ओ० एल०
शास्त्री, बी० टी०

[महात्मा मुंशीराम जी ने १९१३ ई० मे उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत उर्दू भाषा मे कुछेक लेख लिखे थे। आर्यजनो की आधुनिकी पीढी इन लेखो से अनभिज्ञ है क्योकि प्राय समस्त सामग्री इस समय अनुपलब्ध है। प्रस्तुत लेखमाला पाठको को महात्मा मुंशीराम को समझने मे, उनके प्रारम्भिक जीवन को जानने मे सहायता तो देगी ही साथ ही ज्ञान-वृद्धि मे सहायक भी बनेगी।]

रहमत खा के इहाता मे तीन कमरो वाले दो मकान हम लोगो ने इकट्ठे लिए थे। इनमे हम छ साथी एक-एक कमरे मे रहते थे। उनकी सूची यही दे देता हूँ —

(१) मेरे भाई रायजादा भक्तराम जी, जो आजकल जालन्धर के प्रसिद्ध बैरिस्टर हैं।

(२) महाशय मुकन्दराम जी, जी जो रायजादा भक्तराम जी के साथ हीबेरस्टरी की परीक्षा के लिए इगलैण्ड गए थे। वहाँ समुद्र मे स्नान करते हुए उनका अकस्मात् देहावसान हो गया था। वे बडे सत्यवादी थे और कट्टर आर्य थे। सन्ध्यादि नित्य कर्त्तव्य कर्मो के पालन करने मे पूर्णरूप से नियमित थे।

(३) स्वर्गीय महाशय रामचन्द्र जी, आर्य समाज होश्यारपुर के प्रसिद्ध प्रधान। इनका नाम ही 'महाशय' था। और यह उस समय भी बडे कट्टर आर्य समाजी समझे जाते थे।

(४) महाशय फकीरचन्द जी, ग्राम चौरासी (जिला होश्यारपुर) के प्रसिद्ध वजीर रामदित्तामल जी के भतीजे। ये यद्यपि उस समय स्वतन्त्र विचार रखते थे परन्तु बाद मे हमारे कालेज वाले भाइयों की आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के सम्भवत: प्रधान भी हो गए थे।

(५) रायबहादुर सुखदयाल एडवोकेट (लाहौर) के भाई मुखदयाल जी, जो सम्भवत लाहौर सरकार के प्रेस के प्रबन्धक हैं।

—इन्ही मे से एक मैं ही प्लीडरी की परीक्षा की तैय्यारी कर रहा था। शेष सभी लाहौर के कालेजो मे पढते थे। यद्यपि हम पृथक् पृथक् रहते थे तथापि सबका भोजन एक ही स्थान पर बनता था—और भोजन करने के लिए भी सब एक ही छोटे कमरे मे और आमन्त्रित अतिथियो के आने पर किसी बरामदे में भोजन हुआ करता था। इतनी भूमिका लिखनी इसलिए आवश्यक थी क्योकि इसके पश्चात् चार पाच मास मैने इसी स्थान पर व्यतीत किए। इसलिए इस प्रबन्ध की ओर कई बार सकेत करने की आवश्यकता होगी।

लाहौर के आर्य मन्दिर से लौट कर हम सब इकट्ठे अपने डेरे पर आए। मेरे भाषण ने मेरे साथियो पर भी प्रभाव डाला।

जालन्धर आर्य समाज के साथ सम्बन्ध

भोजन करने के समय भाई सुन्दरदास, महाशय रामचन्द्र और महाशय मुकन्दराम आदि ने यह निश्चय किया कि वैदिक धर्म का सन्देश जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए हम सब सप्ताह मे कम से कम एक बार नगर के किसी भाग में बिना सूचना दिए धर्म उपदेश दिया करे। इस प्रतिज्ञा पर इस वर्ष के बहुत दिनो तक आचरण होता रहा।

—भोजन करने के पश्चात् बहुत कुछ कानून से सम्बन्धित पुस्तको का अध्ययन करने के पश्चात् निवृत्त होकर मैं टहल रहा था कि तीसरे प्रहर की डाक आई। उसमे कन्या महाविद्यालय जालन्धर के प्रसिद्ध (वर्तमान) प्रधान श्री महाशय देवराज जी का पत्र था। अनुमान होता है कि मेरे नास्तिकता के गर्त से निकल कर आस्तिक होने का समाचार भक्तराम जी ने अपने बड़े भ्राता को लिख दिया था। इन दोनो ने पहले से ही जालन्धर में आर्य समाज स्थापित कर दिया था। इस पत्र मे देवराज जी ने जो कुछ मुझे लिखा। उसका सार यह था कि चूँकि मैं अब नास्तिक नही रहा अत मुझे जालन्धर आर्य समाज का प्रधान बना दिया जाएगा। और उन्होने स्वयं मन्त्री का पद ले लिया है। मैने वह पत्र अपने भाई भक्तराम जी को दिखलाया और मेरे मुख से निम्नलिखित वाक्य निकले—"भाई देवराज जी बडे भोले हैं। केवलमात्र यह सुन कर कि मैं परमेश्वर को मानने वाला हो गया हूँ, उन्होंने कैसे समझ लिया कि मैं आर्य समाज मे भी सम्मिलित हो गया हूँ? इस बात पर विश्वास किए बिना और मेरी परीक्षा लिए बिना मुझे आर्य समाज का प्रधान बनाना, मुझे बडा ही आश्चर्य में डालने वाला कार्य है।" भाई भक्तराम जी ने कहा कि बाल की खाल नही निकालनी चाहिए और जालन्धर के आर्यो को निराश नही करना चाहिए। मैंने सोचने के लिए समय मागा और विचार करने लगा।

—सायकाल का भोजन करने के पश्चात् अकेले भक्तराम जी को साथ लेकर मैं भ्रमण के लिए चल दिया और मैदान मे बैठ कर हमने इस विषय पर गम्भीर रूप से विचार करना आरम्भ कर दिया कि मुझे प्रधान पद स्वीकार कर लेना चाहिए अथवा नही? मुझे जहा तक स्मरण होता है, मैंने अपनी निर्बलता को स्पष्ट रूप से प्रकट किया और साथ ही प्रधान पद के उत्तरदायित्व को भी बहुत कुछ बढा कर सामने रखा। जब अन्त मे मैंने यह विचार प्रकट कर दिया कि आर्य समाज के प्रधान पद का उत्तरदायित्व एक साम्राज्य उत्तरदायित्व से भी अधिक कठिन है तो भाई भक्तराम जी खिलखिला कर हँस पडे और कहने लगे—'मुन्शीराम जी! चार टोटरो तो सदस्य है और अभी लडकों का खेल है। आप ने तो विचित्र उधेड़बुन लगा दी?" इस पर मुझे भी हंसी आ गई और मैंने भी स्वीकार कर लिया कि मैंने कुछ बहुत ही तर्क वितर्क से काम लिया है। यह परामर्श कर के कि मैं कुछ और चिन्तन करके उत्तर लिख दूंगा हम डेरे को लौट आए।

—इस साधारण घटना का वर्णन मैंने इसलिए किया है कि वह प्रभाव जिससे विशेष अवसरो पर मैं विवश होता रहा हूं, जनसाधारण के समक्ष आ जाए। बहुत से मनुष्यों के लिए धर्म परिवर्तन के निर्णय का कारण कोई विशेष सामाजिक प्रलोभन अथवा कोई दूसरा साधारण कारण हुआ करता है परन्तु मेरे लिए यह धर्म-परिवर्तन जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। इस समय तक यही मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति इसी ओर है कि मैं साधारण से साधारण सिद्धान्त के प्रश्न को जीवन और मृत्यु का प्रश्न बना लेता हूँ। मेरे जीवन की बहुत सी घटनाओ को समझने मे यह एक घटना सहायता दे सकती है और इसी घटना पर गम्भीर दृष्टि डालने से यह भी पता लग सकेगा कि दूसरो के गुणो और योग्यता का सम्मान करते हुए और वास्तव मे उनके साथ प्रेम और आदर की भावना हृदय में रखते हुए भी क्यो मैने बहुत से ऐसे व्यक्तियो को अपना शत्रु बना लिया है? जिनका मेरे साथ मिलकर कार्य करना वैदिक धर्म और आर्य जाति की उन्नति एव समृद्धि का कारण होता।

—मै तो अभी विचार-सागर मे ही डुबकियां लगाता रहा परन्तु भाई भक्तराम जी ने जालन्धर सूचना दे दी कि मुझे निशक होकर आर्य समाज जालन्धर का प्रधान बना दिया जाए। मैंने तो आर्य समाज का सदस्य बनने पर आठवें समुल्लास को समाप्त कर के 'सत्यार्थ प्रकाश' के स्वाध्याय को दो दिनों से छोड दिया था कि इतने में निश्चय से मुझे एक आर्य समाज का प्रधान बना दिया गया। मैंने पुन: नियमपूर्वक प्रतिदिन दो घण्टे 'सत्यार्थप्रकाश' का स्वाध्याय करने और हृदय में स्थान देने के लिए अर्पण करने आरम्भ कर दिए। नवम् समुल्लास मे 'मोक्ष' के विषय ने बहुत से सन्देह दूर करके मनुष्य जीवन के मुख्योद्देश्य के रहस्यों को उद्घाटित किया। इसी के पश्चात् मैंने दशम् समुल्लास को हाथ लगाया। इस समुल्लास में 'भक्ष्याभक्ष्य' के विषय ने जीवन में एक और आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। जिसका विस्तृत रूप से वर्णन करना आवश्यक है।

'प्राचीन भारत'-विरोधी अभियान क्यों आवश्यक है

आजकल आर्य-समाज और भारत की अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं ने आर० एस० शर्मा की 'प्राचीन भारत' और ऐसी अन्य पाठ्य पुस्तकों के विरुद्ध सांस्कृतिक अभियान छेड़ रखा है। इस अभियान के कारण बिल्कुल साफ हैं। ये पुस्तकें राजनैतिक उद्देश्य से लिखी गई है। ये राजनैतिक उद्देश्य हैं —

१—देश में वर्ग-संघर्ष पैदा करना।

२—वर्ग-संघर्ष में मुसलमान, ईसाई और विदेशी-परम्परा के लोगों तथा पिछड़ी जन-जातियों, शेड्यूल कौमों का एक गुट तैयार करना। इस गुट में कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को मिलाना और इन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य कही जाने वाली कौमों से लड़ाना।

३—अन्तत इस संघर्ष में कामयाबी प्राप्त कर, सर्वहारा वर्ग का राज्य स्थापित करना।

इसीलिए इस किताब में ८ प्वाइंट अथवा विशेषताएं मिलेगी। पृष्ठ ५३,८७,११४ पर विस्तार के साथ उन अत्याचारों का वर्णन हैं जो कि लेखक के मत में, सवर्णों ने किए हैं। पृष्ठ ७९ और १६६ पर ब्राह्मणों और शूद्रों के लिए 'मुफ्त का माल भोगने वाले' आदि विशेषण प्रयुक्त किये हैं। वर्णव्यवस्था का कारण लिखा है कि शूद्रों का निर्दयतापूर्वक शोषण करने के लिए वर्ण व्यवस्था बनाई गई। पृ० १५७ और १६७ पर बताया गया है कि राजाओं, सामन्तों, जमींदारों ने, ब्राह्मणों की व्यवस्था से किस प्रकार शूद्रों का नृशंस दमन किया है। पृष्ठ १४९ और १६७ तक शूद्रों को बहादुरीपूर्ण लड़ाई का जिक्र है। कहा गया है कि बहादुर शूद्रों ने ब्राह्मणों और क्षत्रियों को और उनके द्वारा कायम की गई वर्ण-व्यवस्था को किस प्रकार वीरतापूर्ण चुनौती दी। पृ० ९५ से लेकर १०५ तक और १०७ पर विदेशियों का वर्णन है, जिन्होंने कि 'अत्याचारी' क्षत्रियों और ब्राह्मणों से लोहा लिया वर्ण व्यवस्था पर चोट की। तथाकथित नीच लोगों को सहारा दिया। विदेशियों के राज में, निहित स्वार्थों को छोड़कर, सब लोगों ने बहुत उन्नति की, सब सुख से रहे। प्रेरणा स्पष्ट है 'विदेशी' तथा 'नीच' कहलाने वाले एक हो जाओ।

पृष्ठ ५२-५३,५६,१६६-६७ पर भारत के धार्मिक आंदोलन बौद्ध और जैन धर्म पर लिखा गया है। लेखक के अनुसार, दोनों धर्म ब्राह्मणों और क्षत्रियों के आपसी झगड़े का परिणाम थे, जिनसे शूद्रों का कुछ भी फायदा नहीं हुआ। इस पुस्तक में जगह-जगह भारतीय इतिहास के नायक और खलनायकों की तरफ भी इशारा किया गया है। लेखक के अनुसार भारतीय इतिहास के नायक है—विदेशी लोग शक-कुषाण-हूण जातियाँ तथा उनके नेता सिकन्दर, मिनेन्दर, कडफिस, कनिष्क आदि और खलनायक है—हिन्दू शास्त्राकार, स्मृतिकार याज्ञवल्क्य आदि तथा मौर्य गुप्त-शालिवाहन, चालुक्य वंशीय सम्राट-यथा चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त गौतमी पुत्र शातकर्णी जो कि सबके सब लेखक के अनुसार नीच थे परन्तु ब्राह्मणों से हुए समझौते के कारण क्षत्रिय मान लिए गये थे।

वैसे तो उपरोक्त बातों की झलक मिल जायेगी, अगर आप किताब को कहीं से भी खोलकर दो चार पृष्ठ पढ़ें। परन्तु इतना भी न कर सकें तो निम्न लिखित पृष्ठों को देख लीजिए :

१—शूद्रों पर अत्याचार।

पृष्ठ ८७ पर लिखा है 'यूनान और रोम में जो कार्य दास करते थे, वे ही कार्य भारत में शूद्र करते थे। शूद्रों का नाम उक्त वर्णों की सामूहिक सम्पत्ति माना जाता था। उन्हें दासों, दस्तकारों, खेतिहर मजदूरों और घरेलू नौकरों के रूप में काम करने के लिए मजबूर किया जाता था।'

पृष्ठ ११४ पर लिखा है कि निम्न वर्ग की औरतें खेती का कार्य करती थीं और गुलामों की हालत में रहती थीं। बहुत से जाति-बहिष्कृत लोग और जंगली कबीले अत्यन्त दरिद्र थे और किसी तरह जी रहे थे।

पृष्ठ ५३ पर लिखा है 'सबसे कठोर बातें शूद्रों के बारे में पढ़ने को मिलती है। उसे दूसरों का सेवक, दूसरों के आदेश पर काम करने वाला और मनमर्जी से पीटने योग्य कहा गया है।'

२—वर्ण-व्यवस्था और शूद्रों पर जुल्म :

पृष्ठ ७९ पर लिखा है 'दीवानी और फौजदारी कानून वर्ग-विभाजन पर आधारित हो गया। जो वर्ण जितना ऊँचा होता उतने ही ऊंचे नैतिक आचरण की अपेक्षा करता था। इस प्रकार शूद्रों के ऊपर सब प्रकार की नियोग्यताएँ थोप दी गई थी। उन्हें धार्मिक और कानूनी अधिकारों से वंचित कर दिया गया था और समाज में सबसे निचले स्थान में उन्हें धकेल दिया गया था। उनका उपनयन संस्कार नहीं हो सकता था। ब्राह्मणों और अन्य जातियों के प्रति उनके अपराधों के लिए उन्हें बड़ी-बड़ी सजा दी जाती थी; दूसरी ओर शूद्रों के प्रति किए गये अपराधों के लिए मामूली सजा दी जाती थी।'

पृष्ठ १६६ पर लिखा है कि किसान-मजदूरों, भाड़े के मजदूरों के पैदा किए माल को हड़पने के लिए नियमित वसूली के प्रशासकीय और धार्मिक तरीके ढूढ निकाले गये। राजा ने मूल्यांकन करने और कर वसूलने के लिए कर संग्राहक नियुक्त किए। लेकिन इसके साथ यह भी जरूरी था कि लोगों को यह बात समझ दी जाती कि राज की आज्ञा मानने, उसे कर देने और पुरोहितों को दक्षिणा देने की क्या आवश्यक्ता है ? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्ण व्यवस्था बनाई गई।

इस तरह से हिन्दुओं और उनके मूलाधार वर्णाश्रम धर्म को बदनाम करने की नापाक कोशिश की गई है।

३—राजाओं, सामंतों द्वारा शूद्रों का दमन

पृष्ठ १५२ पर लिखा है :—अगर कृषक और दस्तकार जातियाँ उत्पादन सेवाएं करने में असफल रहती थीं तो इसे स्थापित धर्म या प्रतिमान से विचलन के रूप में देखा जाता था। इस प्रकार की स्थिति को कलियुग कहा जाता था। यह राजा का कर्त्तव्य था कि वह इस प्रकार की स्थिति को समाप्त करे तथा शान्ति और व्यवस्था स्थापित करे जो सरदारों और पुरोहितों के पक्ष में हो। इसलिये धर्म महाराज की उपाधि कारक पल्लव कदम्ब और पश्चिम गंग राजाओं ने ग्रहण की।'

पृष्ठ १६७ पर लिखा है—मनु का कहना है कि वैश्यों और शूद्रों को अपने कर्त्तव्यों से विमुख होने देने की अनुमति बिल्कुल नहीं दी जानी चाहिए। राजाओं का वर्ण व्यवस्था का पालक माना जाता था। लेकिन किसानों से कर वसूलने और मजदूरों से काम लेने के लिए केवल बल प्रयोग का रास्ता ही काफी नहीं था।

और भी अनेक स्थलों पर इस भांति लिखा गया है जिसका अभिप्राय निश्चित ही गरीब-अमीर की लड़ाई का तूल देना है।

४—शूद्रों का संघर्ष :

पृष्ठ १६७ पर लिखा है—'ईसा की तीसरी शताब्दी में पुरानी सामाजिक सरंचना को गम्भीर संकट ने आ घेरा। इस संकट का स्पष्ट वर्णन पुराणों के उन भागों में मिल जाता है जो तीसरी चौथी सदी में कलियुग का वर्णन करने के लिए लिखे गये। कलियुग की एक विशेषता वर्ण संकट की स्थिति के रूप में बताई गई है। इसका तात्पर्य है सामाजिक वर्गों का अन्तर्मिश्रण। इसका मतलब यह हुआ कि वैश्यों और शूद्रों (किसान, कारीगर और मजदूरों ने या तो उन उत्पादक कामों को करने से मना कर दिया, जिनकी उनसे अपेक्षा की जाती थी, या वैश्य किसानों ने कर जमा करने से इंकार कर दिया। और शूद्रों ने काम करना बंद कर दिया। सामाजिक आचार-विचार और शादी ब्याह के कामों में उन्होंने वर्ण सीमाओं का उल्लंघन किया। इस परिस्थिति के कारण पुराण-दण्ड के महत्व पर बल देते हैं, वे बल-प्रयोग का सुझाव देते है।

पृष्ठ १४९ पर लिखा है। 'पल्लव, कदम्ब, बादामी के चालुक्य तथा उनके अन्य समसामयिक वैदिक यज्ञ के समर्थक थे ·· इस प्रकार, ब्राह्मण किसानों के मत्थे जीने वाले एक महत्वपूर्ण वर्ग बन गये। उन्होंने किसानों के प्रति देय राशि प्रत्यक्ष वसूल की तथा राजा के द्वारा अपनी प्रजा से वसूल किये गये करों का एक अच्छा खासा भाग उपहारों के रूप में प्राप्त किया लगता है। यही स्थिति

[शेष पृष्ठ ६ पर]

श्री स्वामी जी के ईसाई सत्संगी

—पं० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल

आर्य समाज के सुयोग्य ऋषि भक्त विद्वान स्वर्गीय पंडित महेशप्रसाद जी मौलवी आलम फाजिल का यह खोजपूर्ण लेख महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र लिखने वाले विद्वानों के लिये बड़ा उपयोगी है।

आशा है कि मर्मज्ञ विद्वान इससे पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे। स्वर्गीय पण्डित जी का यह लेख अप्रैल १९४७ मे 'सार्वदेशिक' पत्र मे प्रकाशित हुआ था।

प्रेषकः—ओमप्रकाश आर्य (पंजाब)

श्री स्वामी दयानंद जी महाराज के साथ अनेक देशी-विदेशी ईसाइयों ने शास्त्रार्थ किया था। अनेक केवल सत्सग के विचार से उनसे मिले थे अथवा मिलते थे। इन किसी न किसी रूप मे जिन ईसाइयो के साथ मिलना हुआ था, उनमे कुछ साधारण कोटि के व्यक्ति थे किन्तु कुछ उच्च कोटि के थे और उनके द्वारा भारत मे ईसाइयत का बहुत काम हुआ है। ऐसे लोगो मे से केवल चार के विषय मे कुछ लिखा जाता है।

१—पादरी हुपर साहिब पहले सन् १८७४ ई० मे काशी मे श्री स्वामी जी से मिले थे। इसके पश्चात् लाहौर मे १८७७ ई० मे मिले थे। इनका पूरा नाम विलियम हुपर था। सन् १८३३ ई० मे २७ सितंबर को इंगलैण्ड मे पैदा हुए थे। सन १८५८ मे एम० ए० की डिग्री प्राप्त की थी।

सन् १८३१ ई० में भारत में पधारे। काशी व लाहौर मे विशेष रूप मे काम किया। इनकी जो रचनाएँ है उनमें दो मेरी दृष्टि मे अवश्य आई है —

(क) हिन्दू धर्म का वर्णन इसमे बतलाया है कि हिन्दू धर्म क्या वस्तु है। इसके साथ वेद का वर्णन, जाति का वर्णन, अवतारों आदि का वृत्तान्त भी है। इसके कई संस्करण हिन्दी मे निकले है।

(ख) [illegible] हिन्दू और मुहम्मदी धर्मों के अनुसार उद्धार का सिद्धान्त —उद्धार किससे होता है, पाप का विषय, पवित्र आत्मा के विषय आदि मे बताते है। इसका एक हिन्दी संस्करण मेरी दृष्टि मे अवश्य आया है।

२—पादरी उलमन— श्री स्वामी जी से ये कुछ साथियो सहित कायम गज (जिला फरुखाबाद) मे सन् १८६८ ई० में मिले। महर्षि दयानद का जीवन चरित्र पृष्ठ १११ (प्रकाशित सम्वत् १९९० वि० अजमेर) मे इनका नाम अनलन दिया हुआ है यह ठीक नहीं।

पादरी साहब का पुरा नाम फैड्रिक उलमन (Ullmann) था। सन् १८१७ ई० मे बर्लिन मे पैदा हुए थे। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् सन् १८३९ ई० में भारत में पधारे। अनेक स्थानो मे कार्य किया। इनकी अनेक रचनाएँ 'गुरु ज्ञान', 'लड़को की गीत माला', 'धर्म तुला' आदि हैं। इनमे से 'धर्मतुला' का प्रचार हिन्दी व उर्दू दोनो मे बहुत हुआ था। उर्दू मे सन् १८४१ ई० तक १३ बार प्रकाशन हो चुका था। हिन्दी मे सन् १९३८ ई० तक ४४ सस्करण निकल चुके थे। यह सस्करण दस हजार की सख्या में निकला था।

३—पादरी स्काट—इनका मिलना श्री स्वामी जी से सबसे पहिले चांदापुर जिला (शाहजहापुर) के मेले मे सन् १८७७ ई० (मार्च) मे हुआ था। इनके पश्चात् बरेली मे इन्होने श्री स्वामी जी के साथ सन् १८७९ ई० मे शास्त्रार्थ किया था। इसके बाद ये स्वामी जी मे मिला भी करते थे।

श्री स्वामी जी के अनेक जीवन चरित्रो मे इनका नाम टी० जी० स्काट लिखा हुआ मिलता है, किन्तु टी० जे० स्काट होना चाहिए। ये सन् १८३५ ई० मे संयुक्त राज्य अमेरिका मे पैदा हुए थे। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् सन् १८६३ ई० मे भारत मे पधारे। कई स्थानो में कार्य किया।

ईसाई उपदेशक विद्यालय बरेली मे १६ वर्ष तक शिक्षक रहे। इस काल मे १२ वर्ष तक प्रिंसिपल का कार्य किया। अनेक पुस्तके भी लिखी, किन्तु इनका महत्वपूर्ण कार्य यह था कि इंडिया सन्डे स्कूल यूनियन को इन्होने सन् १८७६ ई० में स्थापित किया।

४—पादरी क्लर्क—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र, पृष्ठ ४७७ से पता चलता है कि अमृतसर मे सन् १८७८ ई० में इनकी पादरी क्लर्क साहब से और महाराज से खान-पान के विषय मे बात-चीत हुई थी। ज्ञात रहे कि क्लर्क नाम के कई पादरी हुए हैं। किन्तु यहाँ पर रावर्ट क्लर्क समझना चाहिए क्योंकि इनका सम्बन्ध अमृतसर से विशेष रूप से रहा है और उक्त काल में वह अमृतसर मे ही थे। सन् १८२५ ई० में इनका जन्म इंगलैण्ड में हुआ था। सन् १८५१ ई० में अमृतसर में आए। पंजाब व काश्मीर में विशेष रूप से काम किया। 'जान की इंजील' को पश्तों में किया, किन्तु इनकी रचना बड मारके की है।

उक्त ईसाई-पादरियों के सिवा बेरी, लूक्स, पारकर, नोबिल, मैथर, बेरिंग, गरे, गिलबर्ट, हसबैण्ड, लालबिहारीदे और नीलकण्ठ शास्त्री (नहीमियागोरे) आदि अनेक बड़े-बड़े ईसाइयो के साथ सत्संग हुआ था। केवल थोड़े से व्यक्तियो का संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया है। कुछेक ग्रन्थो के आधार पर मैंने उक्त शब्द लिखे, जिनमें एक मुख्य ग्रन्थ है :—

History of the North India Christian Tract Book Society Allahabad.

लेखक :—रेवेरेण्ड जे० जे० लुक्स। उक्त सोसायटी के कार्यालय १८ क्लायुरोड इलाहाबाद से प्रकाशित है। इसमें सोसायटी का सन् १८४८ से १९२४ ई० तक का वृत्तात है।

*

स्व० पं० प्रकाश चन्द्र कविरत्न

—स्वामी स्वरूपानंद आर्य संन्यासी

हे ! अमर आत्मा आज तुम्हे किन शब्दों से मैं करूँ याद।
मैने भी पाया था तुमसे आशीर्वाद कविता प्रसाद॥
उस जर्जर तन को त्याग गये जन जन का हृदय तड़फा कर।
मेरा भी हृदय दुखी हुवा यह दुखित समाचार पाकर॥
रच डाले कितने मधुर गीत जाने किस मस्ती मे आकर।
करते रहेगे याद आर्यजन गीत आपके गा-गा कर॥
पल पल मे आते याद आप, करते रहते सब धन्यवाद।
हे ! अमर आत्मा आज तुम्हे किन शब्दो से मै करूँ याद॥

मन वचन कर्म से आर्य जगत, सेवाव्रत धारे थे प्रकाश।
भजनोपदेशकों के प्रशस्त पथ प्रेरक प्यारे थे प्रकाश॥
विकट परिस्थितियो मे भी निज धुन के न्यारे थे प्रकाश।
रह रह कर आते याद हमें क्योंकि आप हमारे थे प्रकाश॥
निशदिन लेखनी चलती थी किंचित था न आलस प्रमाद।
हे ! अमर आत्मा आज तुम्हे किन शब्दो से मैं करूँ याद॥

तुमको आकर्षित कर न सके माया के विविध विचित्र फंद।
पाखंड गर्त मिथ्यामतादि आये न रच तुमको पसद॥
अपनाकर वैदिक धर्म पूर्ण गुरु माने ऋषिवर दयानद।
कविता लेखन से किया पूर्ण जग में निज नाम प्रकाश चंद॥
अति सरस आपकी कृतियों मे है मिला सुधा सम मुझे स्वाद।
हे ! अमर आत्मा आज तुम्हे किन शब्दों से मैं करूँ याद॥

थी कभी कर्म रत, स्वस्थ सुघड फिर जीर्ण हुई थी तन काया।
अकड़े थे हाथ, पाँव जकड़े उपचार न जिसका हो पाया॥
पर अचरज ये हम जब भी मिले, संतुष्ट आपको था पाया।
निज मधुर कण्ठ से सुना हमें संगीत प्रिय था मन भाया॥
बहता था उर में प्रेम प्रवाह, कैसी ! चिन्ता कैसा ! विषाद।
हे ! अमर आत्मा आज तुम्हें किन शब्दों से मैं करूँ याद॥

विवाह की न्यूनतम आयु

बलभद्र कुमार हूजा (कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

आज से सौ वर्ष पहले जब ऋषि दयानंद ने गुरु विरजानन्द को वचन दिया था कि वह अपना जीवन भारतवर्ष मे प्रचलित कुरीतियो के विरुद्ध युद्ध करने में लगा दें गे ताकि यहाँ एक बार फिर वैदिक आदर्शों के अनुसार जनता जीवन यापन करे तब एक मूल समस्या जो उनके दृष्टिगत हुई वह थी—बाल विवाह की समस्या। जब उन्होने अपने चारों तरफ नजर दौडाई तो उन्होने पाया कि देश को अधोगति का प्रमुख कारण स्त्री-शिक्षा का अभाव है। स्त्री की स्थिति केवल बच्चे पैदा करने की मशीन अथवा घर की दासी के तुल्य है। बचपन मे ही बच्चो के विवाह हो जाते हैं। इससे बच्चो की शिक्षा का कार्यक्रम तो आरम्भ होने से पहले ही समाप्त हो जाता है फिर वे बच्चो के माता पिता बन जाते है। इससे जहाँ उनका अपना विकास बहुत करके रुक ही जाता है, वह अपने बच्चो के विकास में भी दिलचस्पी लेने के योग्य नही बन पाते। साथ मे बचपन अथवा लडकपन मे पति की मृत्यु हो जाने से वैधव्य से ग्रसित नारियो का जीवन नारकीय हो जाता है। उनको सब ओर से तिरस्कार मिलता है। यहा तक कि अपनी लड़कियो के विवाह मे भी उन्हे सम्मिलित होने से रोका जाता था, जिससे कही उनकी कुदृष्टि नववधू पर न पड जाय। ऋषि ने शास्त्रों का हवाला देते यह हुए सिद्ध कर दिया कि बाल विवाह शास्त्र-विरुद्ध है। उन्होने शास्त्रो के आधार पर व्यवस्था दी कि पुरुष २५ वर्ष और कन्या १६ वर्ष की आयु पाने से पूर्व विवाह न करे। इस अवस्था तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे और यदि चाहे तो इस आयु के उपरान्त भी ब्रह्मचर्य की अवधि बढ़ावे। स्वय तो वह अखण्ड ब्रह्मचारी थे ही। वह सर्वत्र ब्रह्मचर्य की महिमा प्रतिष्ठित करना चाहते थे, ताकि देश में व्रती, तेजस्वी, वर्चस्वी नवयुवक और नवयुवतियों के समूह खड़े होकर देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाने मे सहायक सिद्ध हो। उनके प्रचण्ड प्रचार का समुचित प्रभाव भी पडा देश के अग्रगामी समुदाय ने उनकी विचारधारा को स्वीकार किया। परन्तु हमारा देश तो इतना विशाल है कि सौ वर्ष मे भी दयानद द्वारा प्रज्वलित की गई ज्योति अभी सर्वत्र नही पहुँच पाई है। जगह-जगह अन्धकार के विस्तृत क्षेत्र अभी भी विद्यमान है। यह है आर्य जगत् के समक्ष उपस्थित चुनौती। जब मैं आर्य शब्द का प्रयोग करता हूँ तो मेरा अभिप्राय उस सीमित समुदाय से नही जो आर्य-समाज का सदस्य होने का दावा करता है, अपितु उस विशाल समुदाय से है जिसमे आर्य के लक्षण, गुण विद्यमान है, जो श्रेष्ठ है, सत्य को धारण करता है सत्य विद्या के प्रचार मे कटिबद्ध है, केवल अपनी उन्नति से ही सतुष्ट नही सबकी उन्नति मे अपनी उन्नति समझता है, ससार के प्राणीमात्र की सेवा जिसका लक्ष्य है।

ऐसा ही एक आर्य था, हर विलास शारदा। वह ब्रिटिश काल मे भारतीय विधान सभा का सदस्य था। वह बाल विधवाओं के करुण रुदन से द्रवित हुआ। विवाहो को रोकने के लिये उसने एक अजीम आन्दोलन खड़ा किया। उसके अथक प्रयास के फलस्वरूप भारतीय विधान सभा ने १९२९ मे एक कानून पास किया जिसके अनुसार कन्या के विवाह की कम से कम आयु १४ वर्ष निर्धारित की गई। बाद मे १९४९ मे यह आयु बढा कर १५ वर्ष कर दी गई। इस वक्त पुरुष की विवाह की कम से कम आयु १८ वर्ष की निर्धारित है। जनसख्या की विस्फोटक स्थिति को मध्यनजर रखते हुए अब सरकार के आगे प्रस्ताव है कि स्त्री की आयु १५ से बढा कर १६ और पुरुष की १८ से बढ़ा कर २१ वर्ष कर दी जाय।

हमें यह सत्य स्वीकार करना होगा कि केवल राज्य के आश्रय

> **सभा मंत्री अस्वस्थ**
>
> **गत सप्ताह दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के कर्मठ महामंत्री श्री सरदारीलाल वर्मा जो निमोनिया से पीड़ित रहे। अब वे पहले से स्वस्थ हैं। शैय्या पर पड़े रहकर भी उन्होंने सभा एव 'आर्य संदेश' का सम्पूर्ण कार्यभार सम्भाले रखा। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि मंत्री जी को जल्द-ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ देवें जिससे आर्यसमाज कार्यक्रम नियमित रूप से विकासोन्मुख रहें।**

हो राष्ट्र में सुधार होने वाले नही हैं। आर्य पुरुषो को देश को सही अर्थ मे आर्यवर्त बनाने हेतु अपने प्रयत्न जारी रखने ही होगे। यह तो शुभ लक्षण है कि सरकार भी इस दिशा में सजग है। उसकी प्रगतिवादी नीतियो का समर्थन करना आर्य पुरुषो का कर्त्तव्य है। अभी तो सरकार पुरुषो के लिये विवाह की न्यूनतम आयु २१ तक बढाने को उद्यत है, परन्तु आर्य पुरुषो के लिये उचित है कि वह यह आयु २५ वर्ष तक बढाने की माग करें।

यह भी सत्य है कि बावजूद इस बात के कि शारदा एक्ट बने ५० वर्ष बीत गये, इस पर अमल बहुत ही शिथिल रहा। ऐसे राष्ट्रोत्थान के कानून पर अमल हो, इसके लिये यह भी विचाराधीन है कि इस जुर्म को काबिलदस्त अदाजी पुलिस करार कर दिया जाय। इसका कितना असर होता है यह दृष्टव्य ही रहेगा। [illegible] की है कि जहाँ कानून [illegible] के लिये माता-पिता को दोषी ठहराया जाय वहाँ शादी को रचना कराने वाले पण्डित, मौलवी पादरी आदि को भी दोषी ठहराया जाय। जहाँ इन लोगो पर दबाव पडा, ऐसी शादियो पर स्वत. ही रोक लग जायगी। इसके अतिरिक्त कानून में यह भी विधान हो कि सभी शादियो का लाजमी तौर पर रजिस्ट्रेशन किया जाय। इससे सभी विवाहो पर सरकारी तत्र की निगाह रहेगी और इस प्रकार कानून के विरुद्ध विवाहो पर एक और रुकावट लग जायगी। हमारे संविधान में १४ वर्ष के बच्चो के लिये अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है, लेकिन पिछले ३० वर्षो में इस दिशा में हमारी प्रगति उत्साह जनक नहीं रही। इस व्यवस्था की ओर भी हमें राष्ट्र सेवी सस्थाओ का ध्यान आकृष्ट करना होगा। इस संबंध में जो भी रुकावटे है उन पर ठडे दिमाग से विचार करके सही नीतियाँ स्थिर करनी होगी।

अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि यदि जनसख्या वृद्धि की गति पर रोक न लगी तो सन् २००० मे भारत की आबादी ९० करोड तक पहुँच सकती है। प्रश्न यह है कि क्या हमारी अर्थव्यवस्था मे उतनी बडी आबादी को जीवन के अच्छे स्तर पर रखने की सामर्थ्य होगी। इस वक्त हमारे देश में ६० करोड की आबादी है और इस आबादी के ६० प्रतिशत भाग की आय ६० पैसे प्रतिदिन से कम है। यह स्थिति कब तक चलेगी? स्पष्ट है कि हमें जनसख्या पर यथेष्ट रोक लगानी होगी और इसके लिये एक कदम है विवाह की कम से कम आयु में वृद्धि-पुरुष के लिये २५ वर्ष और कन्या के लिये १६ वर्ष।

(पृष्ठ ३ का शेष)

उत्पीडक बन गई और अन्ततोगत्वा छठी शताब्दी में कालाश्रों के विद्रोह का कारण बनी।' क्या इस तरह से हरिजनों को संघर्ष के लिए उकसाया नही जा रहा है तथाकथित जुल्म के खिलाफ।

६—(क) सवर्णों के आपसी संघर्ष : बौद्ध और जैन प्रतिक्रियाएँ

पृष्ठ ५२-५३—'उच्चाधिकार के लिए ब्राह्मणों का कभी कभी योद्धा वर्ग के प्रतिनिधित्व करने वाले क्षत्रियो से भी सघर्ष होता था। परन्तु जब इन दो उच्च वर्गों का निम्न वर्णों से मुकाबला होता था तो ये आपसी मतभेदो को भुला देते थे। उत्तर वैदिक काल के अन्त समय से इस बात पर बल दिया जाने लगा था कि इन दो उच्च वर्णों को आपस में सहयोग करके शेष समाज का शोषण करना चाहिए।'

पृष्ठ ५३—'राजन्य अथवा क्षत्रिय वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले राजाओं ने शेष तीन वर्णों पर अपना अधिकार करने की भरपूर कोशिशें की।'

पृष्ठ ५६—'क्षत्रियों ने, जो शोषक वर्ग के थे, ब्राह्मणों के कर्मकांडी प्रभुत्व के खिलाफ आवाज उठाई और जन्मजात वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध एक प्रकार का आन्दोलन चलाया विभिन्न विशेषाधिकारों की मांग करने वाले ब्राह्मण पुरोहितों के प्रभुत्व के प्रति क्षत्रियों की जो प्रतिक्रिया हुई वह उन कारणों में से एक थी जिन्होंने नए धर्मों को जन्म दिया।'

पृष्ठ १६६-६७—'चूंकि पुरोहित और क्षत्रिय दोनों ही किसानों द्वारा प्रदत्त करो, नजरानों और श्रम पर आश्रित थे, इससे कभी-कभी इन लोगों में इस सामाजिक धन को लेकर झगड़े हो जाया करते थे। ब्राह्मण समाज में अपना स्थान सर्वोच्च मानते थे, इससे क्षत्रियों के अहं को चोट लगती थी। लेकिन वैश्यो और शूद्रों के साथ विरोध होने पर पर ब्राह्मण और क्षत्रिय अपना आपसी मन-मुटाव भुलाकर एक हो जाया करते थे। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार क्षत्रिय ब्राह्मणो की सहायता के बिना फल-फूल नही सकता था और ब्राह्मण बिना क्षत्रियों की क्षत्रछाया के शान्ति मे जी नही-सकता था। इस प्रकार पारस्परिकता के निर्वाह द्वारा दोनो मिल कर संसार पर शासन करने का सकल्प पूरा कर सकते थे।'

(ख) जैनोबौद्ध प्रतिक्रियाएं

पृष्ठ ५८- हमें नाना प्रकार की निजी सम्पत्ति के खिलाफ भी जबरदस्त प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। निश्चय ही चांदी के और सम्भावित सोने के भी, सिक्कों के प्रचलन तथा सचय को पुरानी परम्परा के लोग पसन्द नही करते थे। वे नए आवासो, नए परिधानो और सुख-सुविधा वाले नए परिवहन को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे और वे युद्ध और हिसा से घृणा करते थे, नए प्रकार की सम्पत्ति ने सामाजिक असमानताओं को जन्म दिया था और जनसाधारण के कष्ट बढ गये थे। इसलिए सामान्य लोग आदिम अवस्था के जीवन पर लौटने को लालायित थे। वे उस आदर्श तपस्वी जीवन मे लौटना चाहते थे जिसके लिए नए किस्म की सम्पत्ति अथवा नई जीवन-पद्धति की कोई आवश्यकता नही थी। बौद्ध और जैन भिक्षुओ के लिए सुखी जीवन वाली वस्तुओ को भोगना वर्जित था। उन्हें सोना और चांदी को छूने की मनाही थी। वे अपने आश्रयदाताओं से केवल उतना ही ग्रहण कर सकते थे, जितना कि जिंदा रहने के लिए जरूरी होता था। इसलिए गगा की घाटी के नए जीवन से जनित भौतिक सुविधाओं का उन्होने विरोध किया। अन्य शब्दों में, जैसी प्रतिक्रिया आधुनिक काल में औद्योगिक क्रान्ति द्वारा जनित परिवर्तनों के विरुद्ध हुई, वैसी ही प्रतिक्रिया ईसा पूर्व छठी सदी मे उत्तर पूर्वी भारत में भौतिक जीवन मे हुए परिवर्तनो के खिलाफ हुई थी। जिस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के उदय के बाद अनेक लोग मशीन पूर्व युग में लौटने की इच्छा करने लगे थे, उसी प्रकार उस युग के लोग भी लौह पूर्व युग में लौटने की कामना करने लगे थे।

पृष्ठ ५९ पर लिखा है :—जैन धर्म ने वर्ण-व्यवस्था की निंदा नही की है। महावीर के मतानुसार पूर्व जन्म मे अर्जित पाप अथवा सदगुणों के कारण ही किसी व्यक्ति का जन्म निम्न अथवा उच्च वर्ण में होता है।······

जैन धर्म में खेती करने अथवा युद्ध में भाग लेने पर इस कारण पाबन्दी लगा दी कि इनमे जीव हत्या होती है। ···चूंकि जैन धर्म ने अपने को ब्राह्मण धर्म से स्पष्ट रूप से पृथक नहीं किया, इसलिए आम जनता बडी संख्या में इसकी ओर नही झुकी।'

क्या जैनियों को, (यदि वे उन्नति करना चाहते हैं) हिन्दुओं से अलग होने का उपदेश नही दिया जा रहा ?

नव भारत का उदय होने दो

[स्वामी विवेकानन्द जी की आत्मकथा से]

ऐ भारत के उच्च वर्ग वालो ! तुम अपने को शून्य मे तीन करके आदृश्य हो जाओ और अपने स्थान मे नव भारत का उदय होने दो। उसका उदय हल चलाने वाले किसान की कुटिया से, मछुऐ या मोचियों और मेहतरो की झोपडियों से हो। बनिए की दुकान से, रोटी बनाने वाले की भट्टी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों, हाटो और बाजारो से वह निकले। वह नव भारत अमराईयो और जगलो से, पहाडो और पर्वतो से प्रकट हो।

ये साधारण लोग हजारों वर्षों से अत्याचार सहते आए है। बिना कुलबुलाए उन्होने ये सब सहा है और परिणाम मे उन्होने आश्चर्य कारक धैर्य शक्ति प्राप्त कर ली है। यह सतत कष्ट सहते रहे हैं जिससे उन्हेने अविरल जीवन शक्ति प्राप्त हा गयी है। मुट्ठी भर अन्न से पेट भर कर ससार को कपा सकते हैं। उनको केवल तुम आधो रोटी दे दो और देखो कि सारे ससार का विस्तार उनको शक्ति के समावेश के लिए पर्याप्त न होगा। उनमें रक्त बीज की अक्षय जीवन शक्ति भरी है। भूतकाल के ककाल देखो तुम्हारे सामने उत्तराधिकारी खड़े हैं। भावी भारत वर्ष खड़ा है। अपने खजाने की उन पिटारियों को और उन रत्नजडित मुद्राओ को उनके बीच जितनी जल्दी हो सके फेंक दो। और तुम हवा मे मिल जाओ। फिर कभी दिखाई न दो।

—प्रेषक : जगदीश लाल

संस्था—समाचार

१५-१-७८ का साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम

वक्ता	आर्यसमाज
१ प० अशोक कुमार विद्यालंकार	माडल टाउन
२ प० दिनेश चन्द जी शास्त्री व्याकर्णाचार्य	गाधी नगर
३ श्री देवव्रत जी धर्मेंदु	हनुमान रोड
४ प० सत्यपाल जी बेदार	नारायण विहार
५ पं० विद्याव्रत जी वेदालकार	दरिया गज
६ प० प्राण नाथ जी सिद्धान्तालंकार	तिलक नगर
७ प० ब्रह्मप्रकाश जी शास्त्री	किंग्जवे कैम्प
८ श्री वीरेन्द्र जी परमार्थ	राणा प्रताप बाग
९ प० श्रुत बन्धू जी शास्त्री	जग पुरा भोगल
१० प० देवेन्द्र जी आर्य	सोहन गज
११ प० विसन प्रकाश जी शास्त्री	विक्रम नगर (कोटला फिरोज शाह)
१२ स्वामी सूर्या नन्दजी	न्यू मोती नगर
१३ प्रो० कन्हैया लाल जी	गुड मन्डी
१४ डा० वेद प्रकाश जी	आर्य पुरा
१५ पं० महेश चन्द्र जी भजनोपदेशक	सराय रोहेला
१६ प० देव राज जी वैदिक मिसनरी	नागल राया
१७ प० सुदर्शन देव जी शास्त्री तथा ज्ञान चन्द डोगरा जी	किशन गज (मिल एरिमा)
१८ श्री मनोहर लाल जी भजनोपदेशक	पाण्डव नगर
१९ पं० उदय पाल सिह जी आर्यो पदेसक	लक्ष्मी बाई नगर (ई० १२०८)
२० प० वेद कुमार जी वेदालकार	विनय नगर
२१ स्वामी स्वरूपानन्द जी	दसई दारा पुरा
२२ स्वामी ओ३म आश्रित जी	महावीर नगर
२३ प० आशा नन्द जी भजनोपदेशक	के० डी० ७८ ए० अशोक विहार
२४ श्रीमती प्रकाश जी	जी—३०० पारिवारिक सत्सग नारौजो नगर
२५ पं० गनेश दत्त जी वानप्रस्थी	रघुबीर नगर
२६ पं० सत्यपाल जी मधुर भजनोपदेशक	१६८ राजा गार्डन (पारिवारिक सत्संग)
२७ पं० वेदपाल जी शास्त्री	लड्डू घाटी
२८ आचार्य हरि देव जी तर्क केसरी	मण्डी पहाड़ गज

जै जै हो दीना बंधु

—ब्र० [illegible] जी आर्य

जै जै हो दीना बन्धू नाथ तेरी हो जै···

१ उठ कर सुबह नाम तेरा जों ध्यावे
रहे सोत चित्त न कोई भय ही सतावे
सारे जगत में हो उसकी विजय जै··

२ नही कोई माता तेरा पिता भ्राता
नही जिस्म अपना तू स्थूल रखता
हर जगह ईश्वर व्यापक तू है—जै·

३ योगी योगीस्वर सभा सरेष्ट जन
रहते हैं हर वक्त तेरी सरण
तेरे नाम की सदा पीते है मैय—जै··

४ यह कृपा प्रभू हम पर कीजो
हों सदा चारी यही वर दीजो
हो अनन्त को धर्म वैदिक की लैय—जै···

—प्रेषक ज्ञान चन्द डोगरा जी

आर्य पुरोहित सभा दिल्ली प्रदेश

बाजार सीताराम का वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ

(१) संरक्षक : श्री स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती
(२) प्रधान : पं० श्री चन्द्रभानु जी सिद्धान्त भूषण
(३) उपप्रधान : श्री पं० प्रकाश चन्द्र जी आचार्य
(४) मन्त्री : श्री वेद कुमार वेदालकार, एम० ए०
(५) उपमन्त्री : श्री पं० छविकृष्ण जी शास्त्री एम० ए०
(६) कोषाध्यक्ष : श्री पं० यशपाल जी शास्त्री एम० ए०
(७) लेखानिरीक्षक : श्री पं० धर्मवीर जी शास्त्री

प्रतिष्ठित सदस्य :

(१) श्री अमर स्वामी जी महाराज
(२) श्री देवव्रत जी धर्मेन्दु—

मन्त्री

गायत्री महामंत्र का महत्व

गायत्री महामंत्र का हृदय रोग पर अद्भुत प्रभाव

प० वीरसेन वेदश्रमी, वेद विज्ञानाचार्य, इन्दौर

११ सितम्बर से १२ अक्टूबर, १९७३ तक योगाचार्य श्री प्रो० बलदेवप्रसाद जी आर्य के गृह पर देवास मे सवा लाख गायत्री का यज्ञ मैंने कराया जिसमे श्री रामचन्द्र कन्हैयालाल जी सोनी, जेल रोड, देवास निवासी ने प्रारभ से अन्त तक पूर्ण श्रद्धा के साथ भाग लिया था। यज्ञ से १०-११ दिन पूर्व ही इन्हें हृदय रोग की तीसरा दौरा हुआ था और डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी थी। इन्होने यज्ञ में भाग लेने की इच्छा प्रकट की तो मैंने उन्हें अनुमति दे दी।

यज्ञ प्रातः २११-३ घंटे और सायं २-२११ घंटे होता था। परंतु प्रथम दिवस से ही इतना यज्ञ श्रम होने पर भी कोइ विपरीत प्रभाव नही पड़ा। ३२ दिन में यज्ञ पूर्ण हुआ। स्वास्थ्य एवं बल उत्तरोत्तर सुधरता गया। वे एक भी दिन अनुपस्थित नहीं हुए।

अचानक दि० १३-१०-७७ को वे इन्दौर मे मिले। मैंने पूछा-कैसा स्वास्थ्य है ? उन्होने कहा—'यज्ञ को हुए ४ वर्ष हो गये। मैं पूरी तरह स्वस्थ हूँ।' इसी प्रकार सन् १९७६ मे भी श्री दिग्विजय मिल जामनगर के प्रेसीडेन्ट श्री वी० एन० बालासरिया को भी हृदयरोग पर लाभ हुआ था। फरवरी से ६ फरवरी ७६ तक उनके निवास स्थान पर मेरे द्वारा यज्ञ सम्पन्न हुआ था। हृदय रोग का दूसरा आक्रमण उन्हे हुआ था। वे अत्यन्त अशक्त थे। परंतु ६ दिन मे शारीरिक शक्ति वृद्धि मे आश्चर्यजनक लाभ भी हुआ। तब से वे नित्य यज्ञ करते है।

साध्वी तपस्विनी आदरणीया ललिता अम्बाजी को भी एक बार अहमदाबाद मे हृदयरोग का आक्रमण हुआ था। मैं भी उन दिनों अहमदाबाद गया हुआ था। वे औषधि नही लेती थी, अत मैंने यज्ञ का प्रस्ताव किया जिसे उन्होने स्वीकार किया। यज्ञ के वातावरण में बैठने से उन्हें लाभ हुआ।

इसी प्रकार यज्ञ का लाभ जन्म से गूंगे को वाणी प्रदान करने, बुद्धि-वृद्धि, विविध प्रकार के शारीरिक, मानसिक कष्टों के निवारण, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि अनेक समस्याओं के हल करने में उपयोगी प्रमाणित हुआ है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में जो यह लिखा है—"जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा हो जाय।"—यह ध्रुव सत्य है।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार

की औषधियां सेवन करें

शाखा कार्यालय: ६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली–६ फोन नं० २६१४३८

दिल्ली के स्थानीय विक्रेता :—

(१) मैं० इन्द्रप्रस्थ आयुर्वेदिक स्टोर, ३७७ चांदनी चौक दिल्ली। (२) मै० ओम् आयुर्वेदिक एण्ड जनरल स्टोर, सुभाष बाजार, कोटला मुबारकपुर नई दिल्ली। (३) मै० गोपाल कृष्ण भजनामल चड्ढा, मेन बाजार पहाड़ गंज, नई दिल्ली। (४) मै० शर्मा आयुर्वेदिक फार्मेसी, गडोदिया रोड आनन्द पर्वत, नई दिल्ली। (५) मै० प्रभात कैमिकल कं०, गली, खारी बावली दिल्ली। (६) मै० ईश्वरदास किशनलाल, मेन बाजार मोती नगर, नई दिल्ली। (७) श्री वैद्य भीमसैन शास्त्री, ५३७ लाजपतराय मार्किट दिल्ली। (८) दि-सुपर बाजार, कनाट सर्कस, नई दिल्ली। (९) श्री वैद्य मदन लाल ११ ए शंकर मार्किट दिल्ली। (१०) मै० दि कुमार एण्ड कम्पनी, ३५४७, कुतुबरोड, दिल्ली-६

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड़ नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड़, नई-दिल्ली।

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

साप्ताहिक नई दिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड़, नई दिल्ली-१ · दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक १२ रविवार २९ जनवरी, १९७८ दयानन्दाब्द १५३

गुरुकुल कांगड़ी समाचार

सार्वदेशिक सभा के प्रधान लाला रामगोपाल वानप्रस्थी एवं स्वामी श्रद्धानंद जी की पौत्री श्रीमती पुष्पा जी द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की सुरक्षार्थ आमरण अनशन प्रारम्भ :

रविवार, २२ जनवरी १९७८ को प्रात: आर्य समाज मन्दिर दीवान हाल में एक सार्वजनिक सभा में ही लाला रामगोपाल जी ने घोषणा की कि अनशन करने का निश्चय करने से पूर्व उन्होंने गत छ मास में प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकार के सभी मन्त्रियों एवं प्रधानमंत्री जी से मिल कर यह चेतावनी दी कि गुरुकुल कांगडी की पवित्र राष्ट्रीय संस्था को जिस प्रकार सरकारी सहायता से अवाछनीय तत्वों, जिनका आर्य समाज से कोई सबन्ध नहीं है और जिन्हें आर्यो की सर्वोच्च संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाज की प्राथमिक सदस्यता से भी निष्कासित कर रखा है द्वारा नष्ट किया जा रहा है। न्यायालयों के वे सभी फैसलों की प्रतियाँ जिनमे इन अवाछनीय तत्वो को एक साधारण आर्यसमाजी भी स्वीकार करने से इनकार कर दिया था एव गुरुकुल के वैधानिक कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा के पक्ष मे सभी प्रमाण पत्र सभी मन्त्री महोदयों के सम्मुख रखे और सभी ने स्वीकार किया कि वैधानिक पक्ष तो यही है कि श्री बलभद्र कुमार जी हूजा कुलपति है और शिक्षा मन्त्रालय एव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के रिकार्ड मे भी यही कुलपति है परन्तु राजनीतिक दबाव के कारण आर्य समाज को सरकार द्वारा न्याय नही दिया गया। आर्य समाज के साथ वर्तमान सरकार द्वारा इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार के विरुद्ध एव गुरुकुल कांगडी जिसे उस महान राष्ट्रीय नेता निर्भिक सन्यासी स्वामी श्रद्धानंद जी ने अपने रक्त से सीचा था, को नष्ट होने से बचाने के लिये स्वामी श्रद्धानंद जी की पौत्री श्रीमती पुष्पा जी के साथ मैं आमरण अनशन पर बैठ रहा हूँ। आर्य समाज ने पूर्व भी अनेक बलिदान दिये है और प्रत्येक बलिदान से आर्य समाज अधिक शक्तिशाली हुआ है। आर्य समाज अन्याय को सहन नही करेगा। यदि मेरा बलिदान भी होता है तो आर्य समाज को उससे भी बल मिलेगा और सरकार की आर्य समाज के प्रति अपनाई गई पक्षपातपूर्ण नीति जनता के सामने आयेगी। इस सभा मे सभी प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रधानो, स्वामी रामेश्वरानद जी (हरयाणा), श्री वीरेन्द्र जी (पंजाब), श्री छोटू सिंह (राजस्थान), श्री नवनीत लाल एडवोकेट (दिल्ली) श्रीमती कौशल्या देवी जी (मध्यप्रदेश), श्री वैद्य रविदत्त जी, स्वामी ओमानन्द जी, श्री प्रो० बलराज मधोक, राजगुरु जी, श्रीमती ईश्वर देवी जी (प्रान्तीय महिला सभा दिल्ली) सभी ने लाला जी का समर्थन किया और विश्वास दिलाया कि प्रत्येक प्रान्त की सभा लाला जी के साथ है। आर्य जनता अपने धार्मिक हितो की रक्षार्थ बडी से बडी कुर्बानी देने के लिये तैय्यार है।

इस आन्दोलन को चलाने के लिये विभिन्न समितियो का गठन किया गया और सभी प्रान्तीय सभाओ को अखिल भारतीय स्तर पर इस आन्दोलन को चलाने के लिये सत्याग्रहियो की भर्ती का आदेश दिया गया। यदि ३० जनवरी तक सरकार द्वारा न्यायसगत कदम न उठाया गया तो आन्दोलन तीव्र रूप धारण करेगा जिसमे हजारो आर्य नरनारी सरकार की पक्षपातपूर्ण अन्याय सगत नीति के विरुद्ध हर प्रकार का बलिदान देगे।

विशेष सूचना

● रविवार २९ जनवरी ७८ को प्रात ११ बजे आर्य समाज हनुमान रोड (बाबा खडक सिंह मार्ग) से दिल्ली के निकटवर्ती आर्य समाजों, आर्य स्त्री समाजो एव आर्य जनता का एक विशाल जनसमूह शिक्षा मन्त्री प्रताप चन्द्र चुन्दर की कोठी कृष्णा मेन रोड पर गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय हरिद्वार से अवाछनीय तत्वो का निकालने की माग करने हेतु प्रदर्शन करेगा सब आर्य समाज बन्धु द्वारा जलूस मे सामिल हो।

× × ×

● लाला जी और बहिन पुष्पावती के आमरण अनशन से उत्पन्न हुई स्थीति पर विचार करने के लिए दिल्ली की समस्त आर्य समाजों तथा स्त्री आर्य समाजो के कार्यकर्ता की एक आवश्यक बैठक शनिवार दिनाक २८-१ ७८ को सायकाल ५ बजे आर्य समाज मन्दिर दीवान हाल मे होगी सभी आर्यजन इसमे पधार कर अपना सहयोग प्रदान करें।

सम्पादक : सरदारीलाल वर्मा, सह-सम्पादक : सत्यपाल

आदर्श आचार्य

—श्री बलभद्र कुमार हूजा (कुलपति, गुरु. कां विश्वविद्यालय)

नैन छिदन्ति शस्त्राणि नैन दहतिपावकः ।
नचैनं क्लेदयन्ति आपोः नः शोषयति मारुतः ।।

गीता का यह श्लोक सहसा मेरे पूज्य पिताजी के मुखारबिन्द से उस समय निकला जब दिसम्बर १६२६ की एक काली शाम को लाहौर से निकलने वाला दैनिक ट्रिब्यून अमर वीर स्वामी श्रद्धानन्द की शहादत का समाचार लेकर पश्चिमोत्तरी सीमान्त प्रान्त के दूरवर्ती नगर डेरा इस्माइल खान में पहुँचा। 'धन्य है स्वामी श्रद्धानन्द जिन्होंने जीते जी कितनी बार ही अपने उसूलो की खातिर सर्वस्व बलिदान किया और मरते वक्त भी अपनी जिन्दगी की आन और शान को बरकरार रखा। ऐसे ही महान व्यक्तियो के रक्त से राष्ट्रोत्थान की जड़ें सीची जाती है। वह मरे नही अमर हो गये। मौत हो तो ऐसी हो। यह उद्गार मुझ बारह बरस के बालक को पिता श्री के मुख से सुनने को मिले। मैं भला क्या जानूं कि शहादत क्या होती है? परन्तु यह जरूर सोचता रह गया कि क्यो, किस पागल ने गोली चला कर उनकी हत्या कर दी? मेरे दिल मे भी स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति आदर था इसलिये कि दो वर्ष पहले ही उनके सानिध्य मे मथुरा मे हुई दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर मेरा उपनयन सस्कार हुआ था। पिताजी का तो उनके साथ पुराना गहरा सम्बन्ध था।

सुराज्य भी स्वराज्य से हीन

जब ४ मार्च, १६०२ को स्वामी श्रद्धानन्द (तब महात्मा मुशीराम) ने गगा के पूर्वी तट पर हरिद्वार से चार किलोमीटर दूर कागडी ग्राम मे गुरुकुल की स्थापना की थी तो पूज्य पिताजी बीस वर्ष के नवयुवक थे। हिन्दुस्तान में उस समय आजादी की लहर यौवन पर थी। छ वर्ष पहिले बाल गगाधर तिलक ने उद्घोष किया था कि स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। स्वामी दयानन्द तो सत्यार्थप्रकाश में लिख ही गये थे कि विदेशी राज्य कितना ही सुराज्य क्यों न हो स्वराज्य से अच्छा कभी नही हो सकता। उनसे प्रेरणा पाकर आर्य समाज भी अपने तरीके से स्वराज्य प्राप्ति के लिये देश को तैयार कर रहा था। अविद्या के नाश और विद्या के प्रचार के लिये आर्य समाज कटिबद्ध था। १८८६ मे लाहौर में डी०ए०वी० कालेज की स्थापना हो चुकी थी। परन्तु प्रोफेसर गुरुदत्त और महात्मा मुशीराम डी० ए० वी० आन्दोलन को यथेष्ठ उग्र नहीं मानते थे। यह आर्य समाज के शिक्षा और वेद प्रचार के कार्यक्रम को अधिक प्रचण्ड करना चाहते थे। इसलिये आर्य समाज में दो दल खड़े हो गये। एक था कालेज दल और दूसरा था गुरुकुल दल। महात्मा मुशीराम गुरुकुल दल के नेता थे और गुरुकुल की स्थापना के लिये वह अपना घरबार छोड धन-संग्रह का संकल्प कर चुके थे। उनका व्रत सफल हुआ और १६ मई सन् १६०० को गुजरावाला नगर मे (जो कि अब पाकिस्तान में है) गुरुकुल की स्थापना की गई। बाद मे जब नजीबाबाद जिला बिजनौर के दानवीर ठाकुर अमन सिंह ने हरिद्वार के समीप कांगडी ग्राम मे अपनी १४०० बीघा जमीन गुरुकुल को भेट की तो महात्मा मुशीराम ने गुरुकुल को कांगड़ी मे स्थानान्तरित कर दिया।

गुरुकुल का उद्देश्य

गुरुकुल का उद्देश्य केवल वैदिक शिक्षा का प्रचार करना ही नही था बल्कि वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षा प्रणाली के द्वारा ओजस्वी, वर्चस्वी ब्रह्मचारी पैदा करना था जो देशोत्थान के कार्य मे दत्तचित होकर देश की सर्वांगीण प्रगति मे समुचित योगदान दे सके। इस सम्बन्ध मे महात्मा मुंशीराम ने अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त की व्याख्या करते हुये जो भाव प्रकट किये हैं वह आज भी पठनीय हैं। महात्मा मुंशीराम न केवल तत्कालीन शिक्षा पद्धति से असन्तुष्ट थे बल्कि वह अध्यापक वर्ग से भी अपेक्षा करते थे कि वह ब्रह्मचर्य सूक्त मे वर्णित आचार्य की संज्ञा पर पूरे उतरें। वह केवल एक विषय पढ़ाने वाले अध्यापक, प्राध्यापक, लेक्चरर या प्रोफेसर होकर ही न रह जाये, बल्कि सही मानों मे गुरु के पद का भार संभाले और ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में स्थापित करके अपने आचार व्यवहार द्वारा उसे राष्ट्र का व्रती नागरिक बनाने में पूरे मनायोग से अपना उत्तरदायित्व निभायें। ब्रह्मचर्य सूक्त के मंत्रों की व्याख्या करते हुए जगह-जगह पर उन्होंने अपने ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं।

बोध युक्त शिक्षा प्रणाली

तत्कालीन शिक्षा प्रणाली के दोषों का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं—'वर्तमान शिक्षा प्रणाली कैसे विद्यार्थी उत्पन्न करती है? आज से ४२ वर्ष पूर्व जिस प्रकार काशीपुरी में कालेजो के विद्यार्थी व्यभिचारी दोषो से पीडित लट्ठ और छुरी की लडाई लडते थे, आज भी कालेजो के केन्द्र स्थानो मे छुरी चल रही है। इसमें विद्यार्थी का कितना अपराध है, इस पर विचार करना चाहिये। जिन्हें माता-पिता ने पशु-जीवन व्यतीत करते हुये उत्पन्न किया है, जिन्हे व्यभिचारी, लम्पट, विषयी पुरुषों ने शिक्षा दी, कालेज मे पहुँच कर जिनके सामने बडे नेताओं का दुराचरणपूर्ण जीवन रखा गया, उनसे आशा ही क्या की जा सकती है? कालेज, रावी के इस पार हो या उस पार? इससे कुछ लाभ नहीं, जब तक कि माता-पिता के उत्तम संस्कारों से प्रभावित होकर बालक आचार्यकुल मे निवास नही करता। तभी तो वह उत्तम आचार्य चुनने के योग्य होगा।

'स्वयं आचार्य प्राप्त कर'

'हे ज्ञान के जिज्ञासु विद्यार्थी! स्वयं अपने शरीर को समर्थ बना, स्वय अच्छे आचार्य को प्राप्त हो, स्वय उसकी सेवा कर जिससे तेरा यश (कुसंग के साथ) नष्ट न हो।' कैसा उत्साहजनक उपदेश है। क्या कालेजों की वर्तमान स्थिति में कोई विद्यार्थी अपने लिये स्वयं आचार्य को स्वीकार कर सकता है? सैकडों में कोई एक आत्मज्ञ प्रिन्सिपल दिखाई देता है, दौडता हुआ, जिज्ञासु ब्रह्मचारी उसके पास पहुँचता है, प्रिन्सिपल युवक के शुद्ध भावों को पहचानता है, परन्तु शोक! प्रविष्ट करने की नियत संख्या पूरी हो गई और एक भी और प्रविष्ट नही हो सकता, फिर आचार्य को कैसे चुने?

"परन्तु आचार्य भी कहाँ मिलते हैं! और बेचारे करें भी क्या? उन्हें प्रविष्ट करते हुये विद्यार्थी की परीक्षा लेने का क्या अधिकार है? प्रार्थी की आँखें भयानक हैं, उसका मुख पिशाचत्व का नमूना है, उस पर विषय भोग अंकित है, परन्तु परीक्षा की पर्ची जिसके पास है उसे इनकार नही किया जा सकता। ऐसी अवस्था में गुरु और चेला दोनो ही असन्तुष्ट हैं।

'कौन तुझे (तेरे अंग प्रत्यंग की परीक्षा कर) छेदन करता (अर्थात् तेरा सार जान लेता है), कौन तुझे उत्तम शिक्षा देता? कौन तेरे (भौतिक और आत्मिक) अगों को शान्ति पहुँचाता है और कौन तेरा यक्षकर्ता तत्व ज्ञानी कवि है? कहाँ यह गुरु शिष्य का आदर्श और कहाँ आजकल का बेमेल जोड़। जब तक जाति की शिक्षा जाति के हाथ मे नही आती तब तक शिक्षणालयों को राज्य के प्रबन्ध से अलग करके उनकी स्थिति का निर्भर उनके आचार्यों के सदाचार और उच्च जीवन पर ही नही रखा जाता और जब तक माता-पिता शुद्ध भाव से सन्तान उत्पन्न करके उनमें आचार्य चुनने को योग्यता का संचार नही करते, तब तक वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमें दिनो दिन रसातल की ओर ही लिये जायेगी।'

सच्चे आचार्य दुर्लभ

एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं, "ससार सच्चे आचार्यों के बिना पीडित हो रहा है। उसका अशान्त हृदय सच्चे पथप्रदर्शकों के बिना व्याकुल हो रहा है परन्तु इधर से आशाजनक शब्द भी सुनाई देता है। शिकायत है कि अच्छे विद्यार्थी नहीं मिलते। किन्तु शिकायत वाले यह भूल जाते हैं कि सच्चे आचार्य दुर्लभ हो गये हैं।' जिस वेद का उपदेश ऊपर दिया गया है, उस वेद का प्रचार जिस देश

(शेष पृष्ठ ३ पर)

सम्पादकीय

बलिदानी यज्ञ आरम्भ

आपके हाथों में जब पिछला अंक पहुँचा होगा, तब से ही आपके मन में आर्य जगत् की सर्वोच्च शिक्षा संस्था 'गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी' के सम्बन्ध में चल रहे धर्मयुद्ध के विषय में पडने वाली आहुतियों के प्रति उत्सुकता जाग गई होगी। साथ ही आपका मन भावी कर्त्तव्य के लिए चंचल हो उठा होगा।

जैसा कि समाचारपत्रों के माध्यम से आपको अब पता चल ही चुका होगा कि आखिर भारत सरकार के प्रमुखतम अधिकारी आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री लाला रामगोपाल जी शालवाले वानप्रस्थी एवं श्रद्धेय स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पौत्री श्रीमती पुष्पादेवी जी द्वारा २२ जनवरी से आमरण अनशन आरम्भ करने की घोषणा को केवल एक गीदड भभकी ही मानकर रह गए। आखिर उन्होंने गुरुकुल से उन अवांछित तत्वों को निकालने मे न कोई सक्रियता दिखाई और न आतुरता। यहाँ तक कि उन्होने अनशन आरम्भ होने से पूर्व किसी प्रकार की बातचीत तक का संकेत न दिया अत: पूर्व घोषणा के अनुरूप इन दोनों महान् नेताओं ने आर्यसमाज दीवान हाल में एक विशाल जनसमूह एवं आर्य सार्वदेशिक सभा तथा पंजाब आर्य विद्या सभा के अधिकारियों के सम्मुख यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके मन्त्रोच्चार के साथ अपना आमरण अनशन विधिवत् ढंग से आरम्भ कर दिया। जब तक यह पत्र आप के हाथ मे पहुँचेगा, तब इसे आरम्भ हुए कई दिन होने को आएँगे। अब तक के लक्षणो के आधार पर यह कहना आश्चर्यजनक न होगा कि भारत सरकार एक बार आर्य समाज की शक्तिपरीक्षा और बलिदानी प्रवृत्ति की परीक्षा लेने पर तुली हुई है। अत आर्य समाज को भी अपने भावी कार्यक्रम के लिए अभी से सन्नद्ध होना।

इसी अवसर पर हुई आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा की कार्यकारिणी ने दो अत्यधिक महत्वपूर्ण निश्चय भी किये। सर्वप्रथम निश्चय तो यह किया गया कि आगामी रविवार २६ जनवरी के दिन सारे भारत की आर्य समाजे भारत सरकार के प्रति 'विरोध-दिवस' के रूप में मनाएँ। इस दिवस को सभाओं एव जलूसो के रूप में मनाया जा सकता है। इन सभाओं में प्रस्ताव पारित करके भारत सरकार से तुरन्त माँग करनी चाहिए कि वह तुरन्त ही गुरुकुल पर से इन अनार्यों के टोले के कब्जे को समाप्त करे। साथ ही इस दिवस को 'सत्याग्रह-तैयारी-दिवस' के रूप में भी मनाना चाहिए। क्यों कि एक अन्य प्रस्ताव द्वारा यह भी निर्णय किया गया है कि यदि ३१ जनवरी तक भारत सरकार ऐसा करने में समर्थ नही रहती तब प्रथम फरवरी से सारे देश के आर्यजन बाकायदा जत्थो के रूप मे भारत सरकार के प्रमुख मन्त्रियों के घरो के आगे विरोध-प्रदर्शन एव सत्याग्रह आरम्भ करेंगे। सभी प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओ को इस सत्याग्रह की तैयारी के विषय में अभी से व्यापक आदेश दिये जा रहे हैं। अधिकांश सभाओं के प्रतिनिधियों ने अभी से हजारो की संख्या मे अपने सत्याग्रही जत्थो के भेजने का आश्वासन भी दिए है। परन्तु आवश्यक है कि इस भावी धर्म युद्ध के लिए हम सब अभी से तन-मन-धन की बाजी लगाने के लिए तैयार हो जाएँ।

आर्य समाज ने जब-जब भी ऐसे धर्म युद्ध को आरम्भ किया है, वह सदा ही विजयी बन कर निकला है। इस बार भी निस्सन्देह वही विजयी बनकर निकलेगा। यह युद्ध आर्य समाजियो और अनार्य-समाजियों के बीच है। कम्युनिस्टों ने सभी धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाओं में अपने युवावर्ग को घुसपैठ करके उन पर अधिकार कर लेने की जिस महायोजना का सूत्रपात किया था, हरियाणा की 'आर्य सभा' का निर्माण पक्के कम्यूनिस्ट स्वामी अग्निवेश ने उसी के आधार पर किया था। हर सामान्य कम्यूनिस्ट की भाँति इस सभा के स्वामियों का एक ही आदर्श है: तोड-फोड और बल के आधार पर जैसे-तैसे आर्य समाज की विशाल सम्पत्ति पर कब्जा करना तथा ऋषि दयानन्द का नाम लेकर भोली-भाली आर्य जनता को गुमराह करना। हरियाणा तथा पंजाब की अनेक आर्यसमाजों पर तो इन्होने वहाँ के स्वार्थी तत्वों एवं उधार के गुण्डों की सहायता से पहले से ही कब्जा कर लिया था, अब पिछले दो वर्षों में दो बार हमारी सर्वोच्च शिक्षा संस्था गुरुकुल कांगडी पर भी वे दो बार गुण्डों की सहायता से बलपूर्वक कब्जा कर चुके हैं। पिछली बार भारत सरकार के तत्कालीन प्रतिरक्षा मन्त्री श्री बंसीलाल ने उनकी सहायता की थी, तो इस बार केन्द्रीय सरकार के अन्य दो तीन मन्त्रियो ने उनकी खुल-कर सहायता की है। २२ जनवरी को प्रकाशित इसी स्वामी अग्निवेश के अपने ही वक्तव्य के अनुसार उन्हे भारत के शिक्षामन्त्री, स्वास्थ्यमन्त्री, एव गृहमन्त्री का वरदान प्राप्त है। थोड़े से असत्य को भी सुनकर बौखला उठने वाले श्री राजनारायण एव चौधरी साहब इस झूठे वक्तव्य को सुनकर भी क्यो मौन है, यह बात समझ नहीं आती। भारत के शिक्षामन्त्री तो आर्य समाज एवं आर्य संस्कृति के प्रति उपेक्षावान् और विरोधी हो, यह बात समझ मे आती है। पर ऋषि दयानन्द भक्त चौधरी साहब भी गुरुकुल पर आपत्ति ढाने वालो को तुरन्त रोकने मे सहायता न दे और इस प्रकार गलत ढग से प्रयोग करने दे, यह बात सामान्य जनों की समझ से बाहर की है, यह सबको विदित है कि सन्यासियो के इस टोले को बहुत पहले ही आर्य सार्वदेशिक सभा से आर्य समाज को प्राथमिक सदस्यता से भी निकाल दिया है। फिर किस प्रकार देश का कोई नेता या अधिकारी इन्हें आर्य समाज की ही किसी भी संस्था का पदाधिकारी मान सकता है, आर्य समाज की सर्वोच्च शिक्षा संस्था 'गुरुकुल कागडो' का अधिकारी मानने की तो बात ही क्या, सच्ची आर्य प्रतिनिधि सभा कौन सी है और गुरुकुल का वास्तविक कुलाधिपति कौन है, इस विषय में सार्वदेशिक् आर्य प्रतिनिधि सभा के ही निर्णय को ही सर्वोपरि माना जा सकता है। अत वह सार्वदेशिक सभा और उसके माध्यम से सारे देश के आर्य समाजियों का सरासर अपमान है कि इस सभा द्वारा निकाले हुए व्यक्तियों को ही गुरुकुल का वास्तविक अधिकारी बताकर उन्हे हर प्रकार की सहायता दी जा रही है।

अत: आर्य जगत् को इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए अपनी सिंह गर्जना करके उठ खड़ा होना है और सारे ससार के सामने सिद्ध करना है कि हम अभी सर्वथा शक्तिहीन नही हुए है और हममें अब भी पुरानी ज्वाला शेष हैं।

इसलिए अब हमे एक स्वर से सत्याग्रह के नारे को बुलन्द करने को तैयार हो जाना चाहिए ताकि इन बलिदानी नेताओ की आहुति व्यर्थ में ही न दे दी जाए।

यहाँ यह कह देना और भी आवश्यक है कि उधर स्वयं गुरुकुल कागडी मे वहाँ के अध्यापकों की परिषद् के अध्यक्ष एवं संस्कृत विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक डा० निगम शर्मा से २२ जनवरी से ही आमरण अनशन आरम्भ कर दिया है. इसके अतिरिक्त दीवान हाल में ही प्रतिदिन सैकडों अन्य आर्य जन भी इन बलिदानी वीरो के साथ-साथ ही अनशन में शामिल होते हैं

क्या सरकार समय रहते चेतेगी ? क्या आर्यजन समय पर सब बलिदानों के लिए तैयार रहेगे ?

●●

(पृष्ठ २ का शेष)

मे खुला और जिसके आचार्यों की शरण में बैठ कर सदाचार की शिक्षा लेने अन्य देशों के लोग आते थे, उसी देश मे जब आचार्यों का अभाव है तो किसी स्थान से क्या आशा हो सकती है। नवीन ट्रेनिंग कालेज ऐसे आचार्य उत्पन्न करने मे अशक्त है। जहाँ दिन रात आचार्यों के वेतन बढाने का प्रश्न उठाकर बनियों का सौदा किया जाता है—उन शिक्षणालयों से आशा रखना व्यर्थ है। हे परमगुरु ! तुम्ही अपने शिक्षणालय के अन्दर इस देव-निर्मित भूमि के विद्वानो को खीच लो, जिससे वे सासारिक कामनाओं पर विजय प्राप्त करे और ब्रह्म विद्या का दान देने की शक्तियो की समिधा ब्रह्मचारियो के हाथो मे देकर उन्हे विविध शक्तियों के एकत्र करने केन्द्र बना सके।"

(क्रमश)

क्या आप चाहते हैं कि जन-कल्याण हो ? क्या आप समाज को समुन्नत बनाने के इच्छुक है ? तो सुनिए, वह आपके मिटने से ही हो सकता है। क्या आप मिटने को तैयार है ?

चन्द्र स्वामी (हरिद्वार)

लेखमाला—५

आर्यसमाज जालंधर में प्रथम व्याख्यान

देवराज जी यद्यपि आयु मे मुझ से छोटे है परन्तु आर्य समाज मे मुझसे पहिले प्रविष्ट होने के कारण वे मेरे बड़े आर्य भाई है। फिर भी उस समय उनका समाज लड़को का समाज समझा जाता था। मै मुखतारी की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर एक वर्ष मुखतारी कर चुका था। मुझे इसलिए बुला लिया गया था कि मेरे व्याख्यान को सुनकर जनसाधारण समझ लेगे कि अब गृहस्थी, व्यापारी लोग भी समाज मे सम्मिलित हो रहे है।

मेरे व्याख्यान का विज्ञापन दिया गया। महाराजा कपूरथाला के दीवानखाना के सामने कुछ आगे चल कर मुरली रामपुरी की धर्मशाला प्रसिद्ध थी। उसको किराये पर लेकर आर्य समाज की सभाएँ प्रति रविवार को हुआ करती थीं। मेरा व्याख्यान भी वहाँ ही हुआ। व्याख्यान का विषय था— 'बाल विवाह की हानियाँ और ब्रह्मचर्य का महत्त्व।" भ्राता देवराज जी की हार्दिक इच्छा पूर्ण हुई। बाबू मदनगोपाल, बाबू सलामत राय इत्यादि वकील और अन्य बहुत से प्रतिष्ठित शिक्षित महानुभाव व्याख्यान सुनने के लिए आए। वह स्थान श्रोताओं से ऊपर-नीचे खचाखच भरा हुआ था। व्याख्यान भी अत्यन्त सफलता से समाप्त हुआ। परन्तु जब व्याख्यान के पश्चात् चौक पर पहुँचे और कुछ वकील खड़े होकर मुझे व्याख्यान के लिए बधाई दे रहे थे, उस समय देवराज जी के 'सुरत' ने दूसरी ओर से मुझे बधाई दी—"सुखी रहो यजमान! देवराज जी के सुपुत्र गंधर्वराज की कुड़माई (सगाई) भवानीदास मुनसिफ की सुपुत्री के साथ हो गई है। आप को बहुत-बहुत बधाई।"

पंजाब मे पुरोहित आदि के अतिरिक्त प्रत्येक कुल का एक भोजन बनाने वाला ब्राह्मण 'लांगी' होता है। जिसके बाल बच्चे विवाहादि संस्कारों के अवसर पर यजमानो के घरो मे भोजन बनाने का कार्य करते है। ऐसे 'लांगी' को 'सुरत' कहते है। 'सुरत" बेचारा अभी बधाई दे ही रहा था कि बाबू मदनगोपाल प्लीडर बड़े उच्च स्वर से खिलखिला कर हस पड़े—"वाह, महाशय जी! मुझ पर तो आप के व्याख्यान का बड़ा प्रभाव पड़ा। वाह! वाह!! वाह!!!" बाबू मदनगोपाल की हसी रुकती ही न थी। उनकी हसी ने न केवल 'सुरत' को ही आश्चर्य मे डाल दिया अपितु मार्ग में चलने वालो को भी रोक दिया।

पाठक आश्चर्य चकित होगे कि बाबू मदनगोपाल जी की हँसी पागलपन तक क्यों पहुँच गई? बात यह थी कि उस समय देवराज जी के बड़े सुपुत्र चिरजीव गधर्वराज जी की आयु सम्भवतः एक वर्ष की थी। और लाला भवानीदास बी० ए० मुनसिफ की सुपुत्री की आयु सवा वर्ष की थी। मैं और देवराज जी तो इधर बाल विवाह को रोकने और ब्रह्मचर्य का प्रचार करने मे लगे हुए थे और उधर हमारे पिता राय सालिगराम जी एक वर्ष की आयु के अपने पोते की सगाई सवा वर्ष की आयु वाली कन्या के साथ करने के 'शुभ कार्य' में व्यस्त थे। इस पर एक दर्शक को जितनी भी हँसी आती, थोडी थी। बाबू मदनगोपाल तो हमारी हँसी उड़ाते हुए चले गए और मैं तथा देवराज जी अत्यन्त लज्जित और निराश होकर घर लौट आए। परन्तु हो क्या सकता था? उस समय मौन ही धारण करना पड़ा।

यहाँ समय की गति के चलन का पीछा छोड कर मैं इतना लिख देना आवश्यक समझता हूँ कि जब लड़के और लड़की दोनों की आयु चौदह और पन्द्रह वर्ष तक पहुँची और लडकी के पिता ने विवाह करने पर बल दिया तो देवराज जी के दृढ़ स्वभाव वाला होने के कारण और यह कहने पर कि वे अपने सुपुत्र का विवाह पच्चीस वर्ष से पूर्व सर्वथा न करेंगे, वह सम्बन्ध टूट गया और चिरजीव गधर्वराज का विवाह पूर्ण यौवनावस्था में एक योग्य शिक्षिता देवी के साथ हुआ।

"कुछ आप बीती, कुछ जग बीती"

—स्वामी श्रद्धानन्द

अनुवादक—प्रिंसिपल कृष्ण चन्द्र
एम० ए० (त्रय) एम० ओ० एल०
शास्त्री, बी० टी०

[महात्मा मुंशीराम जी ने १९१३ ई० मे उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत उर्दू भाषा मे कुछेक लेख लिखे थे। आर्यजनों की आधुनिकी पीढी इन लेखो से अनभिज्ञ है क्योंकि प्राय समस्त सामग्री इस समय अनुपलब्ध है। प्रस्तुत लेखमाला पाठको को महात्मा मुंशीराम को समझने मे, उनके प्रारम्भिक जीवन को जानने में सहायता तो देगी ही साथ ही ज्ञान-वृद्धि मे सहायक भी बनेगी।]

वेद महिमा

यद् अंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत् तत् सत्यमंगिर॥

ऋ० १. १ ६॥

विनय

हे प्रकाशमय देव! यह सच है कि स्वार्थत्यागी का कल्याण ही होता है। पर दुनिया में ऐसा दिखाई नही देता। दुनिया मे तो दीखता है कि स्वार्थमग्न लोग ही आनन्द मौज उड़ा रहे हैं और स्वार्थत्यागी दु ख भर रहे है। स्वार्थी विजय पर विजय पा रहे है दूसरों पर जुल्म कर रहे हैं और स्वार्थत्यागी पुरुष सताये जा रहे है। परन्तु हे मेरे प्यारे देव! हे मेरे जीवनसार! आज मैं तेरी परम कृपा से सूर्य की तरह यह साफ देख रहा हूँ कि आत्म-बलिदान करने वाले का तो सदा कल्याण ही होता है, इसमे कुछ सशय नही रहा, यह अटल है, बिल्कुल स्पष्ट है। दुनिया की ये प्रतिदिन की उल्टी दिखाई देने वाली घटनाये भी आज मेरी खुली आखों के सामने से इस प्रकाशमान सत्य को छिपा नही सकती हैं कि आत्म-समर्पण करने वाले के लिए कल्याण ही कल्याण है। मैं देखता हूँ कि दुनिया मे चाहे कभी सूर्य टल जाय, ऋतुएँ बदल जाये, पृथ्वी उल्टी घूमने लग जाय और सब असंभव सभव हो जाय पर यह तेरा सत्य अटल है कि आत्म-बलिदान करनेवाले का अकल्याण कभी नही हो सकता—"**नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति**" ["हे प्यारे! कल्याण करनेवाला कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता"] कृष्ण भगवान् के गाये हुए ये सान्त्वनामय शब्द परम सच्चे है।

हे जीवन के जीवन! जब मनुष्य स्वार्थ को त्यागता है, आत्म-बलिदान करता है तो उस त्याग व वलिदान द्वारा हे कल्याण-स्वरूप! वह केवल तेरे और अपने बीच की रुकावट का ही त्याग करता है, निवारण करता है और तेरे कल्याणस्वरूप को पाता है। भला, आत्म-बलिदान में अकल्याण की गुंजाइश ही कहाँ है? सचमुच स्वार्थशून्य पवित्र पुरुषो पर आये हुए कष्ट, दुःख आपत् सब क्षणिक होते हैं। उनके सम्बन्ध मे जो अक्षणिक है, सत्य है, अटल है वह तो उनका कल्याण है।

शब्दार्थ

(**अंग**) हे प्यारे (**अंगिर**) मेरे जीवनसार (**अग्ने**) प्रकाशक देव! (**यत् त्वं**) जो तू (**दाशुषे**) आत्म बलिदान करने वाले का (**भद्रं**) कल्याण (**करिष्यसि**) करता है (**तत्**) वह (**तव**) तेरा (**सत्यं इत्**) सच्चा, न टलने वाला निगम है।

सच्चा धर्म निरपेक्ष राज्य

—डा० सत्यकाम शर्मा

आज हम भारत का अट्ठाइसवाँ गणतन्त्र दिवस मनाने जा रहे है। निश्चय ही यह दिवस इस बार अनेक दृष्टियो से अत्यधिक महत्वपूर्ण हो उठा है। स्वतन्त्र भारत के इतिहास मे यह प्रथम बार है कि कांग्रेस के अतिरिक्त कोई अन्य दल केन्द्रीय सत्ता को पाने में समर्थ हो सका है। हमारे स्वतन्त्र होने के बाद से यह दूसरी बार है कि हमें एक ऐसा प्रधान मन्त्री मिला है कि जो भारतीय संस्कृति को संस्कृत के मूल ग्रन्थो के माध्यम से, प्रथम साक्षात्कार के रूप में, जानता है। ऐसे प्रथम प्रधान मन्त्री थे स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री, जिन्हे भारतीय जनमानस की रगों में बहती विचारधारा का सही ज्ञान था। किन्तु उन्हे हमारे बीच अधिक दिन रखना भगवान को स्वीकार नही था। गांधी जी के कदमो पर चलने वाले दूसरे ऐसे गीताभक्त प्रधानमन्त्री है श्री मोरारजी देसाई, जिन्होने भारतीय संस्कृति को न केवल जिया है, बल्कि उन तत्वों से गूढ एव निकट परिचय पाया है जो उस संस्कृति के घटक तत्व कहे जा सकते है।

इससे अधिक अन्तर यह है कि इस बार के मन्त्रिमण्डल मे लगभग एक दर्जन से भी अधिक सदस्य ऐसे है, जिन्होने अपने व्यक्तिगत या धर्म सम्प्रदाय के भिन्न रहते भी वेद और गीता के सन्देश को भारतीय संस्कृति का मूल सन्देश मानकर जिया और स्वीकारा है। भारत के स्वातन्त्र्योत्तर इतिहास मे यह पहली बार है कि यहाँ के प्रधानमन्त्री ने गाँधी जी के सत्य-प्रेम-अहिंसा के त्रिगुण पर आधारित सत्याग्रह को एक अन्तर्राष्ट्रीय नीति के रूप मे प्रयोग किया है। अभी हाल के अमेरिकी राष्ट्रपति एव ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की यात्राओ के मध्य एक ओर जहाँ उन्होंने आणविक अस्त्रो को अपनाने और किसी प्रकार के आणविक विस्फोट को न करने की अपनी एकतरफा घोषणा करके 'अहिंसा' को अन्तर्राष्ट्रीय नीति मे अत्युच्च स्थान या है, वहाँ उन दोनों द्वारा दिये गए हर प्रलोभन और धमकी की नितान्त उपेक्षा करके उन्होने अडिग रहने की अपनी सत्याग्रही प्रवृत्ति को भी स्पष्ट कर दिया है। इससे भी बढकर मानवीय अधिकारो की रक्षा के लिए उन्होने स्वय को एक सत्याग्रही के रूप मे दक्षिण अफ्रीका जाने की पेशकश करके दुनिया के राजनीतिकों के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

किन्तु ऐसी सरकार भी जब 'धर्मनिरपेक्षता' के सच्चे अर्थ और महत्व को समझने मे गलती करती प्रतीत होती हो, तब उसे अज्ञानजन्य गलती न रहकर जानबूझ कर की जाने वाली गलती ही कहना होगा। वास्तव मे वेद मे जिस स्वराज की कल्पना की गई है, वह सच्चा धर्म-निरपेक्ष राज्य ही है। श्रीमद्भगवद्गीता के उद्गाता श्रीकृष्ण जब 'स्वधर्म' और 'स्वकर्म' करते हुए मरने की बात करते है, तब भी वे एक सच्चेधर्मनिरपेक्ष राज्य के एक आदर्श नागरिक के ही कर्त्तव्यो की चर्चा करते हैं। मनु महाराज ने जिस राज्य और राजतन्त्र की विधि-संहिता बताई है, वह किसी एक सम्प्रदाय या धर्म की बपौती नहीं है। सच्ची धर्म निरपेक्षता का अर्थ है कि किसी भी सम्प्रदाय विशेष की मान्यताओ को सर्वसामान्य की प्रगति मे आड़े न आने देकर समाज के निम्न से निम्न व्यक्ति के चरम उत्थान का एक समान प्रयास करना। सच्चा धर्म निरपेक्ष राज्य किसी भी ऐसे कानून को स्वीकार करने को तैयार नही होगा, जिसमे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, ब्राह्मण या हरिजन, आदि के नाम पर उस-उस वर्ग को एक विशेष स्थान या महत्व देने का प्रयास किया गया हो। उसका हर कानून इस ढग का होना चाहिए, जिसमे हर सम्प्रदाय को ईश्वरोपासना सम्बन्ध मान्यताओं को निबाहने मे तो कोई बाधा न पड़े, किन्तु जिससे एक वर्ग को दूसरे सम्प्रदाय, वर्गो की अपेक्षा कोई विशेष सुविधा या अधिकार भी प्राप्त न हो। फिर चाहे मामला भूमि का हो, व्यापार का, विवाह का, सन्तान-सीमा का, उत्तराधिकार का, या सम्पदा के वितरण का। हमारे कानून चाहे समाजवाद पर आधारित हो या किसी अन्य वाद पर, उनमे जो भी बात निहित हो वह देश के हर नागरिक पर समान रूप मे लागू होनी चाहिए। जब तक हम इस सिद्धान्त को नही अपनाएगे, तब तक भारत सच्चा वैदिक आदर्श का धर्मनिरपेक्ष गणतन्त्र नही बन सकेगा। न ही सच्चे अर्थो मे सबको समान अधिकार प्राप्त हो सकेंगे? ऐसे समान अधिकार प्राप्त न होने की दशा मे सच्चा समाजवाद या 'वैदिक स्वराज्य' भी स्थापित न हो सकेगा। जब तक हमारे कानून हिन्दू, मुस्लिम आदि सम्प्रदायो के आधार पर बनते रहेंगे, तब तक हम सब धर्मो मे ऐक्य एव समभाव को भी जागृत करने मे असमर्थ रहेगे। इसका अर्थ होगा, हम सच्ची भारतीयता को भी जगाने मे असमर्थ होंगे।

क्या धर्म की रक्षा तभी हो सकती है, जब हम किसी एक वर्ग विशेष को, स्त्रियो को 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' के रूप में अधिकाधिक संख्या मे छूट दे, जबकि दूसरो को अन्य धर्म अपनाने के कारण स्त्रियो के समादर एव उनके अधिकारो की रक्षा के नाम पर केवल एक ही विवाह की अनुमति दे। यदि स्त्रियो के अधिकारो की रक्षा देश के अन्यनागरिकों के लिए जरूरी है, तब मुस्लिमों के लिए क्यो नही? क्या मुस्लिम स्त्रियाँ अन्य स्त्रियों से कमजोर या हीन किस्म की हैं? अथवा क्या मुस्लिम पुरुष औरों से अधिक सम्पन्न एव समर्थ है? उनका यह अधिकार 'धार्मिक' अधिकार नही है। यह तो सामाजिक बात है, जिसे धर्म की आड मे पुरुष अपने स्वार्थसिद्ध के लिए बचाता रहा है। अत. धर्मनिरपेक्ष राज्य मे ऐसी बात नही चलनी चाहिए। इसी प्रकार, यदि सम्पत्ति के उत्तराधिकार में हम स्त्रियो को बराबर का भागीदार समझते हैं, तब यह बात केवल हिन्दू या अन्य वर्गों तक ही सीमित न रहकर सारे भारतवासियो के लिए समान रूप से लागू होनी चाहिए। केवल पुत्री ही नही, पत्नी को भी पति के साथ समान अधिकार मिलना चाहिए। इस देश के स्मृतिकाननों की विशेषता यह रही है कि वे समय के अनुसार बदलते रहे हैं। उनमे 'हिन्दू' जैसी कोई विशेष बात नहीं है। मुस्लिम राज्य के समय भी कानून हिन्दू-मुस्लिम आदि के लिए अलग नही होते थे। फिर आज धर्मनिरपेक्ष राज्य में ऐसा क्यो?

यही बात हरिजनों के सम्बन्ध मे है। 'एक' ओर तो हम उन्हें विशेषाधिकार देते हैं, दूसरी ओर उन विशेषाधिकारों को पाने के लिए अनेक योग्य व्यक्ति भी अपने को 'हरिजन' के रूप में अलग सिद्ध करने के लिए व्याकुल दीखते है। परिणाम यह कि सच्चे अर्थो मे पिछड़े हुए 'हरिजन' लोग उन विशेषाधिकारो को नही भोग पाते, जो उनके लिए प्रदान किये जाते हैं। इसके स्थान पर यदि आर्थिक और सामाजिक रूप में शोषित सभी भारतीयो को एक समान रियायते घोषित कर दी जाएँ, तब न कोई अपने को 'हरिजन' कहलाने से गर्व अनुभव करेगा, न अपमान। बल्कि तब सच्चे घोषित और दलित लोग ही उन अधिकारो को पाने मे समर्थ हो सकेंगे। परिणाम यह होगा कि 'समानता' या 'उद्धार' का लोभ दिखाकर उन्हें जो धर्म परिवर्तनादि के लिए प्रलोभित किया जाता है, वह भी व्यर्थ हो जाएगा। क्योकि तब वह समानता उन्हे राज्य प्रदान करेगा।

जब भारतीय राजनीति के कर्णधार सत्य का आग्रह लेकर विरोध की बिना परवाह किये सर्वमानवहितकारी एक समान नियमों के निर्माण और उन्हें लागू करने के लिए उद्यत न होंगे, तब तक कहना होगा कि उन्हें भी केवल अपने लिए वोट पाने की चिन्ता है—देश की जनता और जनसामान्य के उद्धार की नही। वेद मे भगवान् ने 'यथेमां वाचं' कल्याणीमावदानि जनेभ्यः' कहकर मानवमात्र को जिस समानता का उद्घोष किया है, तथा 'केवलाघो भवति केवलादी' कहकर जिस 'आर्थिक समानता' को मानव मात्र का जन्म सिद्ध-अधिकार घोषित किया है, उसे व्यवहार मे उतारने के लिए हमारे नेताओं को सच्चा समानतावादी बनना होगा। तभी हम सच्चे सर्वहितकारी वैदिक समाजवादी राज्य की स्थापना में समर्थ हो सकेंगे। ●●

।। स्वामी दयानन्द जी का संक्षिप्त जीवन ।।

।। स्वामी जी के जन्म से पहिले का भारत ।।

—स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती

यह सत्य है कि भारतवर्ष संसार का गुरु रहा है। किन्तु महाभारत के पश्चात् यह देश न केवल छोटे २ राज्यों में ही विभक्त रहा है, अपितु जैन, बौद्ध, रामानुज, शंकर, नानक, कबीर दादु पन्थ, गरीबदासी, उदासी आदि अनेक सम्प्रदायो में भी विभक्त हो गया था और जन्म जाति का गढ बन चुका था। छुअ-छूत का तो साम्राज्य था क्योंकि एक आर्य दूसरों के हाथ का अन्न-जल भी ग्रहण नही करता था, परस्पर सहयोग तो दूर रहा। किन्तु सवर्ण हिन्दू असवर्ण हिन्दू की छाया पड़ने से अपने आप को भ्रष्ट मानता था। भारतीय संस्कृति, सभ्यता का सर्वथा नाश हो चुका था। वेदों का पठन-पाठन समाप्त प्राय था—केवल आजीविका के लिए वेदों के कुछ सूक्त पढे जाते थे। एक ईश्वर के स्थान पर अनेक देवी देवताओं का पूजन होता था। बाल विवाह, वृद्ध विवाह होते थे तथा विधवा, अनाथ प्रतिदिन ईसाई-मुसलमान होते जा रहे थे। उनकी चिन्ता किसी को भी न थी। यदि कोई स्वधर्मी विधर्मी होने के पश्चात् पुनः स्व धर्म मे आना चाहे तो उसके आने का मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। विदेशी राज्य के कारण अपना वेष, भाषा, भाव और भोजन भूलकर विदेशी भाषा और भोजन वेष और भाव बन गये थे।

देश में सर्वत्र गो हत्या, मद्य, मास आदि का सेवन होता था। ऐसे विकट समय में स्वामी दयानन्द जी का १८८१ विक्रमी सं० में गुजरात प्रान्त के मौरवी राज्य के टकारा ग्राम मे जन्म हुआ था। जैसा कि स्वामी जी ने स्वय वर्णन किया है।

।। स्वा० जी का स्व कथित जीवन वृत्तान्त ।।

बहुत से लोग हम से पूछते हैं कि हम कैसे माने आप ब्राह्मण हैं। आप अपने सम्बन्धियों की चिट्ठी मगा दो या किसी की पहिचान बता दो अथवा कोई अपना परिचित जन बुला दो जो आप को पहिचान सके।

शिखरिणी—कहो कैसे मानें द्विज गृह हुआ था जनम जी,
मगा दो चिट्ठी वा परिचित बुला दो जन यहाँ।
पिता माता जी का वह नगर तेरा अब कहाँ,
निजी सम्बन्धी का परिचय बता दो वह जहाँ ।।१।।

यद्यपि स्वामीजी जन्म जाति के प्रबल विरोधी थे किन्तु बहुत से स्वार्थी महाराज को इसाइओं का दूत कहते थे। इसलिये स्वामी जी को निज वृत बताने पर विवश होना पड़ा।

।। अब तक स्व वृत्तान्त न बताने का कारण ।।

अन्य देशों की अपेक्षा गुजरात देश से मोह विशेष है। यदि मैं अब से पहिले परिवार का परिचय देता तो मुझे बड़ी उपाधि लग जाती जिससे मैं अब मुक्त हो गया हूँ।

शिखरिणी—सभी प्रान्तों मे मोह अति गुजराती जन पदे,
पुराने सम्बन्धी खबर सुन पाते यदि वहाँ।
यहाँ भी वे आते विपद लग जाती फिर महा,
छूटा हूँ मैं जा से वह लिपट जाती सब यहाँ ।। २ ।।

वैसे तो अन्य प्रान्तों में भी पुत्रादि के प्रति मोह होता है परन्तु इतना नही है कि पुत्र को बाहर पढने न भेजना और इसके विपरीत विवाह की व्यवस्था कर देना जिससे वह घर में ही फंसा रहे तथा संन्यास के वस्त्र धारण करने पर भी स्वामी जी के सिद्ध पुर के मेले में पकड के वस्त्र फाड दिये और सैंकड़ों कुवा कप कहना तथा पुलिस को सौंप देना कि इसका विश्वास न करना यह निर्मोही एवं कुल-कलंक तथा मातृ हत्यारा है परन्तु धन्य है ऋषि दयानन्द को जिसने २३ वर्ष की आयु मे भी पिता जी के समक्ष कुछ न कहा। संभव है यदि स्वामी जी के विवाह की इतनी शीघ्रता न करते तो स्वामी जी अभी घर से न भागते। काशी पढने जाते तब भी घर आते, विवाह से तो स्वामी जी को इतना भय हुआ कि जैसे बिछू से काटे को सांप से कटवाना होता है। इसीलिये विवाह से बचने का और कोई उपाय न था अतिरिक्त गृह त्याग के। (क्रमशः)

आर्य सन्देश द्वारा

—कवि कस्तूरचन्द "घनसार" (राज०)

(१)

पाया सत्य बोध को, द्वारा आर्य सन्देश।
मिटे चले जो संशय था, सहते नित्य कलेश ।।
सहते नित्य कलेश, आर्य सन्देश न आया।
वैदिक-विद्या ज्ञान, देव दयानन्द लाया ।।
कहते कवि "घनसार", पावन पियूष पिलाया,
गये सकल भय भाज, आर्य सन्देश जब पाया ।।

(२)

विद्या-बोध विचार ले, आता आर्य संदेश।
मिटे अविद्या जाल सब, पढ़ते जभी हमेश ।।
पढ़ते जभी हमेश, सत्य-ज्ञान वही आवें।
भरा रहा भ्रमज्ञान, तभी समूल से जावें ।।
कहते कवि "घनसार", प्रतिदिन हटती अविद्या।
आते वैदिक ज्ञान, साथ में सच्ची विद्या ।।

(३)

स्वामी न आते जगत् में, बह जाते भव कूप।
कौन बताते आर्य पथ, वैदिक विशद स्वरूप ।।
वैदिक विशद स्वरूप, जाल यह कौन मिटाता।
भ्रम बन्धन को तोड़, कौन सद् मार्ग बताता ।।
कहते कवि 'घनसार', कृपा करो अन्तर्यामी।
भेज दिया जग मांहि, देव दयानन्द स्वामी ।।

संस्था–समाचार

२६-१-७८ का

साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम

वक्ता	आर्य समाज
१ पं० सच्चिदानन्द जी शास्त्री	हनुमान रोड
२ पं० देवराज जी वैदिक मिशनरी	तिलक नगर
३ श्री वीरेन्द्र जी परमार्थ	किग्जवे कैम्प
४ पं० राजकुमार जी शास्त्री	विक्रम नगर (कोटला फिरोज शाह)
५ प० वेद प्रकाश जी महेश्वरी	न्यू मोती नगर
६ प० देविन्द्र जी आर्य	गुड मन्डी
७ पं० प्राणनाथ जी	सराय रोहेला
८ डा० नन्द लाल जी	नांगल राया
९ प० अशोक कुमार जी विद्यालकार	किशन गज (मिल एरिया)
१० पं० आशानन्द जी भजनोपदेशक	महरौली
११ प्रो० कन्हैया लाल जी	गीता कालोनी
१२ प० गनेश दत्त जी वानप्रस्थी	गोविन्द पुरी
१३ प० उदय पाल सिंह जी आर्य	बसई दारा पुर
१४ पं० विद्याव्रत जी वेदालंकार	महावीर नगर
१५ स्वामी स्वरूपानन्द जी	अशोक विहार
१६ स्वामी सूर्यानन्द जी	नौरोजी नगर एफ० ६० (श्री पी० सी० भाटिया)
१७ पं० सुदर्शन देव जी शास्त्री	लाजपत नगर
१८ ब्रह्म प्रकाश जी शास्त्री	लड्डू घाटी
१९ प० विश्व प्रकाश जी शास्त्री	कृष्ण नगर
२० प० सत्य पाल जी आर्य	जनक पुरी सी० ३ ब्लाक
२१ मनोहरलाल भजनोपदेशक	रघुवरपुरा

शोक सभा

आर्य समाज घोंडा की ओर से शोक सभा मे स्व० पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी, स्व० पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी, मधुर तथा ओजस्वी वक्ता स्व० पूज्य प्रकाशवीर जी शास्त्री संसद सदस्य, स्व० पूज्य प्रकाश चन्द्र जी कविरत्न तथा पूज्य स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक एव अन्य सभी सन् १९७७ में स्वर्ग पधारने वाले आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को श्रद्धाजलि अर्पित की गई तथा दिवंगत आत्माओं की सद्गति के लिये दो मिनट का मौन रख कर प्रार्थना की गई।

मन्त्री

धूम्रपान से हानि

'एक सिगरेट पीने से आपकी जिन्दगी के साढ़े पाँच मिनट कम हो जाते हैं। सिगरेट पीना किसी भी दृष्टि से स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित नहीं है। इस तथ्य का रहस्योद्घाटन स्काटलैण्ड की धूम्रपान विरोधी संगठन की चिकित्सका श्रीमती एलियठा काफ्टन ने किया।

इसके साथ उन्होंने यह भी बताया कि जितनी कम उम्र में लोग धूम्रपान शुरू करेंगे, उन्हें फेफड़ों का कैंसर होने का खतरा उतना ही ज्यादा होगा।

हकीकत राय बलिदान दिवस बसन्त मेला

अखिल भारतीय हकीकत राय सेवा समिति एवं आर्य समाज विनय नगर नई दिल्ली की ओर से रविवार १२ फरवरी १९७८ को प्रात. ८ बजे से २ बजे तक आर्य समाज मन्दिर, वाई ब्लाक सरोजिनी नगर में मनाया जायगा। जिसमे अनेक विद्वान व नेता पधार कर अपने विचार रखेगे। इस अवसर पर बच्चो का गायन तथा भाषण प्रतियोगता (धर्मवीर हकीकत के जीवन से शिक्षा) होगी। जो बच्चे भाग लेना चाहे वे अपने नाम शीघ्र भेज दे।

हरियाणा में पीने के पानी की सुविधाओं में वृद्धि

नई दिल्ली १२ जनवरी (लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा)।

हरियाणा के राजस्व मंत्री श्री प्रीतसिंह राठी ने कहा कि अगली फसल से पूर्व फालतू भूमि को काश्तकारो मे वितरित करने के लिए जिला प्रशासन को निर्देश दिए जा चुके है।

जींद से ५० किलोमीटर दूर, गांव खेरी शेरखांन मे एक जनसभा में उन्होने यह घोषणा भी की कि विश्व बैंक से एक करोड़ ८० लाख रुपये की आर्थिक सहायता से जींद जिले के लगभग २४ गाँवों को अगले पांच वर्षों में पीने के पानी की सुविधा प्रदान की जाएगी।

डटकर संघर्ष करना है

कुछ ही दिन पूर्व समाचार-पत्र मे एक समाचार पढ कर मन अति दुखित हुआ। समाचार था कि एक पुरुष ने अपनी सात महीने की संतान को देवी की भेंट कर दिया। इस प्रकार के समाचार समय-समय पर हमें समाचार-पत्रो में पढने को मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के समाचार सुनने मे और भी अधिक आते है।

नरबलि का इस प्रकार का घृणास्पद कार्य मात्र दूर-दराज के ग्रामीण ही नहीं करते अपितु उच्च वर्ग (धन की दृष्टि से) के बहुत से लोग भी इसमे विश्वास रखते है। उच्च वर्ग के इन कार्यों का तो ज्ञान भी बहुत कम ही हो पाता है।

ऋषि दयानंद ने इस जघन्य वृत्ति के विरुद्ध डटकर संघर्ष किया। ऋषि ने बलपूर्णक प्रमाणों सहित ये सिद्ध किया कि इस प्रकार की नरबलि वेद विरुद्ध है। इसका विशद विवेचन हमें 'सत्यार्थ-प्रकाश' के उत्तरार्द्ध मे मिलता है। आज हमारा देश स्वतत्र है। यहाँ पर प्रजातंत्र है। लेकिन क्या हम वास्तव मे स्वतत्र है? नही, आज भी हमारा एक बहुत बड़ा भाग सकीर्ण विचारो से ग्रस्त है और उन्ही संकीर्ण विचारों के कारण वह समय-समय पर घृणित कार्य करता रहता है। प्रजातंत्र में मनुष्य का विकास अत्यधिक तीव्र गति से हो सकता है। लेकिन हमारे देश में ऐसा नही होरहा।

ऐसी स्थिति में आर्यसमाज की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो उठती है। ऋषि दयानन्द आदि अनेक आर्य पुत्रो मे जिस प्रकार स्वतंत्रतापूर्वक अपनी बलि देकर देश के जनमानस में स्वतत्रता की की लहर दौडाई ठीक उसी प्रकार आज भी आर्य पुत्रों की मानवता के लिये समाज मे व्याप्त कुरीतियों एव इस प्रकार के घृणित विचारों के विरुद्ध डटकर सघर्ष करना है। समे पूरा विश्वास है कि स्वतंत्रतापूर्वक आर्यपुत्रों के बलिदान की भांति आज के आर्य पुत्रो का सघर्ष भी रंग लायेगा। इससे देश में विकास एव खुशहाल तो आयेगी ही साथ ही आर्य समाज की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी।

—सत्यपाल

निःशुल्क चिकित्सालय

डा० वी० पी० सहगल सी० एच० पी०, (उत्तर प्रदेश सरकार) भूतपूर्व उप-प्रधानाचार्य; बी० एच० एम० सी० (इलाहाबाद), भूतपूर्व अध्यक्ष आर० आई० एम० (होम्योपैथी इलाहाबाद) जीर्ण रोग-विशेषज्ञ, बालरोग एवं स्त्री-विशेषज्ञ प्रत्येक मगलवार को साय चार बजे से छः बजे तक डा० दौलतराम आर्य धर्मार्थ होम्यो चिकित्सालय (आर्य समाज मन्दिर, १५, हनुमान रोड मे सेवार्थ उपस्थित रहते हैं। आप उपर्युक्त समय में उनकी निःशुल्क सेवा प्राप्त करे।

मन्त्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मन्त्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक नई दिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड़, नई दिल्ली-१ दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक १३ रविवार ५ फरवरी, १९७८ दयानन्दाब्द १५३

लक्ष्य पूर्ति तक आमरण अनशनों का तांता
आर्य नेताओं की ललकार:

समय रहते सरकार सम्भले, वरना आर्य जगत् की ललकार का सामना करना होगा

अनशनों का दसवां दिन : सरकारी तंत्र बिल्कुल उदासीन

दिल्ली की विशाल सभा में उत्साह और चिंता

नई दिल्ली, २९-१-७८। गत रविवार की दोपहर दो बजे आर्य समाज दीवान हाल में आर्य जगत् की एक विशाल सभा आयोजित हुई। इसमे आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले वानप्रस्थी, स्वामी श्रद्धानन्द जी की पौत्री बहिन श्रीमती पुष्पावती, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की अध्यापक परिषद् के अध्यक्ष श्री डा० निगम शर्मा एवं उनकी सहधर्मिणी द्वारा गुरुकुल कांगड़ी में हो रहे अनधिकृत सरकारी हस्तक्षेप एवं गुण्डा तत्वों के अनाचार एवं बलात् कब्जे के प्रश्न पर भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा ध्यान न दिये जाने के विरोध में एवं वहाँ के वैधानिक कुलपति को मान्यता एवं आर्थिक अनुदान न दिये जाने के विरोध में आरम्भ किये अनशनों का

(लाला रामगोपाल शालवाले)

आठवाँ दिन हो जाने पर भी सरकारी तन्त्र के हरकत में न आने तथा अनशनकर्ताओं की शारीरिक स्थिति निरन्तर बिगडते जाने पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई। देशभर के आर्यसमाजी एवं सनातनी नेताओं ने सरकार को यथाशीघ्र ही आर्य जगत् की इस सर्वोच्च एवं आदर्श वैदिक संस्था के विषय मे की जा रही न्याय की पुकार सुनने का आग्रह किया और चेतावनी दी कि यदि सरकार ने अगले चार-पाँच दिन मे ही कोई कदम न उठाया तो सारे आर्य जगत् को सत्याग्रह और आमरण अनशनो की अनवरत शृंखला आरम्भ करने पर मजबूर होना पड़ेगा। नेताओं एवं आर्य प्रतिनिधियो का उत्साह देखते ही बनता था।

(शेष पृष्ठ २ पर)

छपते-छपते

सर्व श्री ओमप्रकाश त्यागी विजय कुमार मलहोत्रा, केदारनाथ साहनी, कुँवरलाल गुप्ता, आदि नेताओं के भरसक प्रयत्न से प्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने गुरुकुल कांगड़ी की समस्या का हल करने का उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लिया है इसलिये गुरुवार २ फरवरी को प्रातः साढ़े नौ बजे श्री बाबू जगजीवनराम रक्षा मंत्री भारत सरकार अपने हाथों से फलों का रस प्रदान कर इस अनशन को समाप्त करायेंगे।

सभा मंत्री

सम्पादक : सरदारीलाल वर्मा, सह-सम्पादक : सत्यपाल

वेद सन्देश

आर्य और दस्यु

ओं वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता
विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥
ऋ० म० १। सूक्त ५१। मन्त्र ८

हे यथायोग्य सबको जानने वाले ईश्वर! आप (आर्यान्) विद्याधर्मादि उत्कृष्ट स्वभाव वाले तथा उच्च कोटि के आचरणों से युक्त व्यक्तियो को आर्य नाम से जानते हैं।

(ये च दस्यव:) और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादि दोषयुक्त, उत्तम कर्मों में विघ्न डालने वाले स्वार्थी, स्वार्थ साधन में सदा तत्पर, वेद विद्या विरोधी अनार्य मनुष्य हैं (बर्हिष्मते) सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वस करने वाले हैं, इन सब दुष्टों को आप (रन्धय) मूल सहित नष्ट कर दीजिये।

और (शासद् अव्रतान्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ संन्यास आदि धर्म के अनुष्ठान अर्थात् इनके व्रत से रहित, वेद के मार्ग का उच्छेदन करने वाले, वेद की शिक्षा के विरुद्ध चलने वाले अनाचारियों को यथायोग्य नियन्त्रित करो जिससे वे भी शिक्षा युक्त हो के शिष्ट हो अथवा आर्य सज्जनो के वश में ही रहें।

आप ही (शाकी) जीव को परम शक्ति युक्त करने वाले और (चोदिता) उत्तम कामो मे प्रेरणा करने वाले हैं। आप हमें दुष्ट कामों से हटाने वाले हो।

मैं भी (सधमादेषु) उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ, उच्च पदो पर स्थित होता हुआ (विश्वेत्ता ते) तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म करने की (चाकन) कामना करता हूँ। सो मेरी यह कामना पूरी करें, मेरे पथ प्रदर्शक बनें।

(पृष्ठ १ का शेष)

इस सभा की अध्यक्षता प्रसिद्ध आर्य सन्यासी श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह ने की। उन्होंने खुले शब्दों में कहा कि "स्वामी श्रद्धानन्द को आज से इकावन वर्ष पूर्व अब्दुल रशीद ने छाती पर सामने से गोली मारकर उनका कत्ल किया था, किन्तु उनके लगाए वटवृक्ष गुरुकुल कांगडी का इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करने पर आमादा अनाचारी लोग तो उनकी पीठ मे छुरा भोंक कर उन्हें फिर से मार रहे हैं।" उन्होंने श्री शालवाले को 'महात्मा' कहते हुए उन्हे 'अमर' रहने और विजयी होने का आशीर्वाद दिया। उन्होने यह भी कहा कि अपने को सन्यासी कहने वाले अग्निवेश आदि के वचनो पर विश्वास नही किया जा सकता। गुरुकुल की वर्तमान स्थिति की पृष्ठभूमि बताते हुए श्री पृथ्वीसिंह आजाद, अध्यक्ष गुरुकुल कांगडी एवं श्री वीरेन्द्र जी, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, ने विस्तार से इन 'वेश-नामी' सन्यासियो के उन काले कारनामों का इतिहास बताया जो कि वे गुरुकुल एवं आर्य समाज के ध्वंस की दिशा में आरम्भ से ही करते रहे हैं। इन दोनों आर्य नेताओं ने यह भी बताया कि गुरुकुल के वास्तविक अधिकारियो के सम्बन्ध मे वैधानिक स्थिति क्या है, तथा वहाँ के वैधानिक कुलपति को काम करने देने से कौन सी ताकतें रोक रही है। साथ ही यह भी बताया कि किस प्रकार भारत सरकार एवं उत्तर प्रदेश सरकार के विविध मन्त्रालय अपनी पक्षपातपूर्ण नीति के कारण सत्य को मानने से इनकार करते रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी के सम्बन्ध मे लगाए गए आरोपों एवं भारत के स्वयंभू 'नेताजी' श्री राजनारायण द्वारा उसके सम्बन्ध मे अनर्गल दखलन्दाजी की

(शेष पृष्ठ ३ पर)

शहीद आजाद : कुछ हकीकतें

—ब्रजभूषण दुबे (कलकत्ता)

अमर शहीद चंद्रशेखर 'आजाद' पर मैं भी उतना ही नाज करता हूँ जितना कोई अन्य देशभक्त करता होगा। शहीद 'आजाद' की स्मृति में अगणित स्मारक इस देश में बन सके तो पथ-भ्रमित देश के नौनिहालों को कुछ चेतना अवश्य मिलेगी। नैतिकता-विहीन राष्ट्र में नैतिकता को एक नयी दिशा दी जा सकती है शहीद 'आजाद' के चरित्र तथा बलिदान को उजागर करने से। विगत दिनों हिन्दी के प्रतिष्ठित साप्ताहिक 'धर्मयुग' में शहीद 'आजाद' के विषय में एक लेख किन्हीं प्रेम कुमारी शुक्ला का प्रकाशित हुआ जिसमें शहीद 'आजाद' के जन्म स्थान, जन्म तारीख तथा जन्म स्थान वाली झोपडी के चित्र की बडी भूलें मैंने २० नवंबर के धर्मयुग में प्रकाशित अपने पत्र में शहीद-श्रद्धालुओं तथा सत्य-समर्थक-पाठकों के समक्ष रखी थी। १८ दिसम्बर के धर्मयुग में श्री धर्मेन्द्र गौड (अवकाश-प्राप्त) केन्द्रीय सहायक गुप्तचर अधिकारी की कलम से पुलिस की गुप्त फाइल के आधार पर मध्यप्रदेश के भावरा तथा उत्तर प्रदेश के बदरका को बराबरी का दर्जा दिया गया। उसके उत्तर मे लेखक का पत्र धर्मयुग मे प्रकाशित नही किया गया, अत: लेखक को विवश होकर अन्य मच से अपनी बात देशवासियों तक पहुँचानी पड रही है :—

'आजाद' के सम्बोधन

शहीद 'आजाद' के विषय में पूर्ण जानकारी का दावा तो स्व० विश्वनाथ गगाधर वैशम्पायन (आजाद के० ए० डी० सी०) नही कर सके। प्रमाणित तथ्यों तथा सग्रहीत पुस्तकों के आधार पर यही कह सकता हूँ—'कि प० चंद्रशेखर तिवारी जिन्हें वाराणसी में १४ बेंता की सजा के बाद ज्ञानवापी वाराणसी के स्वागत समारोह में श्री श्रीप्रकाश ने 'आजाद' की उपाधि दी थी, उन्हें 'हिन्दुस्तान-रिपब्लिकन-एसोसिएशन' के वरिष्ठ सघटक प० रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने अत्यधिक चपलता के कारण 'क्विक-सिलवर' (पारा) नाम दिया था। क्रांतिकारी-दल की दुर्गा भाभी तथा सुशीला दीदी जैसी महिलाएँ उन्हें 'भैया' नाम से पुकारती थी, दल के प्रगतिशील तथा भगतसिंह जैसे शिक्षित सदस्य उन्हें 'पंडित जी' कहते थे और दल के क्रांतिकारी इश्तहारों पर उनके लिये कमांडर-इन-चीफ 'बलराज' लिखा जाता था। पुलिस आजाद के इतने ही नाम जानती थी, किन्तु 'आजाद' 'हरिशंकर ब्रह्मचारी' नाम से सालार नदी के किनारे ढिमरपुरा (ओरछा) में कुछ समय काकोरी-केस के बाद रहे थे।'

आजाद की दृढ़ता

चंद्रशेखर 'आजाद' जैसा गोपनीयता रखने वाला कोई क्रांतिकारी भारतीय-स्वाधीनता-संग्राम मे नही हुआ। 'आजाद' ने लगातार १० वर्षों तक सक्रिय-क्रांतिकारी जीवन चलाया। इतना लम्बा क्रांतिकारी-जीवन विश्व के किसी क्रांतिकारी का नही रहा। इस रिकार्ड के पीछे सतत्-सतर्कता, खतरों से निपटने की अपूर्व क्षमता तथा सराहनीय गोपनीयता का महत्वपूर्ण हाथ है। बालक चंद्रशेखर ने कठोरता के लिये बदनाम वाराणसी के मुन्सिफ खरेघाट की अदालत मे जो बयान दिया था वह अभी भी इस देश के शहीद-श्रद्धालु भूले नही होंगे :—

मुन्सिफ—
तुम्हारा नाम ?
'आजाद'
तुम्हारे पिता का नाम ?
'स्वतत्र'
तुम्हारा घर ?
'जेलखाना'

चंद्रशेखर 'आजाद ने १४ बेंतों की क्रूर सजा के बाद ही फिर कभी जीवित न पकड़े जाने की प्रतिज्ञा की थी और फिर

शेष पृष्ठ ५ पर)

सम्पादकीय

गुरुकुल कांगड़ी की रक्षार्थ अनशन क्यों ?

वेश संप्रदाय एवं उनके साथी जनता को धोके में डालने के लिए दिल्ली नगर की दीवारों पर प्रतिदिन नये पोस्टर लगवा रहे हैं जिसमें अपने को गुरुकुल कांगड़ी एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (जिसमें पंजाब, हरयाणा, दिल्ली एवं हिमाचल प्रदेश को सम्मिलित मानते है) के अधिकारी घोषित कर रहे हैं। इसके बरसल सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं उसके साथ सम्बन्धित सभी प्रान्तीय एवं विदेशीय प्रतिनिधि सभाओं को वह अनार्य, गुण्डे एवं गद्दीधारी घोषित करते हैं। वास्तविकता यह है कि उनकी धारना की न तो कोई आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब है और न ही उसके साथ किसी आर्य समाज का संबन्ध ही है। स्वामी अग्निवेश की तथाकथित आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब उसकी अपनी जेब मे ही है। वह उसके स्वयंभू प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष एव अन्तरंग सभा भी वह स्वय ही है। चार-पांच व्यक्तियों का यह टोला सारे आर्य समाज को नष्ट करने के लिये प्रयत्नशील है। भोली भाली आर्य जनता जिसकी गेरवे कपड़ों और ऋषि दयानंद पर पूरी आस्था है यह लोग उनकी भावुकता का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। जब से यह लोग आर्य समाज में आये है कौन सा कार्य इन लोगों ने आर्य समाज की प्रतिष्ठा को बढाने का किया है। जब से इनके चरण गुरुकुल कागडी में पडे इस पवित्र संस्था जिसके ब्रह्मचारी अपने अध्यापकों को गुरु मानते थे और श्रद्धापूर्वक उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे, इनके आने पर छात्र संघ, कर्मचारी संघ, अध्यापक संघ के रूप में बट गये। यह सारी देन कम्युनिस्ट विचार धारा से ओत प्रोत स्वामी अग्निवेश एवं तत्कालीन कुलपति श्री सत्यकेतु जी महाराज की देन है। गुरुकुल कांगडी का सनातक होने पर भी डा० सत्यकेतु अपनी माँ रूपी इस सस्था को पतन की ओर ले जाने के भी जिमेवार है।

प्रश्न उत्पन्न होता कि सभा एवं गुरुकुल के वास्तविक अधिकारी कौन इसका निश्चय न्यायालय द्वारा क्यों नही कराया गया। इसके लिये अनशन करने की आवश्यकता क्यों पडी। वास्तविकता यह है कि ११ अगस्त तक विधिवत नियुक्त कुलपति श्री बलभद्रकुमार जी हूजा गुरुकुल कागडी का संचालन कर रहे थे। जब गुरुकुल के अस्थाई सचिव जिन्हें यह पता था कि कुलसचिव की स्थाई नियुक्ति के लिये चयन समिति द्वारा उसकी योग्यता के आधार पर स्थाई किया जाना असम्भव था, तब उन्होंने कुलपति जी की अनुपस्थिति में इन स्वयंभु अधिकारियों को बुलाकर यह सारा काण्ड किया जिसके फलस्वरूप शिक्षा मन्त्रालय एव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुदान देना बद हो गया। स्वामी अग्निवेश अपने गुरु जी जो भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री है, को ऐडी चोटी का जोर लगा चुके है परन्तु अनुदान उनके पक्ष में दिया जाना स्वीकार नही हुआ और न ही होगा। इस स्थिति में सबसे अधिक नुकसान गुरुकुल के अध्यापक वर्ग, उनके परिवार और गुरुकुल के छात्र को हो रहा है। अध्यापकों को वेतन न मिलने से जो असुविधा आज कल के महंगाई के युग में हो रही है उसका अनुमान वेतन भोगी जनता भली प्रकार लगा सकती है। जहाँ तक छात्रों का प्रश्न है उनके जीवन से खिलवाड़ हो रहा है। उनको शिक्षा का नुकसान है। परिक्षाये सिर पर आ रही है। वह लोग फीसें दे चुके है, परीक्षाओं के लिये दाखिले भेज चुके हैं परन्तु प्रशन उत्पन्न होता है कि परिक्षायें कौन लेगा, डिग्रिया कौन बाटेंगा। कन्या गुरुकुल देहरादून भी इस विश्वविद्यायल का अंग है उस पर भी इस स्थिति का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए ही आर्य नेताओं ने सरकार के एक एक अधिकारी से मिलकर इस स्थिति को सुलझाने एवं अनाधिकृत लोगों से गुरुकुल परिसार खाली कराने का पूरा प्रयत्न किया। सफलता न मिलने पर सिवाये अनशन के और कोई चारा नहीं था। कचहरी से न्याय तो वर्षों में भी नहीं मिल सकता इसलिए आर्य जगत के सर्वोच्च अधिकारी श्री रामगोपाल जी शालवाले एव उनके अन्य साथीयों ने अपनी जान की बाजी लगा रखी है। समय है कि भारत सरकार के कर्णधार इस समस्या को शीघ्र सुलझाने दे, अन्यथा स्थिति ऐसी बिगड़ेगी कि फिर सम्भालनी कठिन हो जायेगी। ●

(पृष्ठ २ का शेष)

चर्चा करते हुए दोनो ने इन आरोपो को सर्वथा निराधार बताया और स्वय अग्निवेश की आपातकालीन गतिविधियो एवं उसकी सभा द्वारा किये गये लाखों के गबन की जांच की माग की। उन्होने भारत सरकार से माँग की, गुरुकुल के सम्बन्ध में हुए पंजाब हाइकोर्ट समेत अन्य सभी अदालतों के निर्णयो को वह स्वीकार करे और तुरन्त गुरुकुल से अवाछनीय तत्वों को हटाने में सहायता दे। अन्यथा आमरण अनशनों, बलिदानों, एवं सत्याग्रहो की रफ्तार तेज से तेज होती जाएगी।

मध्यप्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से वहाँ के प्रसिद्ध आर्यनेता श्री राजगुरु शर्मा ने अपनी सिंहगर्जना के साथ कहा कि आर्यसमाज अब दो-चार दिन से अधिक मौन रहकर इन अनशनकारियों को शहीद होते देखता नही रहेगा। यदि सरकार ने तब तक कोई भी कदम उठाने से इनकार कर दिया, तब सारे देश मे आर्यक्रान्ति की एक ऐसी आग जलेगी, जिसमें कई ऐसे बलिदान इस प्यासी सरकार की प्यास मिटाने के लिए अनवरत रूप से दिये जाएँगे। उन्होंने आर्य जगत् को सरकार की इस चुनौती का उत्तर देने के लिए तैयार हो जाने का आह्वान किया। उन्होने कहा कि आज लाला शालवाले आर्य जगत् पर आये संकट के प्रतीक हैं। उनकी जान का जाने अर्थ होगा, आर्य समाज और उसके अनुयायियों के खून की प्यास। उन्होने मध्यप्रदेश से अनेक सहस्र सत्याग्रहियो के सम्भावित सत्याग्रह मे भाग लेने का आश्वासन दिलाया।

हैदराबाद के आर्य नेता श्री छगन लाल जी विजयवर्गीय ने सरकार को समय रहते सम्हलने की चेतावनी दी और कहा कि 'जब दक्षिण मे हैदराबाद पर संकट आया था, तब उत्तर भारत के के आर्य समाजियों ने वहाँ की जेले ठसाठस भरकर हमे विजय दिखाई, अब दक्षिणवासियो के लिए उस ऋण को चुकाने का अवसर आ गया है। अब उत्तर भारत में हम लोग अपने जत्थे भेजकर आर्य समाज के लिए जेले भर देंगे। गुरुकुल आर्य समाज का प्राण है। इसे मिटाने का अर्थ है आर्य समाज को मिटाना।'

सनातनधर्म समाज के प्रतिनिधि के रूप मे बोलते हुए श्री प० रघुनाथ जी तर्कभाषाकार ने कहा कि गुरुकुल पर आई विपत्ति सारे हिन्दू जगत् पर आई विपत्ति है, केवल आर्य समाज पर ही नही। इसलिए यह समय हिन्दू जाति की परीक्षा का समय है। गौवध-निषेध एव हिन्दी-आन्दोलन के समान इस समय भी सारे हिन्दू समाज को गुरुकुल को अपना मानकर उसे बचाने के लिए कूद पड़ना होगा। अन्यथा सभी हिन्दू शिक्षा सस्थाएँ इसी तरह नष्ट होती जाएँगी। उन्होने आर्यजगत् को विश्वास दिलाया कि इस संकट की वेला में वह ही अकेला नहीं है।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक महिलाओ और आर्य नेताओ ने संघर्ष के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने के अपने सकल्प को दोहराया। सभा के अन्त में श्री वीरेन्द्रजी ने उस समय के अध्यक्ष श्री चौधरी माडूसिंह जी की आज्ञा से दो प्रस्ताव इस सभा के सम्मुख रखे, जो प्रतिवेदनो के रूप में भारत के शिक्षामत्री एव गृहमन्त्री को दिये जाने का निश्चय हुआ। ये प्रस्ताव सभा ने सर्वसम्मति से पास किये। इनमे इन दोनों ही महामान्य मन्त्रियो से अपने अपने क्षेत्र में शीघ्र ही न्याय करने के लिए कदम उठाने की माँग की गई है, ताकि आर्य समाज को किसी भी बड़े बलिदान एव संघर्ष से बचाया जा सके। ●

आदर्श आचार्य

— श्री बलभद्र कुमार हूजा (कुलपति, गु० का० विश्वविद्यालय)

(गतांक से आगे)

गुरु के कर्त्तव्य बताते हुए वह अन्यत्र लिखते हैं—"भोजन-छादन, रहन-सहन की विधि बतला कर आचार्य ब्रह्मचारी के शरीर को वज्र के तुल्य कर देता है। वेद में आया है कि जब शिष्य गुरु के समीप समित्पाणी होकर जावे तो पहली भिक्षा यह मांगे—'मेरा शरीर चट्टान की तरह दृढ़ हो जावे।' इसके लिये ऊपर कहा है कि दूत्र रूप होकर आचार्य अपने शिष्य ब्रह्मचारी के शरीर को पुष्ट करता है। यह सब आचार्य क्यों कर सकता है? इसलिये कि जीवन के नियमों को उसने सिद्ध कर छोड़ा है। जिस कलाघर के अन्दर से ठीक किया करके वह ब्रह्मचारी को सुडौल शरीर, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा का स्वामी बनाकर निकालना चाहता है, वह उसमें स्वयं भी गुजर कर आया है। इसलिये तो संसार के बुद्धिमान समझने लग गये हैं कि राजा के अयोग्य होने पर इतनी हानि की सम्भावना नहीं है जितनी कि आचार्य के अयोग्य होने से राष्ट्र को हानि पहुँच सकती है—'यथा राजा तथा प्रजा' लोकोक्ति तो प्रसिद्ध है ही लेकिन राजा का इतना प्रभाव प्रजा पर नहीं पड़ता जितना कि आचार्य का शिष्य पर पड़ता है।

"इसलिये जहाँ आचार्य और ब्रह्मचारी आदर्श हों वहाँ ही मोक्ष-सुख की प्राप्ति हो सकती है। वह आनन्द जिसके मध्य में दुःख काल कभी न आवे, तभी फैल सकता है—जब उत्तम आचार्य शिक्षा देने के लिये मौजूद हों।

घोर अशान्ति क्यों?

'संसार में इस समय घोर अशान्ति क्यों फैल रही है? इसलिये कि आचार्यों का अभाव है। टीचर हैं, प्रोफेसर हैं, प्रिन्सिपल हैं, उपाध्याय हैं, उस्ताद, मौलवी हैं—परन्तु शिक्षा शिष्यों को उल्टा अविद्या के गढ़े में धकेल रही है। जो स्वयं पापों के गन्दे कीचड़ में फंसे हुए हैं वे सुकुमार शिष्यों को शुद्धि का पाठ कैसे पढ़ायेंगे? जो स्वार्थान्ध हैं वे दूसरों को निःस्वार्थ तपस्वी कैसे बनायेंगे? फारसी के शायर ने आजकल के शिक्षकों के ही विषय में कहा है, "जो खुद मार्ग भूला है वह दूसरों का पथ-दर्शक कैसे बनेगा? यदि अन्धा अन्धे को लेकर मार्ग पर चले तो वह अपने साथ उसको भी गढ़े में गिरायेगा।"

आचार्य के पास शिष्य किस उद्देश्य से जाता है? आचार्य के समीप पहुँच कर शिष्य निवेदन करता है—

'हे आचार्य! अपने तेज से हमारे रोगों को सब ओर से दूर कीजिये, हमारा शरीर चट्टान की न्याईं दृढ़ हो, अमृत और मृत्यु का हमें उपदेश कीजिये और हमारे लिये सुख का विधान कीजिये।" जिसमें ऊपर कहे गुण निवास करते हों, जो सहज में ही उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला हो वही पुरुष ही तो आचार्य होने के योग्य है। जिसका अपना शरीर वज्र के तुल्य नहीं वह दूसरों का शरीर दृढ़ कैसे कर सकेगा? जिसको स्वयं जिन्दगी और मौत का ज्ञान नहीं वह दूसरों को अमृत कैसे पिला सकेगा?

इसीलिये आगे चल कर स्वामी जी कहते हैं—

"आचार्य बनने के लिये आवश्यक है कि वह श्रेष्ठ गुणों को धारण करने वाला हो। स्वयं पवित्र होकर दूसरे अपवित्रों को जो पवित्र कर सके 'वरुण' देव अर्थात् सदाचारी विद्वान है। ऐसा पुरुष जब वेद के पूर्ण आदेशानुसार बालकों का उपनयन संस्कार करता है और उन्हें ब्रह्मचारी बनाकर रक्षा करता है तब पिता स्वरूप होकर रक्षा करते हुए उसे उसी घर में अर्थात् आचार्य वा गुरु के कुल में पवित्र कर देता है। आचार्य चुनते समय प्राचीन काल में जिस मर्यादा का अवलम्बन लिया जाता था उसकी और आज ध्यान भी नहीं दिया जाता। किसी कालेज का प्रिंसिपल नियत करते हुए यह नहीं देखा जाता कि वह दुराचारी तो नहीं? फिर यह कौन देखे कि वह अपने शिष्यों के हृदय और आत्मा को शुद्ध करने की क्षमता भी रखता है या नहीं। आजकल आचार्य मांस खाने और मद्य पीने वाले हो सकते हैं, ईर्ष्या-द्वेष में फंसकर विद्यार्थी के साथ अनृत व्यवहार करने वाले हो सकते हैं, यहाँ तक कि व्यभिचारी होने पर भी उन्हें कोई शक्ति प्रिन्सिपल के पद से गिरा नहीं सकती। जब तक वे विद्यार्थी को अपना विषय पढ़ाते जायें (चाहे किसी प्रकार से हो) और जब तक साधारण प्रबन्ध कालेज का कर सकें तब तक उनकी ओर आँख उठा कर भी कोई देख नहीं सकता। परन्तु सार्वभौम सच्चाई यह है कि जो स्वयं अन्दर से अशुद्ध है वह दूसरों को शुद्ध कभी नहीं कर सकता।"

ईश्वरीय ज्ञान फिर सावधान कर रहा है। क्या संसार के शिक्षक-वृन्द इस पवित्र घोषणा को सुनेंगे? परमेश्वर ऐसा करे कि जो लोग सुकुमारों के भविष्य को अपने हाथ में लेने का साहस करते हैं, वे अपनी उत्तरदायिता को समझें।"

इसी आशय को लेकर ऋषि दयानन्द 'संस्कारविधि' में लिखते हैं, 'आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द-अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने हारा, छल-कपट रहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी, तन-मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में तत्पर हो, जो पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सबका हितैषी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय होवे।"

महात्मा मुंशीराम का जीवन बड़े उतार-चढ़ाव में से गुजरा था। एक पुलिस अफसर के पुत्र के नाते उनके जीवन का पहला भाग खूब ऐशो इशरत में गुजरा। उन्हें हर तरह के अध्यापकों से वास्ता पड़ा। चालीस के सन् तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने बखूबी देख-समझ लिया था कि भारत को छल कपट रहित, अति प्रेम से, सबको विद्या के दाता, परोपकारी, तन-मन-धन से सबका सुख बढ़ाने के लिये तत्पर, पक्षपात रहित, सत्योपदेष्ठा, सबके हितैषी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय आचार्यों की आवश्यकता है। वह स्वयं भी इसी प्रकार के आचार्य बनना चाहते थे और अपने इर्द-गिर्द ऐसे ही आचार्यों की टोली का संगठन करना चाहते थे, जो उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल को आदर्श संस्था बना सके, जहाँ यम-नियम का, ब्रह्मचर्य का-पालन हो।

उनका कहना था कि भूत और भविष्यत्—व्यतीत हुए और आने वाले दोनों समयों का निर्माता ब्रह्मचारी ही है। बीते हुए अनुभवों से जहाँ ब्रह्मचारी स्वयं लाभ उठाता है तथा संसार को दिलाता है वहाँ जगत् का भविष्य भी वही सुधार सकता है। जो इन्द्रियों का दास है उसके लिये वर्तमान ही सब कुछ है। उसका भविष्य कुछ हो ही नहीं सकता। ब्रह्मचारी राम ने जहाँ संसार के भविष्य में धर्म की मर्यादा स्थापित कर दी वहाँ रावण के कारण लंका का भविष्य ही कुछ न रहा। ब्रह्मचर्य बिना न भूत है और न भविष्यत्। दिन और रात का चक्र भी ब्रह्मचर्य के बल पर चलता है। व्रत-पालन का आदर्श ब्रह्मचारी ही है और सूर्य की शक्ति पर ही दिन-रात निर्भर है। ऋतुओं सहित सवत्सर भी उस व्रत का परिणाम है जो संसार चक्र में सूर्य कर रहा है। जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं हैं, जिन्हें इन्द्रियाँ घुमाये फिर रही हैं, उनमें दिन और रात में विवेचन की शक्ति नहीं रहती' वे न दिन में सूर्य की किरणों से प्राण-शक्ति धारण कर सकते हैं और न रात में विश्राम ले सकते हैं। कामी के लिये न कोई दिन है और न रात। उसके लिये सारा समय अन्धकारमय है। कामी उलूक के समान रात को ही सावधान होना है। कामी तुकबन्दों ने कामातुरों का यह विशेषण दिया है कि वे दिन और रात में तमीज नहीं कर सकते। उन्हें ऋतुओं में भी कोई भेद नहीं प्रतीत होता। उनके लिये सब धान बाईस पंसेरी होते हैं।

लोक में प्रसिद्ध है कि, जिन्हें परलोक की लगन हो, जिन्हें मुक्ति की तलाश हो वे भले ही ब्रह्मचर्य का साधन करें पर

दुनियादारों के लिये ब्रह्मचर्य का उपदेश नहीं है। ऐसी लोकोक्ति के अनुयायियों को वेद-मंत्रो के भाव पर गहरा विचार करना चाहिये। जिस जुही और चम्पा, चमेली पर तुम मस्त हो रहे हो, उसकी भीनी खुशबू तुम्हारे मस्तिष्क को तरावट न देती, यदि माली ने इन्द्रियो को दमन करके उसकी रक्षा न की होती। यदि माली प्रलोभनों में फस कर बिना खिली कली को ही तोड़ लेता और अपनी स्वार्थसिद्धि में ही लग जाता, तो तुम्हें खिले हुये फूल की सुगन्धि तथा सौन्दर्य से तृप्ति पाने का अवसर कैसे मिल पाता? यदि भूत समय मे ब्रह्मचारियो ने सदाचार और परोपकार की बुनियाद न डाली होती तो आज तुम्हे अपना तथा अपने भाइयो का भविष्य सुधारने के लिये कौन प्रोत्साहित करता? मनुष्यो की ही नही वनस्पति को जान भी ब्रह्मचर्य मे ही है। वनस्पति ही क्यो? काल, दिशा और उसके विभागो का जान भी ब्रह्मचर्य ही है।

"आज ब्रह्मचर्य की बात अस्वाभाविक मालूम होती है। जिन्होंने विश्राम के स्थान मे आलस्य को अपना लिया हो, जिन्होने उल्टी गगा बहाने का व्यर्थ परिश्रम ही अपने जीवन का उद्देश्य बना रखा हो, जिन्होने जानबूझ कर आँखे बद कर रखी हो, उन्हे आँख खोलते हुए अवश्य कष्ट प्रतीत होता है। परन्तु क्षणिक कष्ट के लिये भय से अपने जीवन के भविष्य को ही तिलाजलि दे देना बुद्धिमानो का काम नही है। जड और चेतन में, मनुष्य, पशु और वनस्पति मे, राजा और रक मे, सबमे ब्रह्मचय का राज्य है। जिस प्रकार प्रान्त के राजा को और उसके राजनियम को भुलाकर उस राज्य मे निवास करना कठिन है, इसी प्रकार समय के राजा ब्रह्मचर्य के न्याय शासन को भुलाकर ससार मे जीना कठिन है। प्रभु बल दें कि ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन हो सके।" ※※

(पृष्ठ २ का शेष)

शहीद होने तक 'आजाद' को अंग्रेजी हुकूमत की किसी अदालत अथवा पुलिस चौकी में किसी को कैफियत देने की जरूरत नही पड़ी। 'आजाद' के बारे में पुलिस की फाइल में जो कुछ भी आया वह मुखबिरों, गद्दार साथियों या सरकारी गवाहो के माध्यम से ही आया। यह जानकारी पूर्णत: असदिग्ध नही हो सकती और पुलिस की गुप्त फाइल के आधार पर शहीद 'आजाद' का जन्म-स्थान भला कैसे जाना जा सकता है?

पुलिस तथ्य संदिग्ध

लेखक जानता है—'कि चम्बल घाटी के डाकू राजा मानसिह को ५५-५६ मे किसी और ने अपनी गोली का निशाना बनाया था, किन्तु उसका श्रेय किसी उच्चाधिकारी ने लिया। ८० वर्ष पूर्व १० अगुल मुद्राओ के वर्गीकरण का सूत्र निकाला (उप-निरीक्षक) अजीजुल हक ने जिसका विश्व-व्यापी श्रेय तत्कालीन अग्रेज आई० जी० पी० मिस्टर एडवर्ड-रिचर्ड हेनरी ने पाया (इस सच्चाई को लेखक ने १५, १६ तथा १७ दिसम्बर, ७७ को भुवनेश्वर, उडीसा मे आयोजित 'तीसरी आल-इडिया-फॉरेन्सिक-साइंस-कान्फ्रेस' मे सबल तर्कों एव विश्वसनीय प्रमाणो के आधार पर सिद्ध किया)। पुलिस को अपराधी ने अपना नाम अशोक कुमार आत्मज अनतराम, धर्म-हिन्दू लिखाया, किन्तु अगुल-मुद्रा के आधार पर नाम, वल्दियत तथा धर्म गलत बताने वाले उस अपराधी को अब्दुल अजीज वल्द अब्दुल गनी नाम से शिनाख्त किया गया। मद्रास से भागकर नारायण स्वामी वल्द मुनू स्वामी ने राजस्थान के गुलाबी शहर जयपुर मे, नत्थूसिह वल्द मोतीसिह बनने का ढोग रचा, किन्तु अंगुल 'फिगर-प्रिन्ट एक्सपर्ट' ने उसकी पोल खोल दी। मजे और धूर्त अपराधी पुलिस को मनमुखराम वल्द तनसुखराम, ईदा वल्द बीदा अथवा गब्बरसिह वल्द बब्बरसिह जैसे मजाकिया नाम भी लिखाया करते हैं। पुलिस की ऐसी फाइल के आधार पर सी० पी० (मध्य-प्रदेश) के भावरा तथा यू० पी० (उत्तर प्रदेश) के बदरका को बराबरी का दर्जा दे दिया, किन्तु कोई भी व्यक्ति एक साथ दो स्थानों पर जन्म नही ले सकता, यह हकीकत है।

प्रमाण केवल जन्मदात्री

'शहीद 'आजाद' का कार्यक्षेत्र उत्तरप्रदेश रहा यह मै भी स्वीकार करता हूँ। शहीद आजाद के पिता बदरका निवासी थे यह भी मुझे स्वीकार है। शहीद 'आजाद' के अग्रज स्व० सुखदेव को माता जगरानी देवी ने बदरका मे जन्म दिया यह भी मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। १९३१ मे 'आजाद' शहीद हो गये और १९३८ में आजाद के पिता भावरा मे स्वर्ग सिधारे। माता जगरानी देवी १९३८ से १९४९ तक भावरा की झोपडी मे एकाकी जीवन बिताती रही तब बदरका से कोई वहाँ नही पहुँचा? १९४९ में माता जी को झासी के मास्टर श्री रुद्रनारायण तथा श्री सदाशिवराव मलकापुरकर झासी ले आये और उन्हें चारों धाम की तीर्थयात्रा कराई। तीर्थयात्रा के बाद माता जी ने ब्राह्मण-भोज भावरा मे ही किया। फिर माता जी झांसी आ गयीं और २२ मार्च १९५१ को उनका वही देहात हुआ। झासी निवास के समय माता जगरानी देवी ने 'आजाद' के साथियों को शहीद 'आजाद' का जन्म स्थान भावरा (सी० पी०) वर्तमान मध्यप्रदेश बताया था। शहीद 'आजाद' के जन्म स्थान के विषय में शहीद की जन्मदात्री से बढ़कर सच्ची जानकारी कोई और दे सकता है, ऐसा मुझे विश्वास नहीं? ●

गुरुकुल की आन बचाओ

—सत्यभूषण "शान्त"

एक वाटिका है अनुपम,
जिसकी छवि है अति न्यारी
जिसकी अनुपम प्रभा-विभा से
प्रमुदित जन-मन-क्यारी।
छद्म वेशधारी प्रभुओ से
नत मुरझाई सारी,
उठो खड़े हो साहस धारो
इसकी शान बचाओ।
गुरुकुल की आन बचाओ।

श्रद्धा से श्रद्धानन्द स्वामी ने था इसको सीचा।
कोई भी आया न पुन उस निर्भय रूपी सरीखा।

दयानन्द से हुआ प्रभावित
सीची यह फुलवारी
वह भी मुरझा रही आज है
यह कैसी तैयारी
छोडो फूट, अनैक्य
इसे अपना करके अपनाओ।
गुरुकुल की आन बचाओ।

नही बचेगा गुरुकुल यदि
तो घोर पतन ही समझो।
तिरस्कार होगा आर्यो का
साधारण मत समझो
वे भी स्वर्णिम दिन थे, जब
इसका यश चहुँ दिशि व्यापा।
अब क्यों हो अवनत, जर्जर
क्या हमने राग अलापा।
अन्य कार्य सब छोड प्रथम
गुरुकुल की शान बनाओ।
गुरुकुल की आन बचाओ।

● ● ●

'स्वामी दयानन्द जी का संक्षिप्त जीवन'

(गतांक से आगे)

जन्मभूमि के परिचय न देने का दूसरा कारण

—स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती

मैंने आज तक निज पिता का नाम एवं कुलनिवास इसलिये भी नही बताया था कि मेरा कर्त्तव्य मुझे आज्ञा नहीं देता था।

शिखरणी : बताया ना मैं निज जनक का नाम पहिले।
नही देता था मेरा धरम आज्ञा इसलिये॥
नही होता कोई यति धर तजे है किस लिये।
सभी सन्यासी के पर जन बताये किसलिये॥३॥

यदि मेरे सम्बन्धी मेरे इस कृत से परिचित होते तो मुझे घर ले जाते और मैं भी गृहस्थी होता तथा धन-धान्य हाथ में लेना होता और परिवार की सेवा-सुश्रषा करता। परोपकार जो मैं अब करता हूँ यह भी न कर सकता था और आत्मोद्धार का कार्य भी न कर सकता था। मेरे जीवन के ये हो दो लक्ष्य है।

शिखरणी . बताया ना मैंने निज जनक का नाम पहले।
कदाचित सम्बन्धीखबर सुन आते यह॥
यहाँ मुझे वे ले जाते परिचित रहे थे सब जहाँ।
गृहस्थी मे होता पर हित करे था तब कहाँ॥४॥

इस कथन से यह सिद्ध है कि घर वालों का बडा दबदबा होता है। गुजरात में यह जीवन वृतान्त ऋषि जी ने ५० वर्ष की आयु में दिया था और गतिधर्म के आधार पर संन्यास मे प्रवेश के समय सर्वजीवित सम्बन्धियों को भी आहुति दिवादी जाती है। अतः जो सन्यासी अपने कुटुम्ब का परिचय देते हैं। वे सन्यास धर्म से अपरिचित एवं सन्यास मे बट्टा लगाते हैं। क्योकि सन्यास लेना वैराग्य में परिवार अज्ञान है क्योंकि इस परिवार में पहले भी कितने कुटुम्ब छोड़ है और आगे भी कितने कुटुम्बों मे जाना होगा और त्यागने होगे। अत· सन्यासी पूर्ववृत नही बताते इसीलिए भी ऋषि दयानन्द जी ने अपना पूर्ववृत नही बताया।

विशेष : इस कथन से यह सिद्ध है कि महाराज परोपकार एवं आत्मोद्धार के लिए परिवार त्याग कर घर से चले थे। गृहस्थी भी कुछ परोपकार कर सकता है परन्तु उसके समक्ष स्वहित एव स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव, सम्बन्धी प्रथम मुख्य होते हैं किन्तु सन्यासी सर्वहित करता है क्योंकि संन्यास की दीक्षा लेते समय वह प्रतिज्ञा करता है कि सर्वभूते 'म्योभक्तोइम्यमस्तु' अर्थात् मुझसे सर्वप्राणी मात्र को अभय हो गृहस्थी मे ऐसा कह सकता है और नही लिख सकता।

शैशवकाल और जन्म परिचय

मेरा जन्म गुजरात प्रान्त के समृद्ध ओदीच्य ब्राह्मण कुल में हुआ था सम्वत् १८८१ विक्रमी तदानुसार सन् १८२४ में मोरवी राज्य के अन्तर्गत टंकारा नगर में मैं ओदीच्य ब्राह्मण हूँ। यद्यपि औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी होते हैं परन्तु मैंने प्रथम यजुर्वेद पढ़ा था।

शिखरणी · इसी आर्यावर्तेगुरुजर सु देशे जन पदे
उसी में टकारा शुभ नगर भारी हित कुले
अठारे सै इक्यासी यह जन्म मेरा तब हुआ॥५॥

किसी ऋषि मुनि ने भी आज तक यह नहीं बताया कि मेरे माता-पिता, ग्राम-वर्ण आदि का पता ये है परन्तु लोग महाराज को बदनाम करते थे इसलिए महाराज को माता-पिता का परिचय देना पडा। अन्यथा सन्यास में पूर्व परिचय निरर्थक है।

शैशव में देवनागरी लिपि का अध्ययन :—

विक्रमी १८८५ सम्वत् मेरी ५ वर्ष आयु थी मैंने देवनागरी लिपि के अक्षर पढने आरम्भ कर दिये थे तथा मेरे माता-पिता परिवार के जन मुझे कुल धर्म की रीति-नीति सिखाया करते थे तथा वे मुझे श्लोक मन्त्र स्तोत्र एवं उनकी टीका कण्ठस्थ कराया करते थे।

शि० · पढी देवी मैंने लिपि वरण माला विधि यथा।
सिखाई थी रीती कुल धरम होता वह तथा॥
माता पिता मेरे प्रतिदिन सुनाते सब कथा।
पढे मन्त्रों स्तोत्रों सरलतम टीका सवपता॥६॥

विशेष . पिता-माता एवं परिवार के नर-नारी का परम कर्त्तव्य है कि बालक को जब वह बोलने लगे तभी से कुल धर्म तथा सध्या हवन के मन्त्र एवं व्यवहार की शिक्षा करे, क्योकि बालक सीखना चाहता है। यदि अच्छा व्यवहार न बताया जायेगा तो वह बुरा व्यवहार सीखेगा। (क्रमश;)

सरकारी तंत्र द्वारा समाज-विरोधियों को सहयोग

"बड़े खेद का विषय है कि अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जो महाराज द्वारा स्थापित राष्ट्रीय शिक्षा संस्था 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यायल, कुछ काल से समाज-विरोधी तत्वों के अवैध कब्जे में चला आ रहा है और सरकारी तंत्र भी, बजाए इसके कि उन तत्वों को वहाँ से हटाकर विश्वविद्यालय के वैध अधिकारियों को वहाँ का अधिकार दिलाए, नियमित अधिकारियों को हों वहाँ जाने से रोकता जा रहा है। केन्द्रीय सरकार के दो-तीन मंत्रियों पर भी खुले तौर पर आरोप लगाया जा रहा है कि वे इन समाज-विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन दे रहे हैं।

इन परिस्थितियों से विवश होकर स्वामी श्रद्धानन्द जी की पौत्री श्रीमती पुष्पा विद्यालकृता तथा आर्य जगत् के सर्वोच्च पदाधिकारी श्री रामगोपाल जी वानप्रस्थ (शालवाले) पूर्व ससद-सदस्य ने गत दिनों से आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया है। उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि आर्य जगत् इस स्थिति को अब अधिक देर तक सहन नही करेगा। इस विषय मे अधिक देर करना ओर उपेक्षा अपनाए रखना किसी के लिए भी हितकर न होगा।'

देवदत, प्रधान.

संस्था—समाचार

५-२-७८ का

साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम

वक्ता	आर्य समाज
१ पं० हरि शरण जी	हनुमान रोड
२ पं० विश्व प्रकाश जी शास्त्री	अमर कालोनी
३ स्वामी ओ३म् आश्रित जी	नारायण विहार
४ आचार्य हरि देव जी तर्क केसरी	दरिया गंज
५ प० प्रकाश चन्द जी वेदालंकार	अन्धा मुगल प्रताप नगर
६ डा० नन्दलाल जी	तिलक नगर
७ पं० वेद कुमार जी वेदालंकार	किंग्जवे कैम्प
८ पं० आशानन्द जी भजनोपदेशक	विक्रम नगर
९ प० राज कुमार जी शास्त्री	न्यू मोती नगर
१० पं० देवराज जी वैदिक मिशनरी	गुड मन्डी
११ प्रो० सत्यपाल जी वेदार	आर्यपुरा (पुरानी सब्जी मण्डी)
१२ पं० सुदर्शन देव जी शास्त्री	ससय रौहला
१३ पं० देविन्द्र जी आर्य	नांगल राया
१४ प० सत्य भूषण जी वेदालकार	माडल बस्ती
१५ स्वामी स्वरूपानन्द जी	गाँधी नगर
१६ प० प्राणनाथ जी सिद्धान्तालंकार	टैगोर गार्डन
१७ मनोहर लाल भजनोपदेशक	हरि नगर, एल ब्लाक
१८ श्रीमती प्रकाशवती जी	जोर बाग
१९ प० लक्ष्मी नारायण जी	मोती बाग
२० पं० गणेश दत्त जी वानप्रस्थी	बसई दारा पुर
२१ प० महेश चन्द जी भजन मन्डली	महावीर नगर
२२ प० अशोक कुमार जी विद्यालंकार	सरोजनी नगर जी० आई० ७०६ (प्रातः ८॥ से १०)
२३ पं० अशोक कुमार जी विद्यालंकार	एन० डी० एस० ई० II पी० २३ (शाम ३ से ५ तक)
२४ प० ईश्वर दत्त जी आर्योपदेशक	के० बी०-७८ ए० अशोक विहार
२५ पं० सत्यपाल जी आर्य भजनोपदेशक	रघुबीर नगर
२६ प० वेद प्रकाश जो	लड्डू घाटी
२७ पं० ब्रह्म प्रकाश जी शास्त्री	नया बांस
२८ प० बनारसी सिंह जी	कांधी नगर

आर्य युवक परिषद् दिल्ली का वार्षिक निर्वाचन

१९७८ वर्ष के लिए निम्न अधिकारी निर्वाचित हुए —

प्रधान	: श्री प० देवव्रत धर्मेन्दु
उप प्रधान	: श्री नवनीत लाल एडवोकेट, श्री खजान चद
मन्त्री	: श्री ओ३म् प्रकाश जी
परीक्षा मन्त्री	: श्री चमनलाल जी
उपपरीक्षा मन्त्री	श्री प्रकाशचन्द जी
प्रचार मन्त्री	: श्री मूलचन्द
कोषाध्यक्ष	: श्री हरिश्चन्द जी

मूलचन्द प्रचार मन्त्री

हरियाणा के गाँवों में जल की पूर्ति

नई दिल्ली। (लोक संपर्क वि० ह०) हरियाणा में हाल ही मे गावों में जल की पूर्ति के लिए दो योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं। ये है—ग्रामीण जल पूर्ति योजना और तीव्रगामी जल पूर्ति कार्यक्रम। प्रथम योजना राज्य सरकार की है जिसमें ८८ प्रतिशत व्यय राज्य सरकार द्वारा किया जाता है और शेष व्यय गाँवों के लाभान्वितों से रुपये, श्रम के रूप में प्राप्त होता है।

तीव्रगामी ग्रामीण जल पूर्ति योजना पूर्णत. केन्द्र द्वारा चलायी जा रही है। यह योजना १९७२-७३ में प्रारम्भ हुई थी, परन्तु यह योजना २ वर्ष पश्चात् अधर में लटक गयी। अब यह योजना पुन आरम्भ की गई है और इस वर्ष के लिए १४० लाख रुपये की वित्तीय व्यवस्था की गयी है। परिणामस्वरूप चालू वर्ष में लगभग १२५ गाव इन दो योजनाओं से लाभान्वित होंगे।

आर्यों का वर्तमान तीर्थस्थल

नई दिल्ली, २६ जनवरी। दोपहर के लगभग दो बजें। आर्य समाज दीवान हाल (चाँदनी चौक) के बाहर भीड़। रास्ते में इश्तहार ही इश्तहार।

दीवान हाल के मुख्य द्वार के बायी ओर एक आर्य पुस्तक विक्रेता, दूसरी ओर एक लम्बो सी मेज, जिस पर एक लम्बा लकड़ी का बोर्ड रखा है। बोर्ड पर समाचार-पत्रों की कटिंग जो पूज्य लाला जी एवं स्वामी श्रद्धानद जी की प्रपोत्री श्रीमती विद्यालकृता के आमरण अनशन से सबधित है, लगी हुई है। शीर्षक कुछ इस प्रकार हैं—'राम गोपाल जी का अनशन न्यायिक', 'गुरुकुल कागडी पर अवैध कब्जा', 'गुरुकुल कांगड़ी को बचाने के लिए दो नेताओं का बलिदान', 'भारत सरकार सावधान, गुरुकुल कांगडी में आग से खेलना बंद करो', 'आमरण अनशन का पाचवाँ दिन' आदि आदि।

दीवानहाल के विशाल हाल के अन्दर एक मंच पर पूज्य अनशन कर्त्ता एव बहुत से स्त्री-पुरुष एक विद्वान के प्रवचनों पर ध्यान दिये हुए है। मच से नीचे अनेक स्त्री-पुरुष बैठे हैं। लोग आते हैं अपनी सहानुभूति एव समर्थन व्यक्त करते हैं। लोगों का आना जाना यहाँ इस तरह लगा हुआ है जैसे ये एक तीर्थ स्थल हो। तीर्थ स्थल है भी। बस अन्तर यह है कि यहाँ आने वाले सभी आर्य कुछ चिन्तित, कुछ अवसाद ग्रस्त कुछ किंकर्त्तव्यविमूढ से, विचार-मुद्रा मे लीन से दिखाई देते है। —सत्यपाल

आर्य समाज के वार्षिकोत्सव

आर्य समाज बाजार सीताराम बाजार ५ से १२ फरवरी १९७८ रामलीला मैदान में समारोह पूर्वक मनाया जायगा।

आर्य नेता का देहावसान

आर्य समाज के एक वरिष्ठ नेता एव बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के निदेशक श्री रामनारायण शास्त्री जी का २४ जनवरी को प्रात. उनके निवास स्थान (राजेन्द्र नगर) पर स्वर्गवास हो गया।

५२ वर्षीय श्री शास्त्री जी के निधन पर देश के नेताओं, साहित्यकारों एव समाजसेवियों ने अपने, शोक सन्देश में शास्त्री जी को महान आर्य नेता, हिन्दी प्रेमी, समाजसेवी एव मानवता की साक्षात मूर्ति कहा।

'आर्य सन्देश' इस महान विभूति के शोकाकुल परिवार के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुए शास्त्री जी को आत्मा की शांति के लिए सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रार्थना करता है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मन्त्री) द्वारा सम्पादित एव प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म्   कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक नई दिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१   दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये,   एक प्रति ३५ पैसे   वर्ष १   अंक १४   रविवार १२ फरवरी, १९७८   दयानन्दाब्द १५३

गुरुकुल कांगड़ी की रक्षार्थ

लाला रामगोपाल जी शालवाले, बहन पुष्पा जी, डा० निगम शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नि द्वारा किया गया आमरण अनशन सफलतापूर्वक समाप्त

प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई मध्यस्थता करेंगे। श्री सोमदत्त जी वेदालकार अन्तरिम प्रशासक नियुक्त। बाबू जगजीवन राम, प्रतिरक्षा मन्त्री भारत सरकार द्वारा लाला जी एव बहन पुष्पा को फलों के रस द्वारा अनशन समाप्त कराया गया।

२ फरवरी, १९७८ को प्रातः दस बजे आर्य समाज मन्दिर दीवान हाल में भारी जनसमूह के सामने अपार हर्ष एवं उल्लास के वातावरण में फलों का रस लेकर दोनों नेताओ ने अपना ग्यारह दिन का अनशन समाप्त किया। इस अवसर पर बाबू जगजीवन राम जी के अतिरिक्त प्रोफेसर शेर सिंह जी प्रतिरक्षा राज्य मन्त्री, श्री केदारनाथ जी साहनी मुख्य कार्यकारी पार्षद दिल्ली प्रशासन, लाला हंसराज जी गुप्त, भूतपूर्व महापौर दिल्ली, श्री विजय कुमार मल्होत्रा संसद सदस्य प्रधान दिल्ली प्रदेशीय जनता पार्टी श्री कवर लाल जी गुप्त ससद सदस्य, श्री ओम प्रकाश जी त्यागी ससद सदस्य, डा० प्रशान्त कुमार जी महानगर पार्षद, चौधरी माडू सिह जी, श्री वीरेन्द्र जी प्रधान अखिल भारतीय पत्रकार संपादक सघ एवं प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, श्री के० नरेन्द्र जी संपादक दैनिक प्रताप एवं वीर अर्जुन नई दिल्ली, श्री छोटू सिंह जी एडवोकेट प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, श्री सोमनाथ जी एडवोकेट प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, श्रीमती सरला महता, मन्त्रणी प्रान्तीय महिला सभा, श्री राजगुरु जी शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश श्री मुलखराज जी भल्ला, उप-प्रधान प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, चौ० देशराज जी आदि अनेक महानुभाव इस समारोह में उपस्थित थे। इनमें से अधिकांश ने अपने भाषणों में श्री लाला जी व बहन पुष्पावती को उनकी सफलता पर बधाई दी।

इस समारोह में डा० कृष्णकुमार जी आनन्द, प्रधान आर्य समाज शक्ति नगर जिन्हें इन्द्रवेश एवं अग्निवेश ने अपनी तथा-कथित सभा का दिल्ली में उपमन्त्री घोषित कर रखा था, ने भी अपने विचार रखे और उपस्थित जनता को बताया कि किस प्रकार यह वेश सम्प्रदाय आर्य जनता को उल्लू बनाकर लाखों रुपया डकार गया। डाक्टर कृष्ण कुमार जी इनकी वास्तविकता जानने पर इन्हे छोड चुके हैं। अब दिल्ली मे 'वेश' आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का तथाकथित कार्यालय भी समाप्त हुआ।

लाला रामगोपाल जी ने उपस्थित जनो का धन्यवाद करते हुए कहा कि उनके तथा देश विदेश के आर्य बन्धुओ की शुभ-कामनाओं से उनका आत्मबल बढा, जिससे वे इस अग्निपरीक्षा मे सफल हुए। उन्होने विश्वास प्रकट किया कि गुरुकुल कागडी की पुरानी प्रतिष्ठा शीघ्र स्थापित होगी।

कविता

ऋषि भगत वी ए ते शालवाला वी ए

(यह कविता ऋषि भगत श्री करतार सिह गुलशन ने भाव-विभोर होकर उस समय आर्य समाज मन्दिर दीवान हाल में पढी जब अनशन खोला जा रहा था,

किसे तरां वी मात नही खान वाला
लाला लीडर वी ए अते लाला वी ए
राजयोगी वी कहिये ते शक कोई नई
ऋषि भगत वी ए ते शालवाला वी ए
वक्ता इस तरा दा कि विरोधीयाँ दी
ला सकदा जबान ते लाला वी ए
जे कर आप है वेरा दी शरण अन्दर
वैदिक धर्म दा ओथे रखवाला वी ए
मेटन वाली बुराईयाँ समाज विचो
उनम मुफ्त कुरबानी दे नाल वी ए
गुलशन त्याग ते नीति तो नजर आवे
लाला राम भी ए तो गोपाल वी ए

सम्पादक : सरदारीलाल वर्मा, सह-सम्पादक : सत्यपाल

हमको अन्न, बल तथा नाना सुखों से सम्पन्न कर

ओं इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व । ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्म । अमेन्यस्मे नृम्णा-निधारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥
य० अ० ३८ म० १४ ।

हे सब सुखों के प्रदाता परमेश्वर ! हमको (इषे पिन्वस्व) उत्तम अन्य के लिये पुष्ट कर, अन्न के अपचन रोगों से बचा तथा बिना अन्न के हम लोग कभी दु.खी न हों।

हे महाबल ! (ऊर्जे पिन्वस्व) अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर। हे वेदोत्पादक (ब्राह्मणे पिन्वस्व) सत्य वेद विद्या के लिये बुद्धि आदि के बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर।

हे महाराजधिराज परब्रह्मन् ! (क्षत्राय) अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुण युक्त अपनी कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हो।

(द्यावा पृथिवीभ्यां पिन्वस्व) स्वर्ग=परमोत्कृष्ट मोक्षसुख पृथिवी=संसार सुख इन दोनों के लिये हे स्वर्ग पृथिवीश ! हमको समर्थ कर।

(सुधर्म धर्मासि) हे सुष्ठुधर्म शील ! तुम धर्मकारी हो तथा धर्मस्वरूप ही हो, हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर।

(अमेनि) तुम निर्वैर हो, हमको भी निर्वैर कर। तथा कृपा-दृष्टि से (अस्मे नृम्णानि धारय) हमारे लिये विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती अश्व, स्वर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीति आदि पदार्थों को धारण कर जिससे हम किसी पदार्थ के बिना दु:खी न हों।

हे सब के अधिपति परमेश्वर ! (ब्रह्म०) हमारे राष्ट्र मे उत्तम ब्राह्मण पूर्ण विद्यादि सद्गुण युक्त हों (क्षत्र०) क्षत्रिय उत्तम बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुण युक्त हों (विश०) वैश्य अनेक प्रकार के उद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि वस्तु युक्त हों तथा शूद्रादि भी सेवागुण युक्त हों—ये चारों स्वदेश भक्त हो।

इन सब का धारण हमारे लिये आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे।

आर्य-साहित्य के प्रकाशकों का दायित्व

—सत्यपाल

दिल्ली मे 'तृतीय विश्व पुस्तक मेला' प्रगति मैदान मे ११ फरवरी से २० फरवरी तक आयोजित है। इसके पूर्व दिल्ली मे दो विश्व पुस्तक मेले (१९७२ एवं ७६ में) आयोजित हो चुके है। इस मेले का सबसे बडा आकर्षण है 'हिन्दी मण्डप'; जिससे यह आशा भी जगी है कि इस मेले में हिन्दी पुस्तकों को विशेष महत्व दिया जाएगा। एक अन्य आकर्षण है 'त्रिदिवसीय विचार गोष्ठी' जिसका मुख्य विषय है आने वाली पीढ़ी के लिएसमयबद्ध योजना-नुसार किस तरह का साहित्य प्रकाशित किया जाए।

पुस्तकों की महत्ता सभी स्वीकारते हैं। किसी भी देश को आकते समय उसका पुस्तक भण्डार विशेष सहायता करता है। जिस देश मे पुस्तकों की खपत जितनी अधिक होगी वह उतना अधिक जागरूक देश होगा।

भारत की स्थिति इसके विपरीत है। यहाँ पुस्तकों की खपत, जनसख्या को मध्यनजर रखते हुए नगण्य सी है, विशेष कर स्तरीय (शेष पृष्ठ ६ पर)

'स्वामी दयानन्द जी का संक्षिप्त जीवन'

—स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती

(गतांक से आगे)

८ वर्ष की आयु में उपनयन हुआ

विक्रमी सम्वत् १८८८ में ८ वर्ष की आयु मे मेरा उपनयन संस्कार कराके गायत्री मन्त्र पढ़ा दिया था तथा सन्ध्योपासना की विधि भी पढ़ा दी थी और प्रथम रुद्री पश्चात् यजुर्वेद कण्ठस्थ करा दिया था।

शिखरणी —अठारासोठासी उपनयन कर दिया
पढ़ा के गायत्री मगन मन सन्धया कर लिया
किया था कण्ठस्थी यजुर सब मैंने पढ़ लिया
पढाते थे मेरे जनक गुरु जी भी बन गये ॥७॥

इसी वर्ष मेरी एक बहन का जन्म हुआ था। मेरे परिवार के सब जन शैव थे वे मुझे भी शैव बनाना चाहते थे इसी कारण पिता जी ने शैशव समय से मेरे हृदय पटल पर शैव मत के सस्कार डाल दिये थे।

शिखरणी :—हुई एक कन्या बहिन मेरी लघुतमा।
सभी थे सम्बन्धी शिवभक्त मेरे बहुत से
पिता की इच्छा थी कि हम शिवजी के भगत हो
इसी से मेरे भी हृदय पर सस्कार शिव के।।८॥

॥ मिट्टी के शिव की पूजा ॥

सवत् १८९० मे जब मेरी आयु १० वर्ष की थी मै तब से हो पार्थिव शिव लिंग की पूजा करता था। मेरे पिता जी चाहते थे कि मैं अभी से नियमित उपवास शिव रात्रि का व्रत धारण करु। परन्तु मेरी माता जी इस बात का विरोध करती थी।

शिखरणी :—अठारासो नब्बे दश बरष मेरी उमर थी।
करे था पूजा मैं मृणमय बना के शिव हरी।
पिता जी की इच्छा नियमित सदा मै व्रत करूँ।
पर माता मेरी शिव व्रत विराधो बन गयी ॥९॥

टिप्पणी—गृहस्थी नर नारी को बालको के समक्ष परस्पर विवाद नही करना चाहिए। इससे बालको पर कुप्रभाव पड़ता है तथा वे भी माता पिता के विरोधी तथा लड़ाकू हा जाते है।

माता जी कहती थी कि अभो इसके वश का उपवास नही है। परन्तु पिता जी कहते थे कि यह व्रत कर सकता है। इसी विषय को लेकर मेरे गृह मे प्रतिदिन कलह रहता था।

शिखरणी :—कहे थी माता जी किस विधि करेगा व्रत अभी।
पिता जी माने ना वह हठ करे थे दु:ख सभी
इसी से होता था गृह कलह भारी हर घड़ी।
करूँ क्या मैं भी तो यह विषद आई अति बडी ॥१०॥

पिता जी से वेदाध्ययन तथा व्याकरण

इन दिनों पिता जी मुझे कुछ वेद-विषय तथा व्याकरण पढ़ाया करते थे तथा मन्दिर में अपने साथ ले जाया करते थे। वे शिव की उपासना को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

शिखरणी :—पढ़े थे वेदो के विषय कुछ मैंने उन दिनो।
पिता से मैंने व्याकरण किल वेदांग विधि से।
सदा ले जाते थे प्रवचन जहाँ भी जब कभी।
सदा कैलाशी की भगति सबसे ही बलवती ॥११॥

मेरे घर में जमीदारी प्रथा थी तथा साहूकारी भी थी। किन्तु भिक्षा वृत्ति न थी। राज्य की ओर से जमीदारी पद परम्परा से प्राप्त था जो कि अन्य देशों के तहसीलदार के समकक्ष था। इसी कारण पिता जी को राज्य की ओर से कुछ सिपाही मिले थे जो भूमि-कर वसूल किया करते थे। ● (क्रमश:

श्री रत्न लाल जी सहदेव जो इस सभा के अन्तरंग सदस्य है और आर्य समाज हनुमान रोड के उपप्रधान है। आप लाला भागमल जी—जिन्होने आर्य समाज कस्तूरबा नगर डिफैंस कालौनी का निर्माण कराया एव वर्षो उसके प्रधान रहे—के सुयोग्य सुपुत्र हैं। दिल्ली प्रशासन ने इन्हे दिल्ली विकास अधिकरण की लैण्ड अलाटमैन्ट समिति एव उद्योगिक सलाहकार समितियों में सदस्य मनोनीत किया है। आर्य समाजे एवं आर्य शिक्षण संस्थाये यदि दिल्ली विकास अधिकरण से अपने मन्दिरो एवं स्कूलो की भूमि प्राप्ति के विषय में कोई कठिनाई अनुभव करते हो तो वह सभा कार्यालय १५, हनुमान रोड में अपने पत्र व्यवहार सहित पधारकर उचित सहायता एव मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकते है।

ऋषि बोधोत्सव उत्साहपूर्वक मनाये

ऋषिबोधोत्सव अथवा महाशिवरात्री इस बार मंगलवार ७ मार्च १९७८ को आ रहा है। सदा की भान्ति इस वर्ष भी यह पर्व दिल्ली की समस्त आर्य समाजों, आर्य स्त्री समाजों, आर्य शिक्षण संस्थाओ एवं आर्य जनता की ओर से फिरोजशाह कोठला के विशाल मैदान में आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के तत्वावधान में विशेष उत्साहपूर्वक ऋषि मेले के रूप मे मनाया जायगा। कार्यक्रम को अधिक रोचक एवं प्रभावशाली बनाने के लिये आर्य केन्द्रीय सभा के अधिकारी अभी से प्रयत्नशील हैं। आकाशवाणी एवं टेलीवीजन पर कार्यक्रम के प्रसारण का भी प्रयत्न किया जा रहा है। यह ऋषि मेला दिल्ली में आर्य समाज के सगठन एवं शक्ति का परिचायक होता है। अत: सभी आर्य समाजों को इस दिन परिवार एवं इष्ट मित्रो सहित अधिक से अधिक संख्या में विशेष बसों द्वारा इस आयोजन में शामिल होने के लिये अभी से अपना प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

परन्तु इतना ही काफी नहीं। आर्य समाजे, आर्य स्त्री समाजें एवं आर्य शिक्षण संस्थायें १९ फरवरी से ५ मार्च १९७८ तक पन्द्रह दिन अपने अपने क्षेत्र में ऋषि दयानन्द जी के जीवन पर कथाओं एवं प्रचार का विशेष प्रबन्ध सभा के सहयोग से करे। दक्षिण दिल्ली, उत्तर दिल्ली, पश्चिम दिल्ली एवं जमुनापार की आर्य समाजें अपनी सुविधानुसार इस पखवाडे में एक दिन एक केन्द्रीय स्थान पर सम्मिलित रूप मे बोधोत्सव मनावे तथा आर्य शिक्षण संस्थायें भी अपने यहाँ यह पर्व उत्साह पूर्वक किसी एक दिन। रविवार ५ मार्च को सभी आर्य समाजों में महर्षि के जीवन पर ही व्याख्यान कराये जायें। सुन्दर प्रबन्ध के लिये सभा का सहयोग प्राप्त करें।

गुरुकुल कांगडी के संघर्ष की सफलता पर बधाई

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रामगोपाल जी शालवाले (वानप्रस्थ) स्वामी श्रद्धानंद जी महाराज की पौत्री श्रीमती पुष्पा जी, डा० निगम शर्मा एवं उनकी पत्नी द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की पवित्रता की रक्षार्थ जिस तप, त्याग एवं बलिदान की भावना का परिचय दिया गया है उसने सिद्ध कर दिया है कि उस महान ऋषि के मिशन के मतवाले शान से जीना भी जानते हैं और अपने धर्म एवं मन्तव्यों की रक्षार्थ समय आने पर शान से मरना भी जानते है। अभी तो यह संघर्ष का पहला ही चरण था यदि आवश्यकता पड़ती तो बलिदानों की झड़ी लग जाती। कौन कहता है आर्य समाज समाप्त हो गया अथवा संघर्ष से डरता है।

हजारों की संख्या में आर्य जनता इस धर्म युद्ध में कूदने के लिये उद्दित थी। सत्याग्रहीयों की भर्ती जारी हो चुकी थी। आर्य समाज अभी ऐसी आग है जिसे बुझाया नही जा सकता। वेश संप्रदाय के नकली आर्य संन्यासियों ने इसे नष्ट करने की कुचेष्टा की परन्तु वह अपनी इस घृणित मनोवृत्ति में सफल नहीं हो पाये। उनका असली रूप जनता के सामने आ रहा है और वह दिन दूर नहीं जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा अनाचार एवं संगठन विरोधी कृत्यों के कारण आर्य समाज से निष्कासित इन तथा कथित सन्यासियों को कोई आर्य समाज अथवा आर्य बहन-भाई अपने पास खडे नही होने देगा।

हम भारत के महान, प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी भाई देसाई का हार्दिक धन्यवाद करते हैं जिन्होंने समय पर समस्या को सुलझाने का उतरदायित्व अपने ऊपर लेकर स्थिति को अधिक बिगड़ने से बचा लिया। हमें यह भी पूर्ण विश्वास है कि उनका निर्णय भी न्याययुक्त एवं सर्वमान्य होगा। अनशन को सफलता पूर्वक समाप्ति पर हम न्याय लाला जी, उनके साथ अनशन करने वालों एवं समस्त आर्य जनता को उनकी सफलता पर बधाई देते हैं।

विचार तरंग

दोष चश्मे से जीवन भी दोषमय

यह संसार त्रिगुणात्मक है। इसमे जहाँ सत्वगुण है, वहाँ तमोगुण और रजोगुण भी है। जहाँ आदर्शगुण है, वहाँ दोष भी हैं। तुम वही करो जिससे दोष दूर होते रहे, गुण बढते रहे। निरंतर दूसरो के दोष देखने मे अपने अन्दर गुणो का अभिमान हो जाएगा और इसमे वह गुण भी दोष बढाने का कारण होगा। पर-दोष दर्शन की आदत से तुम्हारी दृष्टि दोष देखने वाली ही बन जायगी, फिर तुम्हें सदा और सर्वत्र दोष ही दिखाई देगे, बिना हुए ही दिखाई देगे, क्योकि तुम्हारी दृष्टि में दोष का ही चश्मा चढा होगा। जब सब मे तुम्हें दोष दिखाई देने लगेगे, तब अपने अन्दर के दोषो से घृणा न केवल समाप्त हो जायगी अपितु उन दोषों मे प्रीति का भाव उत्पन्न हो जाएगा और उनका अपने अन्दर रहना अखरेगा नही। सारा जीवन ही दोषमय हो जाएगा।

बहुमूल्य धन

भक्त का धन उसकी भक्ति ही तो है, जो रस उसे परमात्म-चिंतन, भजन, आराधन में मिलता है, वह अवर्णनीय एवं अतुलनीय एवं है। भक्तके हाथ जबसे यह बहुमूल्य धन आया है, उसने अन्य सब सपत्तियों को तुच्छ समझ लिया है। वह सांसारिक सम्पत्तियो का सग्रह करने लगे, तो प्रभु भक्ति के अनमोल रत्नों का अनादर करे। प्रभु मे पूर्ण विश्वास का तो अर्थ ही यही है कि सत्य ज्ञान के आधार मे कर्त्तव्य कर्मो को निष्काम भाव से किया जाए और उसकी कृपा, दया तथा न्याय को अपना एक मात्र आश्रय माना जाए। धन तो है ही प्रभु का, प्रभु मिल गए, तो धन अपने आप ही प्राप्त हो जाएगा।

सत्य स्वयं साध्य है

सत्य का उद्देश्य सत्य के अतिरिक्त और कुछ नही होना चाहिए। सत्कर्म को सभी कामनाओं से शून्य होना चाहिए। सत्य स्वयं साध्य है। जिस तरह खाना या सोना हमारा स्वभाव है। सत्कर्म को भी इसी प्रकार हमारा सहज स्वभाव होना चाहिए।

पात्र की शुद्धता भी अनिवार्य

पदार्थ कितना ही अच्छा क्यों न हो, जब तक उसे किसी अच्छे पात्र में न रखा जाए, उसकी पवित्रता और अच्छाई स्थिर नही रह सकती। इसलिए पदार्थ के साथ साथ पात्र का उत्तम और शुद्ध होना भी अत्यावश्यक है। प्रभु भक्ति, सत्यज्ञान, उपासना, सदुपदेश स्वाध्याय और चिन्तन सभी उसी के फलीभूत होते है, जिसने पहले अपना अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र बना लिया है। पात्र को शुद्ध किए बिना जैसे अच्छी वस्तु भी उसमें डालने पर अपवित्र और मलिन हो जाती है, मलिन वस्त्र पर रग नही चढाया जा सकता ठीक इसी प्रकार दुष्ट भावों से भरपूर मनुष्य का भी कल्याण नही हो सकता।

संग्रहकर्ता—ओमप्रकशार्य

गुरुकुलीय आचरण

बलभद्र कुमार हूजा (कुलपति गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय)

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में वेदाग तथा सत्यशास्त्रो के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया जाता है। लेकिन वेदाध्ययन से यह अभिप्राय कदापि नही था कि वेद मत्रों को केवल तोते की तरह रट लिया जाय और जगह जगह अपनी स्मरणशक्ति का प्रदर्शन करके अहंकार वृत्ति को तुष्ट किया जाय। वेदाध्ययन का लक्ष्य यह है कि वेदानुकूल आचारण का अभ्यास किया जाय। इसलिये सबसे पहले इस बात पर जोर दिया जाता है कि वेद मत्रों के अर्थों का पूर्ण ज्ञान हो। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे स्पष्ट कर दिया है—"जो वेद को स्वर और पाठ मात्र पढ़के अर्थ नही जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठाने वाला है और जो वेद को पढ़ता है और उसका यथावत अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।"

ऋषि ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि सब ब्रह्मचारियों का रहन-सहन, खान-पान एक प्रकार का हो, गुरुकुल में किसी भी प्रकार का, ऊंच-नीच भेद भाव सर्वथा अमान्य है ऋषि ने लिखा है कि सबको तुल्य वस्त्र, खान पान आसन दिये जावे, चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे वह दरिद्र की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिये।

ऋषि दयानन्द यम-नियम के पालन पर विशेष बल देते थे। उनके शब्दों मे गुरु और शिष्य "अहिंसा (वैर त्याग), सत्य (सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना) अस्तेय अर्थात् मन, वचन कर्म से चोरी त्याग, ब्रह्मचर्य अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का सयम, अपरिग्रह (अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमानरहित होना) इन पांचो का सेवन सदा करे। शौच (स्नानादि से पवित्रता,) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नही लेकिन पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि-लाभ में हर्ष या शोक न करना), तप (कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मो मे अनुष्ठान) स्वाध्याय (पढ़ना, पढ़ाना) ईश्वरप्राणिधान (ईश्वर की भक्तिविशेष से आत्मा को अर्पित रखना) ये पाँच नियम कहाते हैं। यमों के बिना इन नियमों का सेवन न करे, किन्तु इन दोनो का सेवन किया करे।

'विद्वान और विद्यार्थी के योग्य है कि वैर बुद्धि छोडकर सब मनुष्यों को कल्याण के मार्ग पर उपदेश करें और उपदेष्ठा सदा मधुर सुशीलता युक्त वाणी बोले। जो धर्म की उन्नति करे। वह सदा सत्य में चले और सत्य का ही उपदेश करे।

"आचार्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओ को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमादरहित हो के पढ़-पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य को समस्त विद्याओ को ग्रहण कर और आचार्य के लिये प्रिय धन देकर विवाह कर, सन्तानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से सत्य का त्याग मत कर; प्रमाद से अरोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से पढने और पढाने को मत छोड़। देव, विद्वान और माता-पिता की सेवा में प्रमाद मत कर। जो आनन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्याभाषाणादि को किया कर, धर्मयुक्त कर्म कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषाणादि कभी मत कर, जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्म युक्त कर्म हो, उनका ग्रहण कर और जो पापाचरण है उनको कभी मत कर। जो हमारे मध्य में उत्तम विद्वान, धर्मात्मा ब्राह्मण है उन्हीं के समीप बैठ और उन्ही का विश्वास कर। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये। जब कभी तुझको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का संशय हो तो जो वे समदर्शी, पक्षपातरहित, योगी आर्द्रचित्ताधर्म की (कामना करने वाले धर्मात्मा जन हो जैसे वे धर्ममार्ग में वर्ते वैसे तू भी उनमें वर्ता कर। यही आदेश, आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की, उपनिषद की शिक्षा है।"

ऋषि दयानन्द ने जोरदार शब्दों मे कहा कि "जो विद्या पढाने मे विघ्न है उनको छोड़ देवे जैसे कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग। दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वैश्यागमनादि, बाल्यकाल में ही विवाह अर्थात् पच्चीस वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या का विवाह हो जाना, राजा, माता पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अतिजागरण, पढ़ने, पढ़ाने, परीक्षा लेने व देने में आलस्य या कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य से वीर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोडकर पाषाणादि जड़ मूर्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ कर ऊर्ध्वपुण्ड आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती गणेशादि त्रयोदशी आदि व्रत मानना, पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फंस कर ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।"

स्पष्ट है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की आधारशिला ब्रह्मचर्य, अप्रमाद धर्मयुक्त कर्म, उत्तम व्यवहार पर अवलम्बित है और इसी प्रकार के वातावरण को गुरुकुल कांगड़ी में प्रवाहित करने के लिये वहां के आचार्य कृत संकल्प हैं।

* *

उमरिया बीत रही सारी

—धर्मदेव 'चक्रवर्ती'

उमरिया बीत रही सारी
प्रभु का कर ले भजन दो घड़ी

—o—

जिसका न जग में कोई सहारा
और जो है विपदा का मारा
उसका ईश्वर एक सहारा
उसकी कृपा है बड़ी।
प्रभु का कर ले भजन दो घड़ी।

स्वार्थ के जो महल बनाए
दीन-दुखी के कर्ज बढ़ाए
हाथ वह मल-मल कर पछताए
नित मुसीबत खडी।
प्रभु का कर ले भजन दो घड़ी।

चार दिनो की कचन-काया
जिस पर मूरख तू इठलाया
समझ न आई तुझको ये माया
सिर पर मौत खडी।
प्रभु का कर ले भजन दो घड़ी।

छिन-छिन निस दिन बीता जाए
जीवन तेरा रीता जाए
हाथ न आयेगी फिर पछताए
यह अनमोल घड़ी।
प्रभु का कर ले भजन दो घड़ी।

वेद में सृष्टि-विषयक विचार

—डा० सत्यकाम वर्मा

ऋग्वेद में अनेक सूक्त ऐसे हैं, जिनमें सृष्टिरचना के विषय में विचार किया गया है। यह विचार कितना प्रौढ़ है, इसका अनुमान एक सामान्य पाठक के लिए सहज नहीं है। आज हम जब विज्ञान के तथाकथित युग में इस धरती से उड़ कर आकाश के विविध ग्रहों तक पहुँचने लगे हैं, और जब कि हमें सृष्टि के अनन्त विस्तार का कुछ-कुछ आभास मिलने लगा है, तब सृष्टि की रचना-प्रक्रिया के विषय में वेदों में हुए विचार को पाश्चात्यानुयायी और विज्ञानाभिमानी विद्वानो द्वारा 'आदिम' या 'नितान्त अपरिपक्व कोटि का' कहना आपाततः स्वाभाविक ही लगता है। पर इस पर भी पश्चिम के ही विद्वान् ऋग्वेद के दो ऐसे विशेष सूक्तों को ओर आरम्भ से ही ध्यान खीचते रहे हैं, जिनमें हुआ विचार आज भी विज्ञान और दर्शन की सर्वोच्च ऊँचाइयों को छूता प्रतीत होता है। इन दोनों सूक्तों को हम 'पुरुष-सूक्त' एवं 'नासदीय सूक्त' के नाम से जानते हैं। ये दोनो ही सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल में उसके ९० एवं १२९ सूक्त के रूप में आए है। इनमें से पुरुष सूक्त तो यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी अत्यल्प भेद के साथ आया है।

पुरुष सूक्त :—

इनमें से पुरुष-सूक्त इस सारी सृष्टि-प्रक्रिया को एक यज्ञ के रूप में देखकर चला है, और इस चरम निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह सब सृजनात्मक प्रक्रिया एक ही तत्व पुरुष या परमात्मा के अनन्त विस्तार के भीतर हो रही है। इस सूक्त में [illegible] बार-बार दोहराई गई है कि [illegible] कुछ भी इस संसार या सृष्टि [illegible] बाह्य रचना के रूप में [illegible] रहा है, वह सब उस पुरुष तत्व द्वारा प्रवर्तित हो रही एक अनन्त [illegible] प्रक्रिया से ही उद्भूत होता है, और अन्ततः उसी में विलीन हो जाता है।

इस सूक्त को हम संसार की 'चेतनात्मक एकता' का एक गीत मात्र कहकर ही नही टाल सकते। इसमें तो विज्ञान का परम सत्य एवं दर्शन की अतल गहराइयां भी विद्यमान हैं। इसमें इस बात को स्पष्ट किया है कि यह समस्त प्रक्रिया एक अनवरत यज्ञ के रूप मे चल रही है, जिसका प्रधान पुरोधा, यजमान और आहुति-सब कुछ वह पुरुष ही है, जो स्वयं ही एक यज्ञ के रूप में स्थित है। उस पुरुष की इस यज्ञरूपता को केवल वही जन समझ सकते हैं, जो समस्त सृष्टि मे एकता का सूत्र खोजने के लिए प्रवृत्त होते है। आरम्भ में तो उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे चारो ओर हजारो प्रकार की रचना और उसके हजारो प्रेरक या घटक तत्व अपना अलग-अलग अस्तित्व लिये हो। यह उसकी विविधता एक ही 'परम पुरुष' हजार सिर-पैर-आंख वाले एक महा दैत्य जैसा बना देती है। इस रचना और उसके विस्तार को हम जिधर से भी देखते हैं, उधर ही इसका, और इसमे व्याप्त एवं इसके रचयिता 'परम पुरुष' का एक सर्वथा नया ही रूप नजर आता है। किन्तु, जब हम इसकी वास्तविकता जानने के लिए आगे बढ़ते है, तब हम पाते है कि यह सब कुछ एक उसी परम पुरुष के भीतर है, उससे ही उत्पन्न हुआ है, और एक उसकी ही ज्योति विविध रूप में इस समस्त स्थावर-जगम सृष्टि को चला रही है। वैदिक दर्शन या वेदान्त का यही वह मत है, जिसे नासमझ लोगो ने 'अद्वैत वेदान्त' कहकर इसे गलत दिशा दे दी है। इसके अनुसार सृष्टि का नियामन और प्रवर्तन एक ही परम पुरुष द्वारा अवश्य होता है; परन्तु उससे सृष्ट होने के कारण यह सृष्टि भी उतनी ही सत्य है जितना कि वह पुरुष! इसीलिए इस 'पुरुष सूक्त' के मन्त्रों में बार-बार यह बात कही गई कि 'ये समस्त लोक-लोकान्तर सूर्यचन्द्रादि, समस्त चराचर सृष्टि मानव-पशु-आदि समस्त प्राकृतिक तत्व ऋतु-वैविध्यादि, एवं समस्त ज्ञान-चेतना ऋग्वेदादि का सृजन और आविर्भाव उसी परम पुरुष से ही होता है।' फिर भले ही शकराचार्य कहे या कोई और, यह जगत् 'मिथ्या' कैसे कहा जाता है।

अब क्योंकि इस सब का प्रेरक और सर्जक वह पुरुष ही है, अतः वही इस यज्ञ का सचालक है, वही यह यज्ञ है, वही इस यज्ञ मे यजमान और इसकी आहुति भी बनकर स्थित है। इसलिए यह सृष्टि यदि किसी सर्वहुत् या सर्वग्राही यज्ञ से उद्भूत हुई है, तो वह 'सर्वहुत् यज्ञ' स्वय वह चेतन तत्व ही है, जिसे हम 'पुरुष' या 'परमात्मा' के रूप में कह सकते है। 'आत्मा' को भी वही भोगव्यापार मे प्रवृत्त करता है एवं उसे समर्थ बनाता है।

वैज्ञानिक तथ्य :—

'पुरुष-सूक्त' का यह विवेचन केवल दार्शनिक चिन्तन मात्र नही है। इसमें विज्ञान के कुछ परम सत्य भी निहित है। इन्हें हम क्रमश. इन रूपों में कह सकते हैं :—

(१) एक और नित्य परम चेतना :

समस्त सृष्टि व्यापार चेतना के बिना नही हो सकता। यह चेतना दिक् और काल के अनन्त विस्तार मे सर्वत्र एक ही रूप में व्यापक एव नियामक बनकर स्थित है। सृष्टि के जड़ अणुओं में भी सृजन की सक्रियता इसी चेतना, या 'पुरुष' तत्व के कारण आती है। सृष्टि का हर अंश इसी चेतना की सक्रियता से सृष्ट एव स्थित रहता है। यह 'पुरुष-तत्व' ही 'आत्मा' या 'जीवात्मा' के रूप में इसका भोग भी करता है। समस्त 'अन्तराल' में भी यह 'चेतना' ही एकता के सूत्र के रूप में विद्यमान है।

(२) सत् और असत् अथवा सृष्ट और असृष्ट स्थिति

उत्पत्ति स्थिति और प्रलय की तीनों अवस्थाओं में ही सृजनात्मक तत्व एक ही रहते हैं। इस चेतन के साथ-साथ प्रकृति भी अपने तत्वमय रूप में सदा स्थित रहती है। भले ही सृष्टि प्रत्यक्ष रूप में न बनी हो। हाँ, निर्माण न होने की दशा में वह भी सूक्ष्म रूप में इस पूर्वोक्त सर्वव्यापी चेतन तत्व के साथ 'एक' होकर स्थित रहती है। इस चेतना का ही स्पन्दन तत्वात्मक रूप में इस प्रकृति को अव्यक्तावस्था में भी सक्रिय हो रखता है, यद्यपि इस प्रकृति के तत्व स्वयं में सक्रिय एवं सचेतन नहीं हैं—'आनीदवातं स्वधया तदेकम्।'

(३) समस्त लोक-लोकान्तर में एक ही प्रक्रिया :

जब समस्त सृजनात्मक व्यापार के तत्व एक हैं, तब उनमें चल रहा जीवन भी एक सा ही होना चाहिए। आकार-प्रकार मे भेद होने पर भी तत्व की दृष्टि से सभी चेतन-व्यापार सर्वत्र एक सा ही हो सकता है यही बात अचेतन सृष्टि के भी सम्बन्ध मे है। उसके आकार प्रकार में अन्तर होने पर भी वह उन्ही पांचभौतिक तत्वों से ही सर्वत्र गठित रहती है। 'तप' 'अन्त. शक्ति' की महिमा भौतिक सृजन के लिए सदा ही आवश्यक है : इसे ही 'अन्तस्तलीय ताप' भी कह सकते हैं। आन्तरिक ऊष्मा ही समस्त सृजनात्मक व्यापार को जन्म देती है।

(४) अन्तराल में प्रकृति :

जब एक ही से तत्व सृष्टि की अनिर्मित अवस्था में सर्वत्र एक ही रूप मे व्यापृत रहते हैं, तब उसकी सृजनात्मक या निर्मित अवस्था में भी उन्हे सर्वत्र व्याप्त होना ही चाहिए। अर्थात्, इन दृश्यमान लोकलोकान्तरों के अतिरिक्त यह जो शून्य आकाश हमे दृष्टिगोचर होता है, यह सर्वथा शून्य नहीं है। इसमें भी वे ही सृजनात्मक तत्व मौजूद हैं, जो इन निर्मित [illegible] में हैं। अन्तर यही है कि एक जगह वे घनीभूत रूप में एकत्र और पुंजीभूत हो गए हैं, जब कि दूसरी जगह वे अत्यन्त सूक्ष्म एवं अदृश्य मात्रा में विद्यमान हैं। इन्हीं सूक्ष्म तत्वों को आज का विज्ञान साक्षात्कार करने की कोशिश कर रहा है।

(शेष अगले अंक में)

ऋषिवर के उपकार

—अशोक कुमार विद्यालकार

वेदों का नाद बजाया तूने,
सोया जमाना जगाया तूने।
छाया था इस भूमण्डल पर,
घोर घना अन्धकार,
अज्ञान-निद्रा मे सोया,
था ये अखिल संसार।
धर्म का सूर्य उगाया तूने,
सोया जमाना जगाया तूने ॥१॥
मातृ-शक्ति का मान नहीं था,
होता था अपमान,
श्रद्धा की देवी को जग ये,
रहा था जूती जान।
नारी को मान दिलाया तूने।
सोया जमाना जगाया तूने ॥२॥
गो की गर्दन पर चलती थी,
देश मे तेज कटारी,
मारे जाते थे धर्म नाम से,
अगणित भोले प्राणी।
पशुओं का प्राण बचाया तूने,
सोया जमाना जगाया तूने ॥३॥
जाँत-पाँत व छुआछूत का,
रोग भयंकर था फैला,
अन्धी श्रद्धा, पाप बढा था,
था पाखण्ड का मेला।
पाखण्ड, पाप मिटाया तूने,
सोया जमाना जगाया तूने ॥४॥
हजार पाँच वर्षों से सत-पथ,
भारत भूल गया था,
सारी सचाई मान गया,
जिसके प्रतिकूल गया था।
ऐसा क्या जादू चलाया तूने
सोया जमाना जगाया तूने ॥५॥
अखिल विश्व पर ऋषिवर!
तूने उपकार महान् किया;
जग ने तुझको जहर पिलाया,
अमृत उसको दान दिया।
अद्भुत् दृश्य दिखाया तूने,
सोया जमाना जगाया तूने ॥६॥

पुस्तक समीक्षा

संगीत महोदधि

—स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती

आर्य समाज के सुविख्यात भजनोपदेशक स्वामी स्वरूपानंद जीर के अब तक के समस्त गीतों का संग्रह 'संगीत महोदधि' जितना बाह से आकर्षित करता है उतना ही अन्दर से पाठक के मन को आकर्षित करता है।

प्रारम्भ में वेद विषक, आध्यात्मिक, धार्मिक गीतों का संग्रह है और 'टंकारा की कथा' में ऋषि दयानंद का रोचक जीवन वृत। बीच में रोचक सामाजिक कथाएँ, कुप्रथाएँ एवं आर्य रत्नों के आदर्श है। अंत में 'जीवात्मा का परिचय' में लेखक ने अपने जीवन को प्रस्तुत किया है जिससे पाठक सोचने की एक नई दिशा ग्रहण कर सकता है।

पाठक को हर गीत अपने में बांध लेता है। गीतों में संगीतात्मकता, भावप्रवणता एवं हृदय में गहरे जाने की विशेषताएँ है। २३० पृष्ठों के सुन्दर संकलन का मूल्य मात्र आठ रुपये है। आर्य कुटीर ४४९, सनलाइट कालोनी—२ आश्रम, नई दिल्ली—१४ से पाठक उपर्युक्त संग्रह प्राप्त कर सकते हैं।

—राजकुमार

(पृष्ठ २ का शेष)

पुस्तकों की। विदेशी शासन के प्रभाव से हमारे देश के प्रकाशक भी व्यवसायी अधिक बन गये। निम्न रुचि की पुस्तकों के प्रकाशन से उन्हें आर्थिक लाभ अधिक होता है अत: उन्होंने इसके परिणाम को नजरन्दाज करते हुए ऐसी पुस्तकों को प्राथमिकता देनी प्रारम्भ कर दी। फल स्वरूप देश की जनता की मनोवृति निम्नस्तर की बन गयी और इसका विशेष प्रभाव पड़ा युवा वर्ग पर, देश के भावी कर्णधारों पर।

इस समस्या को हल करने में सरकार विशेष योगदान दे सकती है। सरकार स्तरीय पुस्तकों के प्रकाशन को बढावा दे सकती है। उन संस्थाओं एवं व्यक्ति प्रकाशकों को विशेष सुविधा देकर जो बिना किसी बडे आर्थिक लाभ के, समाज सेवा एवं राष्ट्रहित के लिए पुस्तकों का प्रकाशन करते है।

इस दिशा में आर्य समाज विशेष भूमिका निभा सकता है। आर्य संस्थाएँ मिल बैठ कर सत्साहित्य के प्रकाशन हेतु एक बड़े पैमाने पर योजना बना सकती है जिसका उद्देश्य समाजसेवा, राष्ट्र सेवा एवं देश में आर्यत्व पनपाना हो। इस समय भी कुछेक आर्य प्रकाशन यह कार्य कर रहे हैं लेकिन आपस में सगठित न होने के कारण उतने सफल नहीं हो रहे जितना होना चाहिए।

इस आर्य भूमि में विभिन्न पनपते विकारों की रोकथाम में आर्य समाज को विशेष भूमिका निभानी है। कुरीतियों, कुप्रथाओं के विरुद्ध एवं राष्ट्र विकास हेतु सत्साहित्य प्रकाशन कर उसे शहरों तक ही सीमित नही रखना है अपितु दूर-दराज गावो तक भी पहुँचाना है। जब गाँवो मे इस प्रकार का साहित्य जाएगा तो ग्रामीणो की रुचियो में भी परिवर्तन आयेगा और निस्सन्देह देश मे नये विकास का एक उभरता हुआ सूर्य दिखाई देगा।

संस्था—समाचार

१२-२-७८ का

साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम

वक्ता	आर्य समाज
१ पं० ब्रह्म प्रकाश जी शास्त्री	हनुमान रोड
२ पं० प्राणनाथ जी सिद्धान्तालंकार	अमर कालोनी
३ पं० सत्य भूषण जी वेदालंकार	नारायण विहार
४ पं० सुदर्शन देव जी शास्त्री	दरिया गंज
५ पं० विश्व प्रकाश जी शास्त्री	अन्धा मुगल प्रताप नगर
६ स्वामी सूर्यानन्द जी	जंगपुरा भोगल
७ पं० श्रुत बन्धु जी शास्त्री	सोहन गंज
८ पं० देव राम जी वैदिक मिशनरी	विक्रम नगर (कोटला फिरोज शाह)
९ स्वामी ओ३म् आश्रित जी	न्यू मोती नगर
१० पं० राजकुमार जी शास्त्री	गुड मन्डी
११ पं० अशोक कुमार जी विद्यालंकार	आर्य पुरा
१२ पं० आशानन्द जी भजनोपदेशक	सराय रोहेला
१३ पं० गनेश दत्त जी वानप्रस्थी	नागल राया
१४ प्रो० सत्य पाल जी बेदार	किशन गंज (मिल एरिया)
१५ डा० नन्दलाल जी	महरौली
१६ पं० लक्ष्मीनारायण जी	लक्ष्मीबाई नगर ई० १२०८)
१७ पं० देविन्द्र जी आर्य	जोर बाग
१८ श्रीमती प्रकाशवती जी	किदवई नगर
१९ स्वामी स्वरूपानन्द जी	विनय नगर
२० पं० प्रकाशचन्द जी वेदालंकार	महावीर नगर
२१ पं० महेशचन्द जी भजन मन्डली	अशोक विहार (के० डो० ७८ ए०)
२२ राम किशोर जी वैद्य	लाजपत नगर
२३ पं० मनोहर लाल जी भजनोपदेशक	लड्डू घाटी
२४ कविराज बनवारी लाल जी भजनोपदेशक	तिमार पुर
२५ पं० सत्यपाल जी आर्य भजनोपदेशक	हरि नगर घन्टा घर
२६ प० विद्याव्रत जी वेदालंकार	अशोक विहार फ़ेस III (ए० ७८ श्री हंस राज जी मदान)
२७ प्रो० वीरपाल जी	गाधी नगर

भाषण प्रतियोगिता

आर्य समाज दीवानहाल दिल्ली के ६३ वें वार्षिकोत्सव पर आयोजित भाषण प्रतियोगिता में भाग लेने के इच्छुक स्कूल के विद्यार्थी अपने नाम २२ फरवरी तक संयोजक के पास १६५४ कूचा दखिनी राय, दरियागंज, नई दिल्ली—२, के पते पर भेज दे।

संयोजक
देवव्रत धर्मेन्दु

गायत्री महिमा

—स्वामी स्वरूपानंद आर्य सन्यासी

गायत्री महामंत्र यह चारों वेदो का सार है।
जिसने सुमरन किया, उसी का भव से बेड़ा पार है॥
ध्याते, ऋषि मुनि, ज्ञानी, जप से होती बुद्धि निर्मल।
हो हृदय ईश विश्वास सभी मिटजाये संशय शूल सकल॥
सत्य ज्ञान की ज्योति जागे होता दूर विकार है।
गायत्री महामंत्र यह चारों वेदों का सार है॥१॥

जैमिन, कपिल, कणादि, पातान्जलि, सुमरन इसका करते थे।
राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, ध्यान इसी का धरते थे।
जीवन रूपी नैया की गायत्री ही पतवार है।
गायत्री महामंत्र यह चारों वेदों का सार है॥२॥

हो कर अतिशय श्रद्धा विभोर जो प्रतिदिन ध्यान लगाये।
लोक और परलोक सुधारे, मन इच्छा फल पाये॥
अनुकूल आचरण करने से बन जाते शुद्ध विचार हैं।
गायत्री महामंत्र यह चारों वेदो का सार है॥३॥

पावन गुरुमंत्र गायत्री निज जीवन मे करते धारण।
कहे 'स्वरूपानद, उसी के हो जाते है कष्ट निवारण॥
ताप मोचनी सत्य ज्ञान की ज्योति का भडार है।
गायत्री महामत्र यह चारों वेदो का सार है॥४॥

आर्य समाज गाँधी नगर का वार्षिक चुनाव

आर्य समाज गाँधी नगर, दिल्ली—३१ का वार्षिक चुनाव श्री यदुनन्दन अवस्थी की अध्यक्षता मे व स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज के आशीर्वाद से सर्व सम्मिति से सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये—

प्रधान	प० जगत राम आर्य
उपप्रधान	श्री खुशीराम और महाशय सुन्दरदास जी
मन्त्री	श्री जसवन्त राम
उपमन्त्री	श्री देवदत्त
प्रचार मन्त्री	श्री ओम प्रकाश चौधरी
कोषाध्यक्ष	श्री ब्रह्मदेव
पुस्तकालयाध्यक्ष	श्री श्याम सुन्दर

ओम प्रकाश चौधरी

लीला उसकी है न्यारी

कोई बड़ा न उससे था, है, होगा, ऐसा कब सम्भव ?
परमात्मा है नाम, इसी से, रमा हुआ सब में पुङ्गव॥
सब जीवों में व्याप्त हो रहा, लीला उसकी है न्यारी।
प्रजापति वह, सब का स्वामी, रमा रहा सब संसारी॥
सोलह कला बनाई उसने, कलावान कहलाता है।
अग्नि, वायु औ' सूर्य बनाया, ज्योति-स्वरूप कहता है॥
ईक्षण, श्रद्धा, प्राण, वायु, नभ, सभी कलाएँ उसकी हैं।
जल, अग्नि, भूमि, इद्रिय, मन, सब लीलाएँ उसकी हैं॥
वीर्य, अन्न, मंत्र, तप सब कुछ, उसकी ही अद्भुत रचना।
कर्म, लोक यह उसकी लीला, कला उसी की सब घटना॥
उस परमेश्वर को तज जो नर, और किसी का ध्यान करे।
मिलता नहीं कभी सुख उसको, वह दुःखों को प्राप्त करे॥

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गाँधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक १८ रविवार १२ मार्च, १९७८ दयानन्दाब्द १५३

वेदोपदेश

ओ३म् त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः
स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः
स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ (ऋ०१।५२।१२)

हे (त्वम्) परमात्मा ! तू (धृषन्मनः) घर्षणशील, मननशक्तिवाला (स्वभूत्योजा) अपनी विभूतिरूप पराक्रम वाला होता हुआ (अस्य रजस) इस लोकसमूह अर्थात् जगत् की (अवसे) रक्षा के निमित्त (व्योमन पारे) आकाश मण्डल के आर पार वर्तमान है तथा (भूमिम्) पृथिवीको (ओजस.) अपने पराक्रम का (प्रतिमानम्) परिचायक (चकृषे) बनाता हुआ (अप) सूक्ष्म जलो (स्व दिवम्) अन्तरिक्ष और द्युलोक को (परिभू) स्वाधीन कर (ऐषि) विराज रहा है।

हे परमैश्वर्यवान् परमात्मा ! तू सर्वव्यापक है, हर जगह मौजूद है। आकाश से लेकर पाताल तक, बाहर भीतर हर जगह कण कण मे तेरी ज्योति जगमगा रही है। दुष्टो के हृदय में वर्तमान रह कर, जब वे बुराई करने पर उतारू होते हैं उनके मन में मलामत की भावना, उत्पन्न करके उन्हे बुराईयों से बाज रखने वाला तू ही है। ऐसा करके जहाँ तू उन्हे ऊपर उठने का अवसर प्रदान करता है वहा तेरे इस प्रकार निरन्तर सावधान रहने से शिष्टो की रक्षा भी स्वतः हो जाती है। जिससे हमारे जैसे निर्बल और अशक्त व्यक्ति तेरे इस संसार रूपी राज्य मे निर्भय होकर आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। हे दीनानाथ तू ही प्राकृतिक जगत् का रक्षक और हमारे जैसे शरीर धारियो का पालन हारा है। हे अनन्त सामर्थ्य के स्वामी तूही अपनी अनन्त शक्ति द्वारा इस भूमि को, इसके ऊपर व्यक्त जल को तथा इसकी सतह के नीचे अदृष्ट पानी को, और सारे (आकाश=space) को एवं इस द्युलोक को अर्थात् इस अन्तरिक्ष में वर्त्तमान और गति करते हुए विविध प्रकाशमान और प्रकाशरहित लोक लोकान्तरों को बनाता, बनाकर निरन्तर नियमो मे रखकर धारण करता है। तू ही इस सारी सृष्टिका कर्त्ता धर्त्ता और ज्ञाता है। हे अनन्त और अपरिमेय स्वामी हम पर कृपा कर और इस सृष्टि को पूरी तरह समझने की सामर्थ्य हमे प्रदान कर।

(श्रीमती तोष प्रतिमा एम० ए०)

शोक समाचार

नई दिल्ली ६ मार्च—आर्य जनता को यह जानकर दुःख होगा कि प्रसिद्ध संन्यासी श्री स्वा० विद्यानन्द जी विदेह का कल सहारनपुर मे व्याख्यान देते हुए देहान्त हो गया। उनका शव दिल्ली लाया जा चुका है। शवयात्रा कल प्रात. वेद संस्थान न्यू राजेन्द्र नगर से आरम्भ होकर नगर के मुख्य मुख्य बाजारों मे से होती निगम बोध घाट पर समाप्त होगी जहाँ वैदिक रीति से अन्त्येष्टि संस्कार किया जायेगा।

७ मार्च को मध्याह्नपूर्व यह अन्त्येष्टि संस्कार जमुना नदी के तट पर निगम बोध घाट पर सम्पन्न हुआ।

प्रेरक प्रसंग

माता का आशीर्वाद

इस शताब्दी के आरम्भ की बात है। आर्य समाज रोपड ने कुछ अछूत भाईयों का जातिप्रवेश संस्कार कराया और उनसे बिना रोक टोक मिलना जुलना आरम्भ किया। वहाँ के कट्टर पन्थी हिन्दुओ ने इसे अपने लिये एक चुनौति समझा। रोपड के आर्य समाजियो का सर्वत्र बहिष्कार होने लगा। आम हिन्दु अब आर्य समाजियो को अछूत समझ उनसे छुआ छूत करने लगे। यह बहिष्कार इतना जोर पकड गया कि आर्य समाजियो का कुओ से पानी लेना भी बन्द कर दिया गया। वे लोग पास बहती नहर से जल लेते और उसे ही पी कर अपना निर्वाह करते थे।

इस अछूतोद्धार आन्दोलन के मुखिया रोपड के एक सम्भ्रान्त आर्य समाजी ला० सोमनाथ थे। दैव योग से उनकी वृद्धा माता इन्ही दिनो पेचिश के रोग से आक्रान्त हो गई। डाक्टरो ने बहुत इलाज किया पर रोग काबू मे न आया। आखिरकार उन्होंने ला० सोमनाथ से कहा कि —नहर का जल पेचिश को बढाता है। जब तक वह नहर का पानी पीयेगी अच्छी न हो सकेगी।" ला० सोमनाथ द्विविधा में पड गये। एक तरफ माता का जीवन था और दूसरी तरफ आर्य समाज की मान मर्यादा का प्रश्न। मातृभक्ति ने उन्हे प्रेरणा की कि वह क्षमा माग लें और इस पवित्र कार्य से विमुख हो जाये।

ला० सोमनाथ की माता को जब अपने पुत्र की दुर्बलता का पता लगा वह मन मे बड़ी दुखी हुई। उसने तत्काल ला० सोमनाथ को बुलाकर कहा —"बेटा सोमनाथ, मैं पर्याप्त से अधिक उमर भोग चुकी हू। जीवन के सब सुख मैंने देख लिये है। मुझे अब जीने की अधिक चाह नही। तू यदि मुझे बचाने के लिये माफी मागेगा और अछूत भाईयो को जाति में मिलाने के पवित्र कार्य से विरत होगा तो मुझे इतना सदमा होगा कि मेरे प्राण वैसे ही निकल जायेगे। अत मेरा तुझे यही निदेश है कि अपने धर्म से मत गिरना, कुछ भी हो जाये इस पवित्र कार्य को कदापि न छोडना"। माता के इन उत्साहवर्द्धक शब्दो को सुनकर पस्तहोमला ला० सोमनाथ खडे हो गये। उन्होने अछूतोद्धार के काम को और भी जोर शोर से करना शुरू कर दिया। कट्टर पन्थियो ने आर्य समाजियो को कूएँ से पानी न भरने दिया। ला० सोमनाथ की माता नहर के पानी को ही पीती रही। उसकी पेचिश आगे से ओर अधिक बढ गई। आखीरी वकत आ गया। वृद्धा माता ने सुख और शान्ति से प्राण त्यागे। उसको सन्तोष था कि उसका बेटा एक पवित्र कार्य मे लगा हुआ है। (इतिहास प्रेमी)

दिल्ली में ऋषिबोधोत्सव

दिल्ली की समस्त आर्य समाजो ने ७ मार्च १९७८ को आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के तत्वाधान मे कोटला फिरोजशाह के मैदान मे बडी धूम धाम से ऋषिबोधोत्सव मनाया। साय ३ से ५ बजे तक श्री ओमप्रकाश जी त्यागी संसद सदस्य की अध्यक्षता मे सभा हुई जिसमे श्री रामगोपाल शालवाले, श्री शान्ति भूषण विधि मन्त्री भारत सरकार, श्री के० नरेन्द्र मालिक दैनिक प्रताप आदि आदि ने महर्षि दयानन्द को श्रद्धा स्मरण पूर्वक करते हुए आर्य समाज को अपनी गतिविधियाँ पुन तेज करने का आह्वान किया।

सम्पादक सरदारीलाल वर्मा, सहसम्पादक सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए०

उच्चतर शिक्षा का माध्यम

—बलभद्रकुमार कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मानना पड़ेगा कि हिन्दी भाषी राज्यों में भी अभी तक विश्व-विद्यालय स्तर की शिक्षा का माध्यम हिन्दी न होकर अंग्रेजी ही है। जहा हिन्दी का माध्यम बदला भी जा रहा है, हीनता की भावना दृष्टिगोचर होती है।

२—विश्वविद्यालय स्तर को छोड़िये, प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक शिशु शिक्षा के स्तर पर भी अंग्रेजी द्वारा शिक्षा प्रदान करना फैशनेबल है। हिन्दी का प्रयोग ओछा समझा जाता है।

३—स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता है।

४—हम हिन्दी के माध्यम का इसलिये नहीं प्रयोग करना चाहते कि हम हिन्दी को देवी देवता का दरजा देते हैं, बल्कि इसलिये कि अपनी भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा ग्रहण करने मे सुविधा होती है। विदेशी भाषा के जगल में फस कर विद्यार्थियो के विचारों का प्रवाह एव उनकी मानसिक उडान बन्द हो जाती है। विदेशी भाषा के व्याकरण को सभालें, शब्दावली को सभाले अथवा विचारो को हृदयङ्गम करें या प्रसारित करें, बच्चों के लिये दु साध्य हो जाता है। इसलिये आप देखेंगे। कि हर उन्नत देश मे विद्यालय शिक्षा के स्तर पर विचारों के आदान प्रादान का साधन एवदेशी भाषा ही रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो की बाद दूसरी है। विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रसार करने से बुद्धि कुशाग्र न होकर कुण्ठित ही रहती है, विद्यार्थी चाहे कितना ही मेधावी क्यो न हो।

५—विश्वविद्यालय स्तर पर अंग्रेजी माध्यम के प्रयोग का विशेष कारण यह है कि चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कानून, प्रशासन तथा व्यापार आदि विभिन्न व्यवसायों में ऊचे स्तर पर प्रवेश पाने के लिये अंग्रेजी की जानकारी ही नहीं बल्कि अंग्रेजी में कुशलता पूर्वक बातचीत करने की क्षमता को तरजीह दी जाती है। इसीलिये ही महत्वाकांक्षी नवयुवक अंग्रेजी मे प्रवीणता प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं और इसी लक्ष्य को मध्यनजर रखते हुए छोटी श्रेणियो से ही अंग्रेजी में शिक्षा प्रदान करना आरम्भ कर दिया जाता है। परिणामत हम एक विशिष्ट इलीटिस्ट वर्ग द्वारा निर्मित ऐसी जजीरों मे फंस गये हैं जिन्हें तोडना कठिन हो रहा है और शिक्षा एवं रिसर्च की उपलब्धियां वजनी न होकर बहुत करके दर्शनी उपलब्धियां रह गई है। तो फिर हम क्या करें ?

६—स्पष्ट है कि इलाज नीचे से ही आरम्भ करना होगा। आज से ६०-७० साल पहले वर्नेकूलर फाइनल तक शिक्षा स्वदेशी भाषाओ द्वारा दी जाती थी। उसके बाद जिन्होंने आगे पढ़ना होता था, वह अंग्रेजी के विशेष कोर्स लेकर अंग्रेजी में अपनी दक्षता बढ़ाते थे और हाई स्कूल और कालिज में प्रवेश पाते थे। क्यों न वही पद्धति पुनः जारी की जाय ? अर्थात छठी कक्षा तक सब विद्यालयों मे हिन्दी अथवा प्रदेशिक भाषाओं द्वारा शिक्षा दी जाय, सातवीं के बाद जो चाहें वैकल्पिक तौर पर अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, फ्रेंच आदि के विशेष कोर्स लें। साधारणतया शिक्षा का माध्यम राष्ट्रीय भाषाये ही रहे। पब्लिक स्कूलों मे भी ऐसा ही प्रावधान रहे। अन्यथा देशी भाषाओ के प्रति हीनता की भावना बनी ही रहेगी। इस बात का हमे दृढ सकल्प करना होगा कि देशी भाषाओ के प्रति आज जो हीनता की भावना है उसे जल्दी से जल्दी समाप्त किया जाये। हम देखेंगे कि इससे पब्लिक स्कूलों और साधारण स्कूलो के बच्चो मे जो ऊचनीच की भावना व्याप्त है उस पर भी चोट पडेगी और कुछ हद तक ही सही सामाजिक समानता का लल्य भी नजदीक आयेगा।

७—इसके अतिरिक्त हमें यह भी संकल्प करना होगा कि ऊचे स्तर पर विधि, व्यापार और अन्य पत्र व्यवहार मे हमें राष्ट्रभाषा को अपनाना है। अफसोस है कि इतना समय गुजरने के बाद अभी भी हमारी अदालतें बहुत निर्णय अग्रेजी मे देती हैं। विशेष कर माल की अदालतें तो ऐसा करके अनर्थ करती हैं। बेचारे किसानों को फैसले पढवाने के लिये वकीलों, स्कूल मास्टरो को बीस बीस पच्चीस पच्चीस रुपये देने पड़ते हैं। कानून की यह मान्यता है कि कोई भी व्यक्ति अपने बचाव मे कानून से लाइल्मी का तर्क नहीं दे सकता। यदि यह बात है तो क्या कानून की व्याख्या करने वालों के लिये यह लाजमी नहीं होना चाहिये कि वह कानूनी व्यवस्थायें आम फहम भाषा में दें ? क्या जनता की यह मांग नाजायज है ?

८—इसके साथ ही संबन्धित एक और सुझाव है। यदि देश की सभी प्रादेशिक भाषायें नागरीलिपि को अपना लेती हैं, तो न केवल राष्ट्रीय एकता की भावना को बल मिलेगा, बल्कि विभिन्न भाषाओं मे पारस्परिक आदान प्रदान भी बढेगा और पुस्तकों के क्रयविक्रय की मार्केट भी विस्तृत हो जायेगी। इससे लेखकों, प्रकाशकों को ग्रंथनिमार्ण में प्रोत्साहन मिलेगा। विद्यार्थियो पर भिन्न लिपियो को ग्रहण करने से जोर पड़ता है वह भी समाप्त हो जायेगा।

आखिर शिक्षा का लक्ष्य बंद दिमागों को खोलना है, विचारों की उड़ान को प्रबल करना है, नई सूझ बूझ पैदा करना है। देश भर में एक लिपि होने से देश के कोने कोने मे व्याप्त बौद्धिक लहरों से समूचाराष्ट्र परिप्लावित हो जायेगा, इसमें क्या संदेह हैं ? आज हम बिजली के लिये एक राष्ट्रीय ग्रिड की बात करते हैं, भारतीय रेलों के लिये एक गेज की बात करते हैं, तो क्यों न सभी राष्ट्रीय भाषाओं के लिये एक लिपि का प्रस्ताव स्वीकार करें ?

फार्म ४

१. प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
२. प्रकाशन अवधि	साप्ताहिक
३. मुद्रक का नाम (क्या भारत का नागरिक है) (यदि विदेशी है तो मूल देश) पता	सरदारी लाल वर्मा भारतीय दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली
४. प्रकाशक का नाम (क्या भारत का नागरिक है) (यदि विदेशी है तो मूल देश) पता	सरदारी लाल वर्मा भारतीय दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली
५. सम्पादक का नाम (क्या भारत का नागरिक है) (यदि विदेशी है तो मूल देश) पता	सरदारी लाल वर्मा भारतीय दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली
६. उन व्यक्तियो के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हो	दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड नई दिल्ली

मैं सरदारी लाल वर्मा एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरे अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य हैं।

प्रकाशक के हस्ताक्षर
सरदारीलाल वर्मा

क्या ईश्वर में इच्छा है ?

[प्र०] ईश्वर मे इच्छा है या नहीं ?

[उ०] वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से विशेष सुख होवे, उसकी, होती है। यदि ईश्वर को कोई पदार्थ अप्राप्त, उससे उत्तम या विशेष सुख देने वाला हो तो ईश्वर में इच्छा हो सके। न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुख-युक्त होने से उसे सुख की अभिलाषा भी नहीं है, इसलिए ईश्वर में इच्छा का होना तो सम्भव नहीं, किन्तु ईक्षण है। सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सृष्टि का करना ईक्षण कहाता है।

[प्र०] परमेश्वर रागी है या विरक्त ?

[उ०] दोनों नहीं। क्योंकि राग अपने से उत्तम भिन्न पदार्थों मे होता है, सो परमेश्वर से कोई पदार्थ उत्तम वा भिन्न नहीं, इसलिए उसमे राग का सम्भव नही। और जो प्राप्त को छोड देवे, उसको विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ नही सकता, इसलिए विरक्त भी नही।

(सत्यार्थप्रकाश)

सम्पादकीय

मृगतृष्णा

आज का युग "माडर्न" ही नहीं अपितु "अलट्रा-माडर्न" है। हर रोज नये से नये सुख साधन, फैशन तथा दृष्टिकोण उभर कर आ रहे हैं। भौतिकवाद अपनी चर्म सीमा तक पहुंच चुका है। हर एक सुख साधनों के लिये ललचा रहा है। जिसके पास नहीं हैं वह दौड़ धूप कर रहा है, इन्हें प्राप्त करने की, और जिसके पास हैं वह और अधिक जुटाने की फिकर में है। इस दौड़ धूप में जीवन की आधारभूत मान्यताएं जिनके लिये यह सब दौड़ धूप की जा रही है आंखों से ओझल हो जाती हैं। और सामने रह जाती है केवल मात्र दौड़ धूप जिसका अन्त होता कहीं नजर नहीं आता। अन्त में नजर आने लगता है अपना ही अन्त। यह है जीवनस्थिति आज के मानव की जो इस युग का निर्माता है, जिसमे समय और अन्तर पर विजय प्राप्त कर ली गई है।

संसार की हर एक वस्तु जीवन के लिए है, इनसान को जिन्दा रखने के लिये। परन्तु होता क्या है ? इनसान मर रहा है हालां कि उसे जिन्दा रखने के उपाय ढूढ निकाले जा चुके हैं। कुछ तो ऐसे अभागे हैं कि इस वैज्ञानिक युग में भी जब हर समस्या का हल उपलब्ध है इतनी सामर्थ्य ही नही रखते कि उसे अपने लिये प्राप्त कर सकें। और जो प्राप्त कर सकते हैं उनका दुर्भाग्य भी कुछ कम नही। या तो उनकी ऐसी सूझ बूझ ही नहीं अन्यथा वे ऐसे चक्करों अथवा कुचक्करों में फंसे हुए हैं कि उन्हें अपनी समस्या समझ ही नहीं आती और मृगतृष्णा मे उलझे मृग की भांति वे दौड दौड़ कर ही मर जाते हैं। किन्तु जो चाहते हैं पा नहीं पाते।

तो क्या इस विकट स्थिति से पार होने का कोई रास्ता नही ? नहीं है, क्यो नहीं। उपनिषद् ने जो "तेन त्यक्तेन भु जीथा" (उस द्वारा दिये गये का उपभोग करो) कहा है यही इसका हल है। हम आज के विज्ञान द्वारा उपलब्ध कराई गई सुख सुविधाओं के विरुद्ध नहीं, जितनी मिलें खूब उनका उपभोग करो। कोई हरज नहीं। किन्तु जब न मिलें तो ("मा गृध" को याद करते हुए। ललचाओ नहीं। और न ही ललचा कर किसी दूसरे की सुख सुविधाओं का अपने लिये हरण करने का प्रयत्न करो। इससे वैयक्तिक टकराव होगा। जिससे दोनों का ह्रास होगा। और जो थोडा बहुत है वह भी जाता रहेगा। मिलेगा केवल उतना ही जितना वह अपने विधान से निकाल कर तुम्हें देगा। "कस्य स्विद्धनम्" यह धन किसका है आखिर ? यह न मेरा है न तेरा है। उपनिषद् की इस शिक्षा को याद रखो, पुरुषार्थ करो और उससे जो भी प्राप्त हो उस पर सन्तोष करो। न लोभ करो और न ही हीन भाव आने दो।

सत्यानन्द शास्त्री

इक्कीस वर्ष ही क्यों पच्चीस क्यों नहीं

पिछले सप्ताह बाल विवाह निरोधक कानून मे संशोधन कर के संसद ने विवाहार्ह लड़के और लडकियों की न्यूनतम आयु बढा कर २१ और १८ वर्ष कर दी है। हम इसका स्वागत करते हैं। किन्तु क्या ही अच्छा होता यदि विवाहार्ह लडकों की न्यूनतम आयु २१ वर्ष की बजाये २५ वर्ष कर दी गई होती।

महर्षि धन्वन्तरि ने अपने ग्रन्थ सुश्रुत मे लिखा है कि "जितना सामर्थ्य २५ वें वर्ष मे पुरुष के शरीर मे होता है उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर मे १६ वें वर्ष मे हो जाता है" महर्षि धन्वन्तरि के मत मे विवाह की यही न्यूनतम आयु है। वर्तमान युग के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने सुश्रुत के इस वचन को उद्धृत कर लिखा है कि —"यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहे तो २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं......यह अधम विवाह है। अत: उनके मतानुसार २५ वर्ष से कम आयु वाले पुरुष का विवाह नही होना चाहिए।

स्मरण रहे सन्ततिशास्त्र (eugenics) के पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में एक गुर विकसित किया है। उस गुर के अनुसार विवाह के समय कन्या जितने वर्षों की हो उस संख्या मे से पांच घटा कर यदि उसे दुगना कर दिया जाय तो जो संख्या हासिल लगे कम अज कम उतने वर्ष आयु वर की अवश्य होनी चाहिये। इस गुर के अनुसार १८ वर्ष की कन्या का विवाह २५ या २६ वर्ष आयु वाले लड़के से होना ही अभीष्ट है।

सत्यानन्द शास्त्री

स्वामी विज्ञानानन्द सरवस्ती

संन्यास आश्रम गाजियाबाद का वार्षिक उत्सव ६ से १२ मार्च १९७८ तक होगा। स्मरण रहे तप मूर्त्ति श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी सरस्वती इस आश्रम के संस्थापक हैं। उनकी आयु इस समय ९७ वर्ष से ऊपर हो चुकी है। शरीर अस्वस्थ रहता है और वह आज कल कहीं आ जा नही सकते। इस ९७ वर्ष की आयु में यदि अधिक नहीं तो कम अज कम ८० वर्ष आप ने आर्य समाज की दिलोजान से सेवा की है। यह आप के प्रचार का ही फल है कि मारिशस में आर्य समाज एक शक्तिशाली सोसाईटी के रूप मे उभर कर लोगों के सामने आया है। श्री स्वामी जी महाराज ने १९२५ से १९३३ तक गाओ गाओं पैदल घूम कर मारिशस मे आर्य समाज का प्रचार किया। आप विरजानन्द वैदिक संस्थान के भी अध्यक्ष हैं जहा से स्वामी वेदानन्द तीर्थ कृत टिप्पणी सहित सत्यार्थ प्रकाश का प्रसिद्ध और लोकप्रिय स्थूलाक्षरी संस्करण तीन बार प्रकाशित हो चुका है। स्वामी जी महाराज की देख रेख में इसी संस्थान द्वारा आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ के बीसियो ग्रन्थ भी छपे हैं। प० उदयवीर जी शास्त्री जिनके वैदिक दर्शनों पर भाष्यो ने पढे लिखे तबके में तहलका मचा दिया है भी इसी आश्रम से संबन्धित हैं। हम आशा करते हैं कि ऐसे तप पूत महानुभावों की तप: भूमि संन्यास आश्रम गाजियाबाद के वार्षिक उत्सव मे आर्य जनता बहुत बड़ी संख्या मे सम्मिलित होगी। हमें विश्वास है कि ऐसा करके जहां वे उत्सव मे विद्वान उपदेशको और विख्यात भजनोपदेशको के वचनों और गीतों को सुनकर लाभान्वित होगे वहाँ त्याग और तप की मुर्त्ति स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती के दर्शन कर अपने जन्म को सफल बनायेंगे।

सत्यानन्द शास्त्री

कुरीतियां दर करने के लिए आर्यसमाज यत्न जारी रखे।

उप राष्ट्रपति

२६ फरवरी १९७८ को आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली के वार्षिक उत्सव पर आर्य सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए भारत के उपराष्ट्रपति श्री ब० दा० जत्ती ने आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओ से देश से सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के लिये अपनी गतिविधियो को और तीव्र करने का अनुरोध किया। उन्होने कहा कि—

"यह ऐतिहासिक तथ्य है कि महर्षि दयानद ने आर्य समाज की स्थापना प्राचीन वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा के लिये की थी, उस पर जमे हुए मैल को दूर करने के लिये की थी। उनके सामाजिक उत्थान के कार्यक्रम मे स्वराज्य प्राप्ति वेयक्तिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि, नैतिक तथा सामाजिक सुधार आदि सभी कुछ सम्मिलित था। दयानन्द सरस्वती ने भारतीय समाज और लोगो की दशा को देखा था। वह इसके उद्धार के लिये चिन्तित थे और मानव समाज को जीर्ण करने वाले रीति-रिवाजो, अन्ध-विश्वासो उँच-नीच के भेद-भावो को दूर करने का उन्होंने व्रत लिया भी, यही व्रत आर्य समाज की स्थापना का आधार बना। ऋषि के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यत्न जारी रहने चाहियें।"

श्री जत्ती महोदय ने अपने भाषाण को जारी रखते हुए पुन कहा.— "कानून के जरिए सुधार होते हैं, परन्तु केवल कानून ही समाज सुधार के लिये पर्याप्त नही होते। उसके लिये जनचेतना जागृत होनी चाहिए, विचारो को एक नई दिशा मिलनी चाहिए। जीवन मूल्यो के प्रचार-प्रसार के लिये कर्मठ और निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं की सदा जरूतत रहती है। आर्य समाज ने समय-समय पर देश को ऐसे कार्यकर्त्ता दिये है। मैं समझता हूँ कि आज भी आर्य समाज ऐसे कार्यकर्त्ता दे सकता है जो समाज सुधार के कार्य को पूरा करे।"

उँच नीच, जाति-पाँति के भेद-भावो तथा रुढिगत दुराग्रहो से समाज अभी तक पूर्णतया मुक्त नहीं हो सका है। वास्तव मे जब भी हम इस प्रकार के सम्मेलनो मे इकठ्ठे होते हैं, हमे अन्तर्मुखी होकर, इस विषय पर विचार करना चाहिए कि महर्षि दयानन्द के बताए हुए मार्ग पर चलते हुए, राष्ट्र और आर्य समाज को स्वच्छ और शक्तिशाली बनाने मे हम किस प्रकार और अधिक कारगर ढग से कार्य कर सकते हैं और नैतिक मूल्यो के प्रचार-प्रसार मे अपना योगदान दे सकते हैं।

राष्ट्र, धर्म-परिवर्तन और आर्य समाज

—श्री कृष्णदत्त, हैदराबाद

धर्म के आधार पर सख्या वृद्धि के अत्यन्त दूरगामी राजनैतिक और राष्ट्रीय परिणाम होते हैं। पंजाब और बंगाल में मुस्लिम बहुसंख्या के आधार पर दोनों प्रदेशों का जो विभाजन हुआ दीर्घकाल से वहां होने वाला धर्म परिवर्तन ही इसका मूल कारण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आसाम को प्रभावित करने का प्रयत्न बडे जोर-शोर से हो रहा है। ईसाई धर्म-परिवर्तन द्वारा और मुसलमान पाकिस्तान से घुसपैठ द्वारा अपनी लक्ष्य-पूर्ति मे लगे हुए हैं। नागा, मिजो आदि की पृथक राज्य की मांग और स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना वा प्रयत्न ईसाई धर्म के प्रचार का ही परिणाम है। वहां विदेशी पादरियो का अड्डा है। जो ईसाई धर्म स्वीकार करते हैं उन्हें विद्रोही बनाया जाता है। इसी प्रकार इस्लाम स्वीकार करते ही मस्तिष्क भारतीय नहीं रहता। इस्लाम का प्रचार न होता तो सिन्ध, पंजाब और बगाल में धर्म परिवर्तन का चक्र तीव्र गति से न चलता तब निस्सन्देह न देश का विभाजन होता और न ही पाकिस्तान बनता।

पाकिस्तान के निर्माण के तुरन्त बाद उत्तर प्रदेश विधान सभा के एक मुस्लिम लीगी विधायक ने कहा था कि भविष्य में हम इसी भारत में से एक नवीन पाकिस्तान का निर्माण करेंगे। अधिकांश मुसलमान इसी आशा और प्रयत्न मे हैं कि भारत का कोई न कोई भाग काट कर पाकिस्तान मे जोड दें। देश के विभाजन के समय से ही पाकिस्तान के कर्त्ता-धर्त्ता आसाम के चाय के बागों और तेल के कारखानों पर नजर रखे हुए हैं। पूर्वी पाकिस्तान से लाखों मुसलमानो की घुसपैठ एक जानी-बूझी योजना का परिणाम है। यह घुसपैठ भविष्य मे भयकर परिणाम पैदा करने वाली सिद्ध होगी। ईसाई धर्म के प्रचार और उनकी सख्या की वृद्धि के साथ-साथ क्या भारतीय धर्म, भाषा सस्कृति और सम्यता सुरक्षित रहेगे? जिस भारतीय धर्म और सस्कृति का गौरवगान स्वामी विवेकानन्द ने विदेशो मे किया था और डॉ० राधाकृष्णन जिस भारतीय दर्शन, भारतीय सस्कृति और भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता का पश्चिमी देशो मे राग अलापते रहे, वह संस्कृति, सभ्यता और दार्शनिक विचारधारा क्या ईसाई धर्म वा इस्लाम के प्रचार से सुरक्षित रहेंगे? ईसाई धर्म, इस्लाम और बौद्ध धर्म के अनुयायियों की जितनी अधिक सख्या-वृद्धि होगी उतने अधिक स्वतन्त्र "नागालैंड" इस धरती पर उभरेंगे और देश के सामने भयानक समस्या बनते जायेंगे। ये धर्म-परिवर्तन अत्यन्त दूरगामी राष्ट्रीय और राजनैतिक परिणामों के द्योतक बनते जा रहे हैं।

इस कार्य में किसी धर्मावलम्बियों को कोसने अथवा उनके विरोध मे प्रस्ताव स्वीकार करने का कोई लाभ नहीं होगा। इस पद्धति से अथवा किसी भी नकारात्मक (negative) कार्य से ये कार्य रुकेंगे नहीं। ईसाई, बौद्ध धर्म और इस्लाम ने अपने धर्म को प्रचार-धर्म बनाया है। पृथ्वीतल पर वे जहां गये हैं उन्होंने अपने-अपने धर्म का प्रचार करके दूसरों को अपने धर्म की दीक्षा दी है। हम इस धर्म परिवर्तन की लहर को अपना सुधार करके ही रोक सकते हैं।

एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की यह है कि ईसाई और बौद्धमत का प्रचार और धर्म परिवर्तन अधिकांश हरिजन, गिरिजन और अन्य जातियों मे हो रहा है। ये जातियां हिन्दुओ मे अत्यधिक उपेक्षित और दलित हैं। अन्य सभी हिन्दू तथा इन लोगो के नेता भी इनका दुरुपयोग ही कर रहे है—अपनी श्रेष्ठता, प्रभाव और नेतृत्व को बचाये रखने के लिए ही इनका इस्तेमाल हो रहा है। अन्य हिन्दू सगठन इनके अन्दर चेतना, शिक्षा और समानता के भाव उत्पन्न करने के लिए जो कुछ कर रहे हैं वह अत्यन्त अल्प मात्रा मे है। यह तो समस्त हिन्दू जाति का दोष है, जो प्रगाढ निद्रा मे ग्रस्त है। दोष हिन्दु नेताओ का भी है जो भावी-सकट का अनुभव नहीं कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द ने इस भावी खतरे को लगभग एक शताब्दी पहले अनुभव किया था। इस सकट के निवारण का भी उन्होंने उपाय बताया था। अन्य धर्मावलम्बियों की ओर से होने वाले धर्म परिवर्तन की रोकथाम के लिये स्वामी जी ने 'शुद्धि' का आन्दोलन बताया था, जिसको अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने बडे वेग से आगे बढाया। किन्तु उनके बाद यह कार्य शिथिल पड़ गया और अब तो प्राय समाप्त सा हो गया है। शुद्धि का विरोध स्वयं हिन्दुओ ने किया है। जन्म मूलक जात-पात और बिरादरी की सुदृढ और संकुचित दीवारों से घिरी हुई हिन्दू जाति के संख्या-बल मे ऐसा शोचनीय ह्रास एक स्वाभाविक परिणाम है। जो अपने आपको उच्चवर्गीय या ऊंची जाति के समझते हैं वे शिक्षा व सम्पत्ति से सम्पन्न हैं और उन्हें सभी सामाजिक सुविधाएं प्राप्त हैं। जो अन्य धर्मावलम्बियों का शिकार बन रहे हैं वे अशिक्षित हैं, अभाव ग्रस्त हैं और सामाजिक दृष्टि से दलित हैं। अत: इनके अन्य धर्मों में सम्मिलित होने के कारण तथाकथित उच्च जाति के हिन्दुओं को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं हो रही है। वे इस बात से अनभिज्ञ हैं अथवा गाफिल हैं कि इसके भयकर राजनैतिक परिणाम उनके सामने आएंगे। अत आर्य समाज के ऐसे लोगों ने शुद्धि के कार्य को भी कुण्ठित कर दिया है।

हमारी राजनैतिक चिन्तनशैली भी हिन्दुओ के सख्याबल के ह्रास का कारण बनी हुई है। हमारे राजनैतिक नेता, जो हिन्दू कहला कर मन्त्रिपद, अधिकार और अन्य नागरिक पद प्राप्त करते हैं, उनमे यही भावना है कि हिन्दू जाति के लिए कुछ करना चाहे उचित ही क्यों न हो साम्प्रदायिकता है, अराष्ट्रीयता है, अत महापाप है। आज हिन्दू विरोधी भावना ही राष्ट्रीयता का द्योतक और "सैक्युलरिज्म" का पालन समझा जा रहा है। अन्य धर्मावलम्बी मन्त्रियो का ऐसा दृष्टिकोण कभी भी नही होता। वे अपने धर्मबान्धवो को साहस देने और स्पष्ट रूप मे उचित और अनुचित सहायता करने मे कभी भी नहीं हिचकिचाते। इसका ताजा उदाहरण अहमदाबाद के दंगे के उपरान्त विधि उपमन्त्री श्री युनुस सलीम का व्यवहार है। शुद्धि आन्दोलन को जहां हिन्दुओ की जन्म मूलक जात-पात ने बढ़ने नही दिया वहां हिन्दु नेताओ के भ्रान्त "सैक्युलरिज्म" ने भी उसको शिथिल कर दिया।

आर्य समाज, जिसके सामने महर्षि ने जन्म मूलक जात पात को समाप्त करने का कार्यक्रम रखा था, उसी ने अपने आपको इस जात पात और बिरादरी की विभीषिका में ऐसा जकड़ लिया है कि उसका शुद्धि आन्दोलन समाप्त प्राय हो गया है। शुद्ध होने वाले व्यक्ति का आर्य समाज में क्या स्थान है, जबकि आर्य समाज में प्रवेश करने वाला राजपूत-राजपूत रहा, त्यागी-त्यागी बना रहा, कोमटी-लिंगायत कोमटी-लिंगायत ही रहा, मराठा, अग्रवाल और खत्री-कायस्थ वही का वही, रहा; अपनी-अपनी जन्ममूलक जाति को छोड़ नही सके, जिसको वे स्वय सिद्धान्त के विपरीत मानते हैं। परिणाम यह हुआ कि आर्य समाज ने भी शुद्ध होने वालों को पूर्णत. हजम नही किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस आर्य समाज को जन्म-मूलक जाति-पांति, सम्प्रदायों तथा मत-मतान्तरो का भेद-भाव मिटाने का कार्य सौंपा था, वही आर्य समाज उसमे बुरी तरह फस गया है। आज आर्य समाज के नेता और कर्णधार, विद्वान् तथा उपदेशक भी अपनी जन्ममूलक जाति के चिन्ह-स्वरूप नाम-खण्डों को, जो कुछ वर्ष पूर्व तक प्रयोग में नहीं आते थे, प्रयोग मे ला रहे हैं। आर्य समाजी श्री स्वामी जी महाराज के निम्न शब्दों को गम्भीरता से पढने की कृपा करें —"सब सज्जनों को श्रम उठाकर इन सम्प्रदायों को जड-मूल से उखाड़ डालना चाहिये। जो कभी उखाड डालने मे न आवे, तो अपने देश का कल्याण कभी होने का नहीं।" (शिक्षा-पत्री ध्वान्तनिवारणम्)

महर्षि के इस आदेश का पालन जन्ममूलक जात-पात की दीवारों को गिराकर रोटी-व्यवहार और बेटी-व्यवहार को प्रोत्साहित किये बिना नही हो सकता। महर्षि दयानन्द के निम्न शब्दों को आर्य समाज ही नहीं अपितु वैदिक धर्म मे विश्वास रखने वाले सभी भारतीयों को ध्यान से पढना चाहिए—"देखो। तुम्हारे सामने पाखण्ड-मत बढते जाते हैं। ईसाई मुसलमान तक होते हैं। तनिक भी तुमसे अपने घर की रक्षा, और दूसरो को मिलाना नहीं बन सकता, बने तो तब, जब तुम करना चाहो। जबलो (जब तक) वर्तमान और भविष्यत् मे उन्नतिशील नही होते, तबलों (तब तक) आर्यावर्त और अन्य देशस्थ मनुष्य की वृद्धि नही होती, चेत रखो।

(सत्यार्थप्रकाश गयारहवा समुल्लास)

धर्मपरिवर्तन के वर्तमान कुचक्र को तथा उससे उद्भूत होने वाले राजनैतिक तथा राष्ट्रीय परिणामो को ध्यान में रखकर आर्य समाज को विशेष रूप से और हिन्दू-सगठनो तथा नेताओं को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से तथा सामान्य रूप से ऐसा प्रभावशाली कार्यक्रम बनाना चाहिए कि हरिजनों, गिरिजनों और अन्य जातियों से विधर्मी होने वालों को स्वधर्म में लाया जाए, और भविष्य में धर्म परिवर्तन की रोकथाम की जाये। ●●

स्वामी दयानन्द जी का संक्षिप्त जीवन

—स्वामी रामेश्वरानंद जी गुरुकुल घरौंडा

(गतांक से आगे)

शिखरणी : न आती थी निद्रा मरण भयभारी बढ़ गयी।
न आते थे आंसू त्रिविध विध शंका बढ़ गयी।
कहा माता से भी जलवत करीं उठ गयीं।
कहा ये निर्मोही निष्ठुर-हृदयी भी कह गयी ॥२७॥

शिखरणी : सभी रोते थे मैं चुपचप खड़ा ही रह गया।
न आते थे आंसू त्रिविध भय भारी बढ़ गया॥
कहा मां ने सो जा पर शयन मेरा उड़ गया।
विचारों की आंधी चकित मन मेरा डर गया॥२८॥

आज से पहले मैंने कोई मरना न देखा था। अतएव मुझे यह भान होने लेगा कि जब माता पिता इस कन्या को न बचा सके तब मृत्यु बलवान से रक्षा करेगा क्या कोई ऐसा है जो मृत्यु से बचा सके मुझे विद्वानो ने कहा कि मृत्यु से महादेव कैलाशवासी बचा सकेगा यदि वह शिर पर हाथ रख दे।

विक्रमी १८९९ जब कि मेरी आयु का १९ वा वर्ष पूरा हो रहा था तब विद्वान धर्मात्मा एव मेरे प्रिय चाचा को भी विषूचिका रोग ने आ घेरा। उन्होंने मुझे अपने समीप बुलाया जब कि कुछ पुरुष उनकी नाडी देख रहे थे तथा उनके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था। तब तो मेरे नेत्रों से भी गंगा यमुना की धारा के समान अश्रुपात होने लगा और रोते रोते नयन सूज गये। तब मैंने सोचा कि अब मैं भी मृत्यु के मुख मे हूं जैसे मनोन्मत क्षुतक्षाम कृष्ट सिंह के मुख मे आये सद्योजात भयानक वन में हिरणी के शिशु की रक्षा कौन करेगा एव मेरे प्राणो का त्राणकर्ता कोई भी नही है। अहो दुर देव तूने जगत बना के यह मृत्यु का पिशाच किस लिए छोड दिया जो सबको खाता है।

शिखरणी : हुए चाचा रोगी जन नवज देखे हम खडे।
बही चक्षुस धारा नयन जल मेरे चल पड़े॥
लगे था ऐसा ही अब मरण मेरा शिर खडा।
बचे न कोई भी भवन कब सारा गिर पड़े॥२९॥

॥ वैराग्य समय ॥

चाचा की मृत्यु के पश्चात् मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह संसार असार है जिसमे कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसके लिए मन लगाया जाए और जीवित रहा जाये। मेरे मन मे ऐसा लगने लगा कि मैं गृह त्याग कर कही जाऊं। मित्रों से कहा कि अब मैं गृह त्याग कर जाना चाहता हूं मेरा मन अब घर मे नही लगता मुझे मृत्यु पर विजय पाने का उपाय योगाभ्यास बताया गया और मैं योग करना चाहता हूं। मेरे वैराग्य की कथा मित्रों ने मेरे माता पिता से कह दी थी कि ये तो शिव दर्शन कर अमर होना चाहता है।

शिखरणी : असारे संसारे रमण करने की कुछ नही।
मरी कन्या चाचा मरण अब मेरा सब यही॥
बनू योगाभ्यासी विजय करता है अब सही।
न मेरा जी चाहे घर पर रहूँगा अब नही॥३०॥

गृह त्याग के मेरे विचार भी मित्रों ने माता से कह दिये तब माता पिता ने सोचा कि इसका शीघ्र विवाह किया जाये। २० वर्ष की आयु होते ही मुजे माता पिता के निश्चय का ज्ञान हो गया तब मैंने मित्रो द्वारा कह दिया अभी माता पिता मेरा विवाह न करें।

शिखरणी : असारे ससारे कुछ न लगता सार मुझको।
मेरे चाचा कन्या दृढ़-तर सुवैराग्य मुझको॥
बनू योगाभ्यासी विषय मन मेरा हट गया।
करू ना मैं शादी वह समय सारा कट गया॥३१॥

विशेष : यदि माता पिता विद्याध्ययन का अवसर देते तथा विवाह के बन्धन में बांधने की शीघ्रता न करते तो मूलशकर अभी और भी कुछ दिन पैतृक प्रेम के पात्र बने रहते किन्तु माता पिता की हठधर्मी के कारण मूल शकर अब परिवार त्याग के विचार मे लग गये। अब देखो क्या होता है माता पिता की विजय होती है या मूल जी की। वि० सं० १९०० मे मैंने २० वर्ष की आयु होते ही पिता जी से यह कह दिया कि अब आप मुझे कृपा करके वेद, व्याकरण, वैद्यक तथा ज्योतिष के ग्रन्थ पढने काशी भेज दो तब माता जी ने स्पष्ट कह दिया कि हम अब तुम्हे काशी नही भेजेंगें जो पढना है यहीं पढ लो तथा जितना पढ चुके हो वो क्या थोड़ा है क्या गांव के लडके सब काशी जाते हैं। (क्रमशः)

शिवरात्रि का सन्देश

श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, विद्यामार्तण्ड, ज्वालापुर

पूजा करो प्रेम से उसकी, जो है एक महेश्वर।
उसको छोड नहीं पूजा के, योग्य देव जो शंकर॥
सर्व-व्यापक सर्व-शक्तिमय, वह सर्वज्ञ दयानिधि।
विमल हृदय में उसको ध्यावो, जाओ भव-सागर तर॥
एक देव के नाम अनेक, ब्रह्मा, विष्णु महेश।
विविध गुणो को सूचित करते, वही देव विश्वम्भर॥
निराकार है देव न उसकी, मूर्ति कभी बन सकती।
कल्पित मूर्ति बना जो पूजें, डूबें वे भवसागर॥
वह कल्याण करे नित सबका, इससे शिव कहलावे।
शान्तिमूल वह शान्ति विधाता, अत. कहावे शंकर॥
घट-घट वासी है जगदीश्वर, क्यों कैलाश निवासी ?
सर्पमाल्य डमरू सब कल्पित, ध्यावो अज अविनश्वर॥
जड की पूजा जड़ता को ही, लाती है मानस मे।
चेतन की पूजा को हिय मे, करके पावो फल वर॥
शिवरात्री सन्देश सुनो सब, जड की पूजा त्यागो।
दयानन्द ऋषि अनुगामी बन, सदा भजो जगदीश्वर॥

—०—

लेखमाला—८

"कुछ आप बीती कुछ जग बीती"

स्वामी श्रद्धानन्द

—प्रिन्सिपल कृष्णचन्द एम० ए० (त्रय), एम० ओ० एल०, शास्त्री बी० टी० सी०—११ (ए), कालका जी, नई दिल्ली

आर्य समाज में प्रारम्भिक अनुभव

—मेरा अनुमान है कि मैं जालन्धर की यात्रा से लौट कर सवा अथवा डेढ मास ही लाहौर मे रहा। क्योंकि मुझे भली भाँति स्मरण है कि ज्येष्ठ शुक्ला की निर्जला एकादशी का दिन मुझे अपनी जन्मभूमि तलवन में आया था इस सवा अथवा डेढ मास मे मैंने जो अनुभव किया। उसमें से जो कुछ मेरी स्मरण शक्ति क्रमश स्मरण कर सकती है, वह यहाँ सक्षेप से देता हूं।

—लाला साईं दास जी उस समय आर्य समाज लाहौर के सर्वेसर्वा समझे जाते वह। वे जनता मे व्याख्यान नही दिया करते थे। समाचार पत्रों में भी वह प्रकट रूप मे कुछ नही लिखते थे। उस समय तक उन्होंने एक लघुपुस्तिका 'एक आर्य' नाम से लिखी थी। जिसमें कलकत्ता के पण्डितों की ऋषि दयानन्द के विरुद्ध दी हुई सम्मति की जांच पड़ताल की थी। परन्तु आर्य समाज लाहौर के क्षेत्र से बाहर उनको कोई भी नहीं जानता था। बाहर के लोग राय मूलराज, लाला जीवन दास और भाई जवाहर सिंह से अधिक जान पहचान रखते थे। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी आर्य समाज की ओर उसके साथ समस्त पंजाब के आर्यसमाजों को, जिनका जीवन ही उस समय लाहौर आर्य समाज के आधार पर था, सारी कला को चलाने वाले लाला साईं दास जो ही थे। इस शक्ति और अधिकार को वे लोग ही जानते हैं जिनका लाला साईं दास जी से सर्पक हुआ था। जनता मे वह कभी मुख नही खोलते थे और समझा जाता था कि उनमें भाषण करने की योग्यता नही परन्तु जब उपस्थित जनता की सख्या एक से अधिक न होती, उस समय लाला साईं दास जी से बढ कर कोई ब्रह्मा दिखाई नही देता था। इतिहास के वे अवतार थे और विशेष रूप मे ईसाइयो के धार्मिक इतिहास के अतिरिक्त मुसलमानो और सिक्खो के इतिहास से भी भली भाँति विज्ञ थे। उनके सादा जीवन का वर्णन मैं पहिले कर चुका हू।

(शेष पृष्ठ ९ पर)

निस्वार्थ कार्य कर्त्ता चाहियें

श्रद्धानन्द सेवा संघ तथा स्वामी श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट को अपनी विविध सस्थाओ मे कार्य संचालन के लिये कुछ ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो इन कार्यों मे रुचि रखते हों और इन्हे सामाजिक सेवा के कार्य समझ कर अपनी योग्यता और पुरुषार्थ को ट्रस्ट और संघ के अर्पण करना चाहते हो। यदि कोई ऐसे सज्जन हों जो सेवा निवृत्त हो चुके हों और जिन पर घर बार का भार भी न हो और वानप्रस्थी के रूप में समय बिताना चाहते हों, तो उनके लिये यह बहुत अच्छा अवसर होगा। जो भाई अपने निर्वाह मात्र के लिये कुछ दक्षिणा लेना स्वीकार करें उनके लिये भी समुचित प्रबन्ध ट्रस्ट और संघ की ओर से किया जा सकता है। जो भाई निःसंकोच अपनी जरूरतें बतायेंगे। उनकी पूर्ति का भी यथायोग्य प्रबन्ध किया जायेगा।

पत्रव्यवहार निम्नलिखित निवेदक के नाम पर करने की कृपा करें।

निवेदक
नवनीत लाल महामन्त्री

(पृष्ठ ५ का शेष)

—लाला जीवनदास के विचित्र स्वभाव का ज्ञान मुझे उनसे भेंट होते ही हो गया था। आप कभी भी समालोचना करने से न चूकते थे। एक विद्यार्थी के आर्य समाज मे प्रविष्ट होने का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत हुआ। आप उठकर उच्च स्वर से प्रश्न करते हैं—"क्या इनकी आयु अठारह वर्ष है? श्री साई दास की मूछें फड़कीं" और हाथ के सकेत से बैठाना चाहा। इस पर श्री जीवनदास जी ने आकाश सिर पर उठा लिया। "मैं इस प्रकार नहीं दबूंगा। मेरा अधिकार है कि मैं पूछूं।" इस पर मन्त्री महोदय ने प्रार्थना-पत्र पढना आरम्भ किया। जिसमे आयु उन्नीस वर्ष लिखी थी। श्री जीवन-दास जी उन दिनो पजाब के फिनाइनशल कमिश्नर के कार्यालय के अनुवादक थे। आप के अनुवाद किए हुए सैकडो सर्कुलर आदि मैंने देखे हैं। आप अपने विभाग मे भी शब्दो पर "हिन्दी की चन्दी" निकालने के लिए प्रसिद्ध थे। जब सायं के समय कार्यालय से वापिस आते तो मार्ग मे अनारकली के वाद-विवादो मे सम्मिलित होते। उन दिनो मौलवी, ईसाई, ब्राह्म समाजी, आर्यसमाजी सभी वाद-विवाद सड़को के पुलो पर खडे हो कर करते थे। परन्तु आज कल की भाँति रग मे भंग नही पड़ता था। श्री जीवनदास जी के उत्तम स्वास्थ्य और स्पष्ट भाषण का उन दिनो मेरे हृदय पर बडा भारी प्रभाव तथा सम्मान स्थापित हो गया था।

—सम्भवत: उन्ही दिनो स्वर्गीय मिस्टर ह्यूम इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के लिए हलचल उत्पन्न करने के लिए लाहौर आए थे। मुझे ज्ञात हुआ था कि जिस भी शिक्षित भारतीय को वह मिलना चाहते, वहाँ से ही उन्हें निराश होना पड़ता। पता नही, किस प्रकार मिस्टर ह्यूम को विश्वास हो गया कि जो व्यक्ति भारतीयों को मिलने नही देता, वह राय मूलराज एम० ए० के रूप में है। शिक्षित समुदाय मे यह प्रसिद्ध हो रहा था कि मिस्टर ह्यूम ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि है जो भारतीयो को किसी जाल मे फसाने आया है। इस बात को तो परमात्मा के अतिरिक्त और कौन जान सकता है कि इसमे राय मूलराज जी का हाथ था वा नहीं (और इसके लिए कोई विश्वास दिलाने वाला प्रमाण नहीं है) परन्तु मिस्टर ह्यूम ने वह सदैव स्मरण रखने योग्य पत्र लाला साई दास जी को लिख मारा। जिसका स्मरण पण्डित गुरुदत्त जी ने मेरे समक्ष लाला जी को तीन वर्षों के पश्चात् कराया था। उस पत्र मे मिस्टर ह्यूम ने यह लिखा था कि उनके माननीय ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का सभासद राय मूलराज जैसा व्यक्ति कैसे हो सकता है?

—उन दिनो हम सब इकट्ठे रहने वाले साथियो के हृदय मे धर्म-प्रचार के लिए अत्यधिक उत्साह था। भाई सुन्दरदास, मैं, महाशय रामचन्द्र और मुकुन्दलाल जी सदैव किसी न किसी चौराहे पर खड़े होकर एक मास तक जनसाधारण को वैदिक धर्म का सदेश सुनाते रहे। खेद है कि छुट्टियों से वापिसी पर दूसरे कार्यों मे फँस जाने के कारण इस पवित्र कार्य के लिए वह साहस न रहा।

—इन्ही दिनो साधु आलाराम के व्याख्यानों के अतिरिक्त लाहौर नगर के मध्य "बावली साहब" मे चौधरी नवलसिंह की लावनियाँ हुईं। जिनके प्रभाव के परिणामस्वरूप कोट बूट वाले बाबुओ के अतिरिक्त दुकानदारों और आर्य जाति के सीधे सादे अशिक्षित लोगों का आकर्षण भी आर्य समाज के प्रति बढ गया था। (क्रमश)

पढ़ें और आचरण में लायें

अपने बच्चों के लिये हौआ मत बनो। जरूरत से अधिक "दबदबा" हानिकारक है। बच्चों को यह अनुभव होने दो कि "हमारे पिता हमे देखकर बड़े खुश होते हैं।"

तुम्हारे बच्चे पढ़ने लिखने में जब तुम से सहायता मागें तो इसे किसी प्रकार का अपने ऊपर बोझ न समझो। यदि सहायता दे सकते हो तो खुशी से दो, यदि नहीं दे सकते तो साफ कह दो।

प्रातः काल जल से मुख को भर कर बार बार, अनेक बार, जल से नेत्रों को बलपूर्वक छपके देने से मनुष्य तत्काल नेत्र रोगों को दूर करने में समर्थ होता है। भोजन करके, हाथों की हथेलियों को रगड़ कर आँखों के ऊपर रखने से शीघ्र ही नेत्र रोग दूर हो जाते हैं।

"गोघ्न अतिथि"

(श्रीमती तोष प्रतिभा, एम० ए०)

यह एक ऐसा वाक्यांश है जिसके अर्थ को प्रायः गलत समझा जाता है। मांसाहार के पृष्टपोषक इसका अर्थ करते है.—"ऐसा अतिथि जिसको दिये जाने वाले 'मधुपर्क' मे गो को मारकर उसके मांस को परोसा जाता था।" परन्तु यह धारणा है सर्वथा निर्मूल। यहाँ 'हन्' धातु से बने शब्दांश"……घ्न' का अर्थ 'हिंसा' परक नही अपितु 'प्राप्ति' परक है। ऐसी स्थिति मे "गोघ्न अतिथि" का अर्थ हुआ 'ऐसा मुख्य अतिथि जिसको भेंट के रूप मे गौओ का दिया जाना (प्राप्त कराया जाना) आवश्यक है।" यह सत्य है कि वैदिक काल के पश्चात् सूत्र काल मे 'गोघ्न अतिथि" के अर्थ को आख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगो ने मांसाहार परक बना लिया। यही कारण है कि "उत्तर राम चरितम्" नाटक मे महर्षि बाल्मीकि के आगमन पर उनके सत्कार मे प्रस्तुत किये जाने वाले मधुपर्क के निमित्त गोवध किये जाने का सकेत मिलता है।

सत्संग-तालिका

१२-३-७८ का

वक्ता	आर्य समाज
१ प्रो० रत्न सिंह जी	हनुमान रोड
२ पं० प्रेमचन्द जी श्रीधर	अमर कालोनी
३ स्वामी सूर्यानन्द जी	नारायण विहार
४ डा० वेद प्रकाश जी महेश्वरी	दरिया गंज
५ पं० विश्व प्रकाश जी शास्त्री	अन्धा मुगल प्रताप नगर
६ पं० प्रकाश चन्द जी वेदालंकार	जगपुरा भोगल
७ पं० सुदर्शन देव जी शास्त्री	सोहन गंज
८ प० देवेन्द्र जी आर्य	विक्रम नगर
९ श्रीमती प्रकाशवती जी बुग्गा	न्यू मोती नगर
१० प० देवराज जी वैदिक मिशनरी	गुड मन्डी
११ प० प्राणनाथ जी	आर्य पुरा
१२ कविराज बनवारीलाल जी	सराय रोहेला
१३ प० राजकुमार जी	नागल राय
१४ प० ब्रह्मप्रकाश जी	महरौली
१५ पं० विद्याव्रत जी	लक्ष्मीबाई नगर
१६ डा० नन्दलाल जी	जोर बाग
१७ प० हरिदेव जी	किदवई नगर
१८ प० सत्यभूषण जी	विनय नगर
१९ पं० मनोहर लाल जी	बसई दारा पुर
२० स्वामी ओमाश्रित जी	महावीर नगर
२१ प० अशोक कुमार जी विद्यालकार	एन० डी० एस० ई०
२२ स्वामी स्वरूपानन्द जी	एम० दोपहर ३ से-५ अशोक विहार ७।। से ९ प्रात: के० सी०—५२ ए०
२३ स्वामी भूमानन्द जी	रघुबीर नगर
२४ प० गणेश दत्त जी	लड्डू घाटी
२५ स्वामी स्वरूपानन्द जी	अशोक विहार फेज III-१० से १२ प्रात:
२६ पं० अशोक कुमार जी वेदालकार	पंजाबी बाग

आर्य समाज हौजखास, का वार्षिक चुनाव

१ प्रधान	श्री रतनलाल गुप्ता एडवोकेट
२ उप प्रधान	श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति
३ मत्री	प्रिंसपल श्री शंकरलाल पाली
४ संयुक्त मंत्री	श्री इन्द्रजीत पारस
५ प्रचार मंत्री	श्री रामधन
६ कोषाध्यक्ष	श्री प्यारेलाल पवार
७ पुस्तकाध्यक्ष	श्री बनवारी लाल गुप्ता
८ सदस्य	श्री परमानंद
९ ,,	श्री ईश्वरानंद वर्मा
१० ,,	श्रीमती देव इच्छा सिंह
११ ,,	श्रीमती श्यामप्यारी अग्रवाल
१२ ,,	श्रीमती खोसला

आर्यसमाज राजौरी गार्डन का वार्षिकोत्सव

आर्यसमाज राजौरी गार्डन, नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव १८ से २० मार्च १९७८ तक बड़ी धूम-धाम से मनाया जाएगा। आर्य जगत् के प्रसिद्ध संन्यासी महात्मा एवं विद्वान् इस अवसर पर निमन्त्रित किये गये हैं। अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित होकर इन महानुभावों के विचार सुनें और धर्म लाभ उठावें ! ११, से १६ मार्च तक वेद कथा भी होगी।

आर्य वीरदल बम्बई

आर्य समाज फोर्ट, बम्बई—१ द्वारा संचालित आर्य वीर दल का वार्षिक अधिवेशन आर्य समाज फोर्ट के मान्य, प्रधान श्री एम० के० अमीन जी की अध्यक्षता मे दिनांक १९-२-७८ रविवार को सम्पन्न हुआ, जिसमे इस वर्ष सौ आर्य वीरों को दल का सदस्य बनानेका सर्व सम्मति से निश्चय किया गया, आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियो का चयन भी किया गया।

आर्य समाज जहाँगीर पुरी

आर्य समाज जहागीर पुरी की स्थापना ५ फरवरी १९७८ को हुई। सदस्यो ने अपने नाम के साथ जाति उपजाति का प्रयोग नहीं किया। प्रवेश पत्र संस्कृत के ही काम में लाये गये। प्रत्येक सदस्य को सध्या, उपासना जाप करना अनीवार्य किया गया है। श्रीमती चन्द्रकान्ता प्रधान तथा श्री सोहनलाल मंत्री निर्वाचित हुए।

शाकाहारी सात्विक ब्राह्मण दीवानचन्द अहिंसक रिटायर्ड टीचर काल-काजी नई दिल्ली ने "मास मछली अण्डे खाना छोड दो ताकि जीव हत्या बन्द हो" आन्दोलन इस समाज मे छेड़ा है।

इस समाज ने भी देश मे बढ़ते हुए बकरे के मांसअहार के रिवाज को रोकने के प्रति आन्दोलन आरम्भ किया है। अभी एक बोर्ड घुमाया जा रहा है।

दहेज प्रथा तो बन्द है परन्तु दाज एवं वरी के साईन बोर्ड स्थान स्थान पर देखने को आते हैं। कैंब मीमो पर "दाज वरी" छपा रहता है। इसके प्रति भी लोगों का ध्यान आकृषित किया है। आर्यों से प्रार्थना है कि वह इस ओर ध्यान दे एसे बोर्ड हटवाने मे सहयोग देवें।

नेत्र चिकित्सा शिविर

डा० सराफ अस्पताल दरियागंज दिल्ली के प्रसिद्ध तथा अनुभवी नेत्र विशेषज्ञ निम्नलिखित कार्यक्रम के अनुसार आंखो के हर प्रकार के चिकित्सा तथा आपरेशन आर्य समाज कीर्ति नगर नई दिल्ली मे करेंगे :—

(१) ११-३-७८ (शनिवार) प्रात: आंखों का निरीक्षण।
(२) १२-३-७८ (रविवार) आपरेशन योग्य आखों के आपरेशन।
(३) १९-३-७८ (रविवार) हरी पट्टी देकर रोगियो को छुट्टी।

नेत्र रोगो से पीड़ित व्यक्ति लाभ उठायें।

आर्यसमाज कृष्ण नगर का निर्वाचन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सोमनाथ मरवाहा के आदेश पर आर्यसमाज कृष्ण नगर का पुन निर्वाचन सभा मत्री श्री सरदारीलाल वर्मा की अध्यक्षता मे रविवार १९-२-७८ को सम्पन्न हुआ।

इस निर्वाचन मे श्री हजारी लाल चोपडा प्रधान श्री आदित्य आर्य मन्त्री और श्री महावीर आर्य कोषाध्यक्ष, सर्व श्री मनोहर लाल व सोहन लाल उपप्रधान, सर्व श्री लक्ष्मण चन्द्र आर्य व कृष्ण लाल चोपडा उपमन्त्री, सर्व श्री प्रेम कुमार वोहरा व राजेन्द्र आर्य पुस्तकाध्यक्ष चुने गये। डा० जगन्नाथ, श्री प्रेम सागर पुन्नी, श्री नारायण दास सुनेजा, श्री देव प्रकाश व श्री धर्म सिंह पठानिया इनके अतिरिक्त अन्तरग सदस्य चुने गये।

इस प्रकार आर्य समाज के सदस्यो मे जो विवाद उठ खड़ा हुआ था वह समाप्त हो गया।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गाँधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड़, नई-दिल्ली।

ओ३म्   कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

कार्यालय दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली १   दूरभाष ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये   एक प्रति ३५ पैसे   वर्ष १   अंक २१   रविवार २ अप्रैल, १९७८   दयानन्दाब्द १५३

ब्रह्मा नगरी (रामलीला मैदान नई दिल्ली) में चहल पहल

ऐतिहासिक चतुर्वेदपारायण और स्वाहाकार

महायज्ञ का समारम्भ

२६ मार्च १९७८ को प्रात पूव निर्दिष्ट कायक्रमानुसार ब्रह्मा नगरी (रामलीला मैदान) नई दिल्ली मे महर्षि दयानन्द वेदभाष्य शताब्दी के उपलक्ष मे आयोजित चतुर्वेद पारायण एव स्वाहाकार महायज्ञ का आरम्भ हुआ। ठीक ७ बज प्रात हजारो कण्ठो से निनादित 'वैदिक धम की जय' रूपी गगन चुम्बी नाद के मध्य वेद मन्त्रो की पावन ध्वनि के साथ नवनिर्मित बृहद यज्ञकुण्ड मे अग्न्याधान किया गया। आय जगत के प्रसिद्ध विद्वान प० मदन मोहन विद्यासागर ब्रह्मा के आसन को सुशोभित कर रहे थे तथा उनके अन्य सहयोगी विद्वान प० वीरसेन जी वेदश्रमी महात्मा दयानन्द वानप्रस्थ ब्रह्मचारी सत्यप्रिय आदि आदि होता उदगाता अध्वय आदि की भूमिकायें बडी तत्परता और दक्षतापूर्वक निभा रहे थे। सवश्री सोमनाथ एडवोकेट रामगोपाल वानप्रस्थ वद्यनाथ शास्त्री रत्नचन्द सूद सरदारी लाल वर्मा आदि आदि अपनी सहधर्मचारिणियो सहित यज्ञकुण्ड के चारो ओर बिछाए गये आसनो पर बैठे यजमानो के कृत्यो का श्रद्धापूवक निवहन कर रहे थे। दशको मे अपूव उत्साह था। राजधानी की बहुत सी आय समाजों ने इस दिन अपने साप्ताहिक सत्सग स्थगित रखे। इस कारण महायज्ञ के आस पास खब धूमा धमी थी। यह कायक्रम ९ बज तक जारी रहा।

ठीक ९ बज प्रात सावदेशिक आय प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले वानप्रस्थ ध्वजमच पर उपस्थित हुए। लोग भी हजारो की सख्या मे ध्वजमच के चारो ओर एकत्रित हो खड हो गये। 'वैदिक धम की जय' के गगनभदी नाद के मध्य वानप्रस्थी जी ने ओ३म् के ध्वज को आन्दोलित किया। ध्वज तुरन्त हवा मे फराने लगा। तदनन्तर वानप्रस्थी जी ने कहा कि—आय समाज आस्तिक समुदाय है। हम प्रभु पर विश्वास रखते हैं और सृष्टि के आदि मे उसी द्वारा दिये गये वेदज्ञान के प्रचार के लिये कृतसकल्प हैं। दुनियां की कोई बाधा हमारे विश्वास को कम नही कर सकती। महर्षि दयानन्द ने ससार के उपकाराथ आय समाज की स्थापना की थी। उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आय समाज काय करता रहा है और भविष्य में करता रहेगा।

ध्वजारोहन के पश्चात महायज्ञ का सत्र पुन चाल हो गया और ६ बज साय तक निरन्तर चलता रहा। ठीक ६ बज शान्ति पाठ के पश्चात कायवाही समाप्त हुई। इस दिन १४० यजमान दम्पतियो ने यज्ञ मे भाग लिया। इनमे अधिकतर दिल्ली की आय समाजो के प्रधान तथा मन्त्री ही थे।

२७ माच १९७८ प्रात ७ बज महायज्ञ का कायक्रम आरम्भ हुआ। निम्नलिखित आय समाजो के प्रतिनिधि यजमान दम्पतियो ने यज्ञ करवाया — हनुमान रोड मन्दिर माग लडडघाटी चूना मण्डी आय नगर नबी करीम भिण्टो रोड विक्रम नगर। साय ६ बज जब शान्ति पाठ के पश्चात कायवाही समाप्त हुई तो ज्ञात हुआ कि १५० यजमान दम्पतियो ने इस दिन यज्ञ मे भाग लिया। रात को प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री सोहन लाल पथिक तथा श्री माम चन्द की भजन मण्डली के मनोहर भजन हुए। श्रोताओ ने इन्हे बहुत पसन्द किया।

२८ माच १९७८ प्रात ७ बज से आरम्भ होकर महायज्ञ निरन्तर ६ बज साय तक चलता रहा। साय ६ बज जब शान्ति पाठ के पश्चात कायवाही समाप्त हुई तो पता लगा कि १४५ यजमान दम्पतियो ने यज्ञ मे आहुति डाली है। करोल बाग और आस पास की आय समाजो के प्रतिनिधियो ने बड उत्साह का प्रदशन किया प्रात १० से १२ बज तक दूसरे पण्डाल मे वेद गोष्ठी हुई। विषय था महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषताए विशषत ऋग्वेदभाष्य की

उस दिन ब्रह्मा नगरी का रूप निखर गया था। मुख्य द्वार बनाया जा चुका था और उसे मनद्वार के नाम से पुकारा जाना आरम्भ हो गया था। यज्ञ सत्र मे बीच बीच सस्वर वेदपाठी अपने वेदपाठ की छटा दिखा दशको को विभोर कर रहे थे।

●

भोजन-शुद्धि

१ फर्रुखाबाद मे साधू नामक एक अछूत जन-समदाय रहता है वे सब घरबारी होते हैं काम-धन्धा करके निर्वाह करते हैं। उनके हाथ का बना भोजन ब्राह्मण-वैश्य आदि ग्रहण नहीं करते। एक दिन एक साधू कढी और दाल परोस कर श्रद्धा सहित स्वामी जी के पास ले आया। महाराज जी ने श्रद्धा-रूपी उस भक्तिभाव का आदर किया। वहां उपस्थित ब्राह्मणों ने कहा— स्वामी जी! आप तो 'साधू' का भोजन पाकर भ्रष्ट हो गए। आपको ऐसा करना कदापि उचित न था।

स्वामी जी ने हंसते हुए कहा—अन्न तो दो प्रकार से दूषित होता है। एक तो तब जब दूसरे को दुख देकर प्राप्त किया जाए और दूसरे तब जब कोई मलिन वस्तु उस पर अथवा उसमे पड जाये। इन लोगों का अन्न परिश्रम के पैसे का है और पवित्र है। इसलिये इसके ग्रहण करने मे दोष का लेश भी नहीं है।

२ अनूपशहर मे उमेदा नाई रहता था। वह स्वामी जी का भक्त था। एक दिन वह महाराज जी के लिए घर से भोजन लाया। महाराज ने अंगीकार किया। वहां उपस्थित २०-२५ ब्राह्मणों ने आक्षेप किया छि छि स्वामी जी! यह क्या करते हो! यह रोटी तो नाई की है महाराज ने हसते हुए कहा— नहीं यह रोटी तो गेहूं की है। इसलिए मैं इसे अवश्य खाऊंगा। (दयानन्द प्रकाश)

सम्पादक सरदारीलाल वर्मा

सहसम्पादक सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए०

वेदोपदेश

ओ३म् यथेमां वाच कल्याणी मा वदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय च (य० २६।२)

शब्दार्थ—(यथा) जैसे मैं (जनेभ्य) मनुष्यो के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याणकारी अर्थात् सब सासारिक सुख और मुक्ति के देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारो वेदो की वाणी का (आ+वदानि) उपदेश करता हू, वैसे ही (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अय्यार्य) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्री आदि (च) और (अरणाय) अति शूद्र के लिये भी [वेदो का प्रकाश] करता हू ।

प्रभु कहते है कि मैं यह कल्याणी वेदवाणी मनुष्यमात्र के लिये कहता हूँ । यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अपने पराये सभी के लिये है । प्रभु का बनाया सूर्य सबके लिये, चन्द्र सब के लिये, जल सब के लिये, पृथ्वी सब के लिये । किन्तु इन पदार्थों का उपयोग बताने वाले प्रभु का दिया ज्ञान सबके लिये नही ? अब्रह्मण्यम् ! शान्त पापम् ? जिनके लिये नही भगवान् ने उन्हे कान और ज्ञान-आधान के साधन क्यो दिये ? ऋग्वेद ३।५७।६ मे वेदवाणी को विश्वजन्या अर्थात् कल्याणीवाक् कहा है । वह सभी का हित करेगी, सभी का कल्याण करेगी । वेदवाणी प्रमति है, उत्तम ज्ञान की खान है । सुमति है, दुर्मति नही । अर्थात् वेद मे मानव समाज के उत्कर्ष के साधन वर्णित है । ऐसी कोई भी शिक्षा वेद मे नही, जिसमे मनुष्य का पतन सभव हो । ऐसे उत्तम सुमतिदाता ज्ञान का त्याग क्यो मनुष्य ने किया ? वेद है चित्र अद्भुत । इसमे ब्रह्म ज्ञान है, इसमे जीव की चर्चा है, प्रकृति का बखान है, आग का विधान है जल का भी वर्णन हैं, पृथ्वी का गान है, तो द्यौ का भी बयान है । मनुष्योपयोगी कोई भी पदार्थ ऐसा नही, जिसका वेद मे व्याख्यान न हो । ऐसे सर्वविद्यानिधान के त्याग से आज मानव समाज पीडित है । नही, नही, मानव मानव नही रहा । इसे पुन: मानव बनाने के लिये वेद को अपनाना होगा । (स्वाध्याय सदोह से उद्धृत)

आर्यसमाज से प्रथम सम्पर्क

(स्व० स्वामी वेदानन्द तीर्थ की अप्रकाशित जीवनी से)

स्कूल बन्द होने के पश्चात् दोनो भाई पिता जी से मिलने के लिये इसी भक्त के यहाँ गये । वहाँ कुछ देर ठहरे । इधर-उधर की बाते होने लगी । भक्त महोदय ने बडी घनिष्टता दिखाई । खाने के लिये कई प्रकार के मिष्ठान्न मगवाए । किन्तु कुलक्रमागत आचार मे पक्के दोनो भाईयो ने यह कह कर कि यह खाने का समय नही कुछ भी नही लिया । जब दोनों भाई छात्रावास को लौटने लगे तो पिता ने कहा—

"बेटा आज शनिवार है । मैं आज घर नही लौटूगा, यही ठहरूगा । मुझे यहाँ एक दो काम है । उन्हे निपटाने का यत्न करूगा । कल रविवार है, यहाँ सौभाग्य वश आर्य समाज है । प्रति रविवार वहाँ सत्सग लगता है । मेरी इच्छा है कल वहाँ सत्सग लाभ करूँ । कल प्रात न्हा धोकर दोनों भाई यहाँ ही आ जाना । मेरे साथ आर्य समाज मन्दिर चलना । **आर्य समाजी आस्तिक होते हैं, वेद भक्त होते हैं, आचार के ऊंचे होते हैं । उनके सम्पर्क में आने से मनुष्य ऊपर उठता है ।** तुम्हे यहाँ शिक्षाप्राप्ति के लिये पर्याप्त समय तक रहना है । बडा ही अच्छा हो यदि तुम दोनो भाई प्रति रविवार आर्य समाज के सत्संग मे जाया करो । देवता, पूजा आदि के लिये कभी देवल में मत जाना । अपना नित्य नियम अपने वासस्थान पर ही कर लिया करना । देवल के पुजारी आचार के अच्छे नही होते । भग चरस गाजे आदि बुराईयो मे लिप्त रहते है । परधनहरण की ही सोचते रहते है । उनके सम्पर्क से बच्चो मे बुरी आदते आ जाती हैं ।"

पिता जी के इन विचारो को सुनकर दोनों भाई कुछ चकित से रह गये । सबको यथायोग्य नमस्कार कर दोनो छात्रावास लौट आये ।

दूसरे दिन स्नान आदि से निवृत हो, पूजा पाठ आदि नित्य कर्म कर दोनो भाई पिता जी के पास पहुचे । श्री कृष्णमोहन ज्येष्ठानन्द चतुर्वेदी उन्हे अपने साथ आर्य समाज मन्दिर मे ले गये । हवन यज्ञ के बाद एक वयोवृद्ध व्यक्ति ने ईश्वर प्रार्थना कराई । सब श्रोतागणे दत्तचित्त हो सुनते रहे । छोटे महाराज को बडा ही आनन्द लाभ हुआ । तदनन्तर एक गायक ने जब सुरीली आवाज मे "तुम हो प्रभु चाँद मैं हूं चकोरा । तुम हो आनन्दघन मैं रस का भौरा ।" अन्तस्तल से पूरी वेदना के साथ यह गीत गाया तो एक समय बन्ध गया । सब आनन्द विभोर हो उठे । गायक ने जब सगीत बद किया तो सबकी आँखे हर्षोल्लास से डुबडुवा रही थी । पिता-पुत्रो को अपूर्व सन्तोष लाभ हुआ ।

दैव योग देखिये । उस दिन सत्सग मे प्रवचन श्री पण्डित गणपति शर्मा जी का हुआ । श्री शर्मा जी अपने समय के अद्वितीय तार्किक थे । कहते है दर्शन उन्हें कण्ठस्थ थे । उनकी वाग्मिता की चारो ओर धाक थी । भाषण इतना मधुर होता था कि श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो जाते । युक्ति एव तर्क बडे प्रबल रहते, प्रमाणो की झडी लगा देते थे । श्री शर्मा जी के प्रवचन का विषय था— "ईश्वर का सच्चा स्वरूप ।" ईश्वर निराकार है; उसकी कोई प्रतिमा नही हो सकती; वह सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सर्वाधार, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है । उसे जीवों द्वारा अपनी भक्ति किये जाने की कोई चाह नही । ईश्वर की सच्ची भक्ति उसके गुणों का चिन्तन और तदनुसार अपना आचरण बनाने और प्राणिमात्र की सेवा करने से ही हो सकती है इत्यादि बातो की शर्मा जी ने अपने व्याख्यान मे विषद चर्चा की । छोटे महाराज शर्मा जी की वाग्मिता और तार्किकता से बहुत ही प्रभावित हुए । व्याख्यान सुनने के पश्चात् उन्होंने अपने आप को आर्य समाज के बहुत ही समीप अनुभव किया ।

पाठक गण ऊपर उद्धृत सदर्भ के "छोटे महाराज" बाद में मुलतान, हरिद्वार, ऋषिकेश काशी आदि मे विद्या प्राप्त कर वेदो के प्रकाण्ड पण्डित बने और सन्यस्त हो आर्य जगत मे स्वामी वेदानन्द तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

अनुग्रह हो

—सत्यानन्द शास्त्री

महाबलवान् जगदीश्वर
हमेशा अपनी शक्ति से ।
बचाते इस जगत को हो
तुम्हीं हर एक सकती से ।१।

सदा अपने महाबल से
सभी के दुख हो हरते ।
धरा पर दुष्ट जो जन हैं
उन्हें नीचा ही हो करते ।२।

प्रभो तव रक्षा परिधि में
जो जन सुख आप आते हैं ।
सदा बे-खौफ रहते हैं
मस्त हो सुख ही पाते हैं ।३।

ये सूरज चाँद सारे लोक
पृथ्वी जल तथा, सागर ।
रचा है आप ने सबको
सभी हैं आप पै निर्भर ।४।

यह सब ससार है तेरी
प्रभु सामर्थ्य पै ठहरा ।
तेरी आज्ञा में ही स्थिर हो
बिगड़ता और है बनता ।५।

प्रभु हम पै अनुग्रह हो
तेरी विद्या को हम पायें ।
तुम्हें और तेरी दुनिया को
यथावत् जान हम जायें ।६।

(ऋ० १।५२।१२)

भूल सुधार

पाठक गण, १२ मार्च १९७८ के अक मे प्रकाशित श्री बलभद्र कुमार कुलपति गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के लेख 'उच्चतर शिक्षा का माध्यम' के पैरा ४ के अन्तिम वाक्य का अवलोकन करने का कष्ट करे । इसे निम्न प्रकार से पढा जाना चाहिए—

"विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रसार करने से बुद्धि कुशाग्र न होकर कुण्ठित ही रहती है, विद्यार्थी चाहे कितना ही मेधावी क्यो न हो ?"

सम्पादकीय

उत्साहपूर्वक मनाओ

वेद ईश्वर की वाणी है। प्रभु ने सृष्टि के आदि मे मानव जाति के हितार्थ ऋषियो के हृदय में इसे गीर्ण किया। मध्य काल मे पौराणिक परम्पराओ की धूलि से धूसरित हो यह व्यर्थप्राय हो गई थी। महर्षि दयानन्द ने आज से सौ वर्ष पूर्व पुन· अपने भाष्य से परिमार्जित कर इसे पूर्व तेज ओज और बल प्राप्त कराया। महर्षि ने यह वेदभाष्य १५ दिसम्बर १८७७ को आरम्भ किया। उस ऐतिहासिक क्षण को बीते आज सौ वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। इस गौरवमय अवसर को हृदय मे उल्लसित हो मनाना, ऋषि के गुण गाना हर आर्य का परम कर्त्तव्य है। ऐसा कर हम अपने को गौरवान्वित करेंगे। ऋषि तो स्वत गौरवमय थे, उन्हे हमारे द्वारा गौरवान्वित किये जाने की आवश्यकता नही।

इसी ऐतिहासिक अवसर को—महर्षि दयानन्द-वेदभाष्य शताब्दी को—उत्साहपूर्वक मनाने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के संरक्षण मे इन दिनो (२६ मार्च से ९ अप्रैल १९७८ तक) "अन्तर्राष्ट्रीय वेदजयन्ती समारोह" का राजधानी मे आयोजन किया गया है। इस आयोजन की पहली कड़ी चतुर्वेद पारायण एवं स्वाहाकार महायज्ञ का पिछले रविवार २६ मार्च १९७८ को ब्रह्मानगरी (रामलीला मैदान नई दिल्ली) में समारम्भ हो चुका है। यह महायज्ञ ग्यारह दिनो तक (५ अप्रैल तक) प्रात. ७ बजे से साय ६ बजे तक और उसके बाद ९ अप्रैल तक प्रात सायं जारी रहेगा। देश के कोने कोने से इस महायज्ञ मे भाग लेने के लिये यज्ञप्रेमी पर्याप्त सख्या मे पहुच चुके हैं। अगले कुछ दिनों में हज़ारों और व्यक्ति पुण्य की बहती इस गगा में डुबकी लगाने के लिये देश विदेश से पहुचने वाले हैं।

दिल्ली निवासियो, तुम भाग्यवान् हो। लोग भवसागर से पार होने के लिये तीर्थों पर जाते है। किन्तु तुम्हारे पास तो जीवित तीर्थ—भगवान् की कल्याणी वाणी वेद का सस्वर पाठ करने वाले दक्षिण हैदराबाद से आये वेद-पाठी और इस कल्याणकारिणी भवभयहारिणी वेदमाता के मर्मो के जानने और जनाने वाले अनेकों वैदिक विद्वान् अपनी वाणी रूपी गगा को बहाने के लिये और तुम्हे उसमे डुबकी लगवा तुम्हारे तीनों ताप हरने के लिये तुम्हारी नगरी मे आये है। यह अलौकिक योग है, भाग्य से ही प्राप्त होता है। तुम्हे प्राप्त हो रहा है, इसे हाथ से न जाने दो। प्रतिदिन महायज्ञ के आरम्भ होने से पहले यज्ञस्थली पहुच कर अपने मन को वेद की पावनी ऋचायें सुन, महायज्ञ मे आहुति डाल, विद्वानो के दर्शन कर और वेदगोष्ठियो मे उनके विचार सुन अपने आप को उपकृत कर लो। हम यह उद्घोष "उत्साह पूर्वक मनाओ—अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह—महर्षि दयानन्द वेदभाष्य शताब्दी के उपलक्ष्य मे" यू ही नही कर रहे। तुम्हारे लाभ और भले के लिये कर रहे हैं। इसे सुनो और सुन कर तुरन्त कर्तव्य का पालन करो।

सत्यानन्द शास्त्री

आवश्यक सूचना

आर्य जनता तथा सर्वसाधारण की जानकारी के लिये प्रख्यापित किया जाता है कि पुरानी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब जिसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत कभी सम्पूर्ण पंजाब (वर्तमान पजाब और हरियाणा), जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली राज्य थे, बहुत वर्ष हुए सार्वदेशिक सभा के आदेशानुसार, विभाजित की जा चुकी है। उसके स्थान पर आजकल इन पाँचो राज्यो मे तत्तत्प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाये पजीकृत हो कार्य कर रही हैं। इस प्रकार **दिल्ली राज्य में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का अब कोई अस्तित्व शेष नहीं रहा।** राजधानी मे आर्य समाजो का सगठित करने और वैदिक धर्म प्रचार को सुचारू रूप से चलाने का कार्यभार अब दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली निर्वहन कर रही है। जिन आर्य समाजो, आर्य स्त्री समाजो आदि को अपने यहाँ सत्सग, उत्सव और सस्कार आदि सम्पन्न कराने अथवा वैदिक धर्म प्रचार सबन्धी किसी अन्य गतिविधि के लिये किसी भी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो तो वे निस्संकोच उपर्युक्त पते पर सभा मन्त्री से पत्रव्यवहार द्वारा अथवा नं० ३१०१५० पर फोन कर संपर्क स्थापित करें। यथासंभव हर प्रकार की सहायता उन्हे अविलम्ब उपलब्ध कराई जायेगी।

सरदारी लाल वर्मा

"ज्ञान से शील विशेष"

—एक विश्लेषण-कला-विशारद की लेखनी से

यह किसी कवि का वचन है। इसमे ज्ञान से शील का प्रकर्ष दर्शाया गया है। 'ज्ञान' क्या है? और 'शील' क्या? किसी वस्तु के सबन्ध मे यथार्थ जानकारी को 'ज्ञान' कहते है। अच्छे स्वभाव को प्राय शील' कहा जाता है। किन्तु यहाँ 'शील' आचार का पर्याय वाची है और आचार भी नियमित अर्थों मे। इन्द्रियसयम ही आचार का सार है। इस सदर्भ मे 'शील' से इन्द्रियसयम ही अभिप्रेत है। उपनिषदो मे आत्मा को 'सारथी', शरीर को 'रथ', पांच ज्ञानेन्द्रियो और पांच कर्मेन्द्रियो को 'घोडे' तथा मन को प्रग्रह कह कर वर्णन किया गया है। चचल मन के नियन्त्रण से अभ्युदय और निश्रेयस सडको पर तीव्र गति वाले इन्द्रिय रूपी घोड़ों को कुमार्ग से बचा कर सुमार्ग पर चलाना ही शील' कहलाता है। ऐसा केवल इन्द्रिय सयम से ही हो सकता है। इसी कारण उपचार से इन्द्रिय-सयम को 'शील' का नाम दे दिया जाता है।

ससार यात्रा को सफलता पूर्वक निभाना सभी को अभीष्ट है। जीवन मे हमारी प्रत्येक चेष्टा इसी अभिलाषा की पूर्ति के लिये होती है। यदि चेष्टा ठीक होगी तो हम सफल होगे अन्यथा फल विपरीत निकलेगा। इसलिये मानव जीवन मे 'ज्ञान' बहुत ही आवश्यक है। किन्तु 'ज्ञान' होने पर भी व्यावहारिक रूप मे जब तक प्रयत्न न किया जाये कार्य सिद्ध नही होता। मन बडा चचल और प्रमाथी है और साथ ही इन्द्रियग्राम भी बडा वेगवान है। यही कारण है कि बुरी बात का ज्ञान रखते हुए भी हम उसमे प्रवृत्त हो जाते है। कौन नही जानता कि झूठ बोलना बुरा है! किन्तु हम मे कितने है जो झूठ से सर्वथा अलिप्त हो? अत निरा 'ज्ञान' किसी काम का नही जब तक यथार्थ अनुभव उसे कार्यान्वित करने की प्रेरणा देने वाला न हो। यही यथार्थ अनुभव सुमार्ग मे तत्परता और कुमार्ग से ग्लानि उत्पन्न कराता है। यथार्थ-अनुभव की सीमा को प्राप्त ज्ञान' ही 'शील' का पूर्वरूप है। इसीलिये कवि ने 'ज्ञान' से 'शील' को उत्तम बताया है।

कोई भी कार्य करने के लिये 'ज्ञान' होना ही चाहिये। परन्तु ज्ञानवान् अवश्य ही सत्कार्यों मे लग जायेगा ऐसा देखने मे नही आता, क्योकि 'ज्ञान' और सत्कार्य करने मे हेतुहेतुमद्भाव वर्तमान नहीं। ज्ञान' सत्कार्य मे प्रवृत्ति का साधक तो हो सकता है किन्तु साक्षात् कारण नही। साक्षात्-कारण तो कोई और ही वस्तु है। उसी वस्तु का नाम 'शील' है।

हर एक कार्य तीन प्रकार से किया जाता है, मन वचन और कर्म से। 'ज्ञान' का सम्बन्ध केवल मन से है। इसके विपरीत 'शील' मन, वचन और कर्म मे व्याप्त होता है। 'ज्ञान' एक बार मनुष्य को प्रेरित करता है। परन्तु मनुष्य की वह स्थिति जिससे बाधित होकर वह इसी ओर बढता है अर्थात् अच्छे कर्मों मे ही लगा रहता है सत्कार्यों के अभ्यास से बनती है। सच पूछो तो मनुष्य की इसी स्थिति का नाम शील' है। क्योकि शीलवान् मनुष्य सर्वदा ही सत्कार्यों मे प्रवृत्त रहता है। इसीलिए 'शील' की ज्ञान' के समुख अधिक महिमा कही करने गई है। 'ज्ञान' अलमारी मे पडा हुआ बीज है तो शील अबन्ध्य भूमि मे बोया हुआ बीज है। ज्ञान' निष्फल जा सकता है किन्तु शील' तो अवश्य ही शुभ कर्म करेगा। अधिक ज्ञानी और अल्प शीलवान् मनुष्य मन्दगति होगा, विपरीत गति भी हो सकता है। परन्तु अल्प-ज्ञानवान् पर 'शील' मे बढा चढा व्यक्ति अवश्य ही अपने सभी साथियो को अपनी ओर आकर्षित करेगा। 'ज्ञान' का सबन्ध अपनी आत्मा मे है और 'शील' का सबन्ध अपने से उतर कर ससर्ग मे आने वाले सब मनुष्यो से है। इसी कारण 'शील' को 'ज्ञान' से उत्तम माना गया है।

आओ, तनिक दूसरे पक्ष पर भी विचार करे। अज्ञानी मनुष्य सहन किया जा सकता है पर शीलरहित नही। शीलरहित न केवल आप ही बुरा है अपितु इसकी बुराई का अन्यो को भी शिकार होना पडता है।

'शील' ही मनुष्यत्व का सार है। 'शील' न हो तो मनुष्य और पशु मे कोई भेद नही। मननशील को मनुष्य कहते है। सच पूछो तो मननशीलता ही 'शील' है। बार-बार विचारो का आम्रेडन करने तथा व्यावहारिक अभ्यास से 'शील' उपजता है। शीलरहित नर इन्द्रियो का दास होता है उनका स्वामी नही। 'शील' को ही आचार कहते है। आचार की बडी महिमा गाई गई है।

महर्षि मनु अपनी स्मृति मे लिखते हैं—"आचार: परमो धर्म:" (१।१०८) अर्थात् आचार सबसे बडा धर्म है। और तो और पुराणो मे भी लिखा है—

[शेष पृष्ठ ६ पर]

स्वामी दयानन्द जी का संक्षिप्त जीवन

—स्वामी रामेश्वरानद जी गुरुकुल घरौंडा

(गताक से आगे)

शिखरणी अभी मेला जाऊँ सुन खबर मैं तो चल दिया।
मिलेगा योगी भी अमर पद पाना कर लिया॥
मेरे जीवे कैसे यह दुख सदा कर हर लिया।
बनू योगाभ्यासी अमर पद पाना कर लिया॥४१॥

शिखरणी मिला था वैरागी निकटतम वासी नगर का।
हसा वो धिक्कारा जनक जननी को दुख दिया॥
न जावेगा क्या तू गृह कुटुम छोडा किस लिए।
ठगो का ये बाना सुकुल तज धारा किस लिए॥४२॥

वह मेरे गेरवे वस्त्र देखकर प्रथम तो हसा और खेद के साथ घर से निकल आने पर धिक्कारा और पूछा कि क्या घर छोड़ दिया। मैंने स्पष्ट कह दिया कि हाँ घर छोड दिया और कार्तिकी के मेले पर सिद्धपुर जाऊँगा। यह कह कर मैं चल दिया और नीलकण्ठ महादेव के स्थान पर पहुचा जहाँ पर दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी ठहरे थे।

शिखरणी शिवाले मे जाकर ठहरकर सगी सब जहाँ।
शिवाले मे जा के सकल नित सजी रह जहाँ।
बडे थे सन्यासी प्रवचन करे थे सब जहाँ।
मिले योगी भारी वचन सब के ही सुन लिये॥४३॥

शिखरणी गया था मेले मे शिव भवन भारी मिल गया।
शिवाले मे दण्डी प्रवचन सुनाते मन मिला॥
बडे योगी वर्णी वचन सुन मेरा मन मिला।
कुटुम्बी छोडे से समय अब अच्छा मिल गया॥४४॥

दण्डी स्वामी और सत्सग मे जो कोई महात्मा विद्वान पण्डित मिला उससे मिलकर मेल मिलाप वार्तालाप व दर्शनों से लाभ उठाया तदनन्तर उस वैरागी ने जो पडोसी कोट कागडा के रास्ते मे मुझे मिला था जाकर मेरे पिता-माता को एक पत्र भेजा कि तुम्हारा लडका काषाय वस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी बना है। वह मुझे मिला था और अब कार्तिकी के मेले मे सिद्धपर गया है। पकड सको तो पकड लो।

शिखरणी उसी वैरागी ने जनक जननी को कह दिया।
मिला बेटा तेरा वसन सब गेरु कर लिया॥
गया है मेले सिद्धपुर वह जाता मिल गया।
वहाँ जाके देखो मिलन सब चिट्ठी लिख दिया॥४६॥

ऐसा सुन कर तत्काल मेरे पिता जी ने चार सिपाहियो सहित मेले में आकर मेरा पता लगाना आरम्भ किया। एक दिन उस शिवाले में जहाँ मैं उतरा था प्रात काल अकस्मात मेरे सामने पिता जी और चार सिपाही आ खडे हुए। उस समय वो ऐसे क्रोध मे भरे हुए थे कि मेरी आँख उनकी ओर न उठती थी जो भी उनके जी मैं आया कहा और मुझे धिक्कारा कि तूने सदैव के लिए हमारे कुल को कलकित कर दिया। तू ही कुल को कलक लगाने वाला हुआ है। मेरे मन मे आतक बैठ गया कि कदाचित मेरी दुर्दशा न करे। इसी कारण मैंने उठकर उनके पैर पकड लिये। मेरे पिता जी मुझ पर बडे क्रुद्ध हुये। यह वृत्त सब साथी देखें थे।

॥ **पिता पुत्र का अन्तिम मिलन** ॥

शिखरणी : पिता जी मेरे वो सुन खबर पाते चल दिये।
सिपाही थे चारों सब तरफ मेला फिर लिये॥
जहाँ मैं होता था इक दिन वहाँ आकर मिले।
वही ऊषा बेला कुपित मन बोले दुख दिये॥४७॥

मैंने पिता जी से प्रार्थना की कि धूर्त लोगो के बहकाने से घर से चला गया था और आने ही वाला था। अत्यंत दुःख पाया अच्छा हुआ आप आ गए अब आप शान्त हो और मेरे अपराधों को क्षमा करें। मैं आप के साथ चलने मे ही प्रसन्न हू। इस पर भी उनकी क्रोधाग्नि शान्त न हुई और झपट कर मेरे कुर्ते की धज्जिया उडा दीं तथा फाड दिया तुम्बा छीन कर बडे जोर से धरती पर दे मारा। एव सैकडों प्रकार के दुर्वचन कहे और दूसरे श्वेत वस्त्र पहना कर अपने साथ ले गये।

शिखरणी : पिता जी को मैंने दुखित मन ऐसा कह दिया।
कदाचित ये मेरी दुरगत करें ये सह लिया॥
हुए क्रोधी भारी चरण तब मैंने शिर दिया।
कलकी तैने तो कलुषित हमारा कुल किया॥४८॥

आप जहाँ ठहरे थे वहाँ भी बहुत कठोर-कठोर बात कह कर बोले कि अपनी माता की हत्या करना चाहता है। मैंने कहा कि अब मैं चलूगा तब भी मेरे साथ सिपाही कर दिये और कह दिया कि छिन भर भी इस निर्मोही को पृथक मत छोड़ो और इस पर रात्रि मैं भी पहरा रखो। परन्तु मैं भागने का उपाय सोचता था तथा अपने निश्चय में वैसा ही दृढ था कि जैसे पिता जी अपने प्रयत्न मे संलग्न थे। (क्रमश)

लेखमाला (१०)

"कुछ आप बीती कुछ जग बीती"

स्वामी श्रद्धानन्द

(लेखक—प्रिन्सिपल कृष्णचन्द्र एम० ए० (त्रय), एम० ओ० एल०, शास्त्री, बी० टी० सी—११ (ए), कालका जी, नई दिल्ली)

—निर्जला एकादशी का दिन मेरी धार्मिक परीक्षा का प्रथम अवसर था। पिता जी मेरे साथ अपने सभी पुत्रों की अपेक्षा अधिक स्नेह करते थे। उनको अपने विश्वासों पर पूर्णरूपेण निश्चय था और उनके वह दृढ़ प्रचारक भी थे। जहाँ वे अपने इष्टदेव की पूजा मे कभी प्रमाद न करते थे। वहाँ पञ्जाब के बेसिरे हिन्दुओं को मुसलमानो की कबरो की पूजा से रोकने के लिए भी तत्पर रहते थे। तलवन ग्राम मे सैकडों व्यक्तियों को उन्होने कबरो की पूजा से रोक कर ठाकुर जी के मन्दिर का सेवक बना दिया था। ऐसे पिता ने सकल्प के समय बुलाने के लिए मुझे आदमी भेजा। मैं जानता था कि आज मेरी परीक्षा का दिन है। अत इससे बचने के लिए अपनी बैठक मे पुस्तक खोल कर पढने बैठ गया था। मैंने समझा था कि आँखे बन्द कर लेने से बला टल जाएगी। परन्तु पिता जी का सिपाही सिरपर आ पहुचा। मैं उठ कर पिता जी के पास जाने को उद्यत न हुआ। उस समय का दृश्य मुझे भूल नहीं सकता। घर मे दूसरी मन्जिल पर लम्बा दालान है। उसमे सामने बडे आसन पर पिता जी बैठे हुए है और उनके सम्मुख एक लम्बी पक्ति मे सुराहियाँ भी पडी हैं। सबके सामने मेरे भाई भतीजे बैठे है। जो सकल्प कर चुके हैं। और केवल मात्र एक सुराही के सामने वाला आसन मेरे लिए रिक्त पडा है। मैं सामने पहुँच कर खडा हो गया और निम्नलिखित वार्तालाप हुआ—

पिता जी—आओ मुन्शीराम ! तुम कहाँ थे ? हमने तुम्हारी प्रतीक्षा करके सबसे सकल्प पढा दिया है। तुम भी सकल्प पढ लो। तब मैं भी सकल्प करके निवृत्त हूंगा।

—मैं पिता जी को स्पष्ट रूप से कहने मे डरता था। इसलिए मैंने पहले निम्न उत्तर दिया—

"पिता जी ! सकल्प का सम्बन्ध तो हृदय के साथ है। जब आप ने सकल्प किया है तो आप का दान है। जिसे चाहे, दें। इसीलिए मैंने आना आवश्यक नही समझा था।'

—पिता जी को मेरे आर्य समाजी बनने के समाचार प्राप्त हो चुके थे। पहिले तो उन्हे कुछ प्रसन्नता सी हुई थी। क्योंकि उन्हें केवल इतना ही पता लगा था कि मैं नास्तिक से आस्तिक बन गया हूं। परन्तु जब जालन्धर से मेरे तथा श्री देवराज जी के व्याख्यानो का समाचार उन्हे प्राप्त हुआ तो उन्होने श्री देवराज जी के पिता राय सालिगराम जी महाराज को लिखा था कि हम दोनो को अपने देवी देवताओ की निन्दा करना बन्द कर देना चाहिए। रुग्णावस्था मे वह इन समस्त बातो को भूल गए थे। परन्तु आज समस्त पुराने सस्कार जागृत हो पडे और पिता जी ने मेरे उत्तर मे कहा—"क्या मेरी सम्पत्ति तुम्हारी नहीं ? फिर इसमे से दान करने का अधिकार तुम्हें क्यो नहीं ? और क्या हृदय से सकल्प को बाहर निकालना पाप है ? तुम ठीक कारण क्यों नहीं बताते ? इतना कह कर पिता जी ने सीधा आक्रमण किया। क्या तुम एकादशी और ब्राह्मण-पूजा पर विश्वास नहीं रखते ? क्या बात है ?"

—इस स्पष्ट प्रश्न पर मुझे कोई निकलने के लिए स्थान न रहा और मैंने कहा—"ब्राह्मणपन पर तो मुझे पूर्ण विश्वास है परन्तु जिन्हें आप दान

[शेष पृष्ठ ६ पर]

जब ऋषि दयानन्द आये

(तात्कालिक भारत की दुर्दशा का वर्णन)

—श्री बलभद्र कुमार, कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हिन्दुस्तान की समस्या बडी गम्भीर है। यह एक महान् देश है, परन्तु यहाँ के वासियो ने देश की महानता से पूरा लाभ नही उठाया। बकील एक अर्थशास्त्री के, भारत अमीर देश है, परन्तु यहाँ के लोग गरीब हैं। सम्पन्न घराने में गरीब कैसे? यही भारत की पहेली और आज के दिन की एक ही समस्या है। गरीबी से दूसरी समस्याएँ खड़ी होती हैं। गरीबी से ही आपस की नीच दर्जे की होड शुरू होती है। गरीबी से नैतिक पतन होता है, भ्रष्टाचार का बोल-बाला होता है 'कुर्सीदौड शुरू होती है; हर एक व्यक्ति, हर एक परिवार सहकारिता, सहयोग और सहप्रेम के रास्ते को छोड अपना उल्लू सीधा करने को अग्रसर होता है। आखिर पेट तो भरना हुआ? "बुभुक्षित किं न करोति पापम्?" इसी से गुटबन्दी होती है। साम्प्रदायिक, प्रादेशिक एवं भाषासम्बन्धी झगडे खडे होते हैं। देशविभाजन के आन्दोलन चलते हैं। देश की सैनिक एव सुरक्षा शक्ति का ह्रास होता है। तब ही तो विदेशी शक्तियाँ देश को ललचाई हुई निगाहो से देखती हैं। गरीबी सभी कमजोरियों की जड है। अत गरीबी से सुलझना, गरीबी से छुटकारा पाना आज की पीढी का एकमात्र कर्तव्य है, एकमात्र धर्म है।

स्वराज्य की लडाई के पीछे स्वतन्त्रता प्राप्ति का ध्येय तो था ही। किसी भी देश के लिये, किसी दूसरे देश का गुलाम होना उसके आत्मसम्मान पर आघात तो है ही, लेकिन इससे अन्य कई कुपरिणाम निकलते हैं। परतंत्र देश का आर्थिक शोषण होता है। उसकी जनता की उन्नति नहीं होती। उसका व्यक्तित्व घटता है, दृष्टिकोण अवनत होते है। सामाजिक कुरीतियाँ और अन्य बुराईयाँ पलती है। परावलम्बन से एक प्रकार का पक्षपात जड पकडता है।

इसीलिये तो गत शताब्दियो मे राजा राममोहन राय और ऋषि दयानन्द आदि नेताओ ने पुनर्जागरण के आन्दोलन चलाये। यह उन्ही के आन्दोलनो का परिणाम था कि देश मे जागृति और आत्मसम्मान की लहर जोर पकड पाई। अंग्रेजों के अत्याचार और विशेषकर डलहौजी की देशी राज्यो को हड़प करने की नीति के फलस्वरूप पिछली शताब्दी के वर्ष सत्तावन मे, देश मे, बडे जोर का राजनैतिक झक्कड आया जिससे कम्पनी बहादुर के राज्य की नीव हिल गई। इस महान यज्ञ मे देश की प्राय सभी जातियो के वीरो ने आत्म बलिदान की आहुति दी। हजारो लोगों ने अपना सर्वस्व बलिदान किया। लेकिन अंग्रेजी सैन्य का संचालन अधिक सुगठित था और उनको कतिपय देशी सरदारो की सहायता भी उपलब्ध थी। इस कारण देश का यह महान यज्ञ तात्कालिक रूप से असफल रहा। हाँ, इतना फर्क जरूर हुआ कि देश के राज्य की बागडोर "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" के हाथो से निकल कर ब्रिटिश सम्राट के हाथो मे आ गई। लेकिन भारत का शोषण बदस्तूर जारी रहा। भारत को निहत्था करने के लिये अंग्रेज ने यहाँ "असलहा एक्ट" लागू किया जिसके अनुसार हर एक व्यक्ति को बंदूक आदि हथियार रखने के लिये लायसेंस लेना लाजमी हो गया। लायसेंस देने मे, सरकार ने कठोर नीति अपनाई। जाने पहचाने राजभक्तो एव सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त और किसी को भी हथियार नहीं दिये जाते थे। इससे देश की जनता मे भय और डर का वातावरण बनना शुरू हुआ। साधारण व्यक्ति अपनी रक्षा के लिये आत्म निर्भर न होकर जैसे कैसे अपना गुजर करने लगे। बदमाश लोग तो कही न कही से अपने लिये हथियारो का प्रबन्ध कर ही लेते हैं। मुश्किल शरीफ आदमियों को होती है। और बदमाश यह जानते हुए कि शरीफों के पास हथियार तो होंगे ही नहीं, उन पर हमला करने की जुरअत कर पाते हैं। फिर यह तो स्वाभाविक ही है कि जिसके पास हथियार होंगे और विशेषकर आजकल के गगन भेदी नाद करने वाले हथियार, उसका हौसला बुलन्द होगा। हथियार वास्तव में शक्ति प्रदान करता है, भौतिक एवं मानसिक। "असलहा एक्ट" के निफाज से भारत के बच्चो मे एक प्रकार से परावलम्बन की प्रवृत्ति और पकड़ने लगी।

फिर देश मे सदियों से कुरीतियाँ घर कर रही थीं। देश का सामाजिक वातावरण बड़ा संकुचित था। उस देश में जहाँ सदियों पहले ऋषियो ने पृथ्वी के आकार, नक्षत्रों की गतिविधियाँ, आकाश के विस्तार आदि के बारे में ऐसी जानकारी प्राप्त कर ली थी जो आज के योरुपीय विद्वान भी सत्य मानते हैं। पण्डितों ने काले पानी पार जाने पर निषेध लगा दिया—उस देश मे जहाँ के पूर्वजो ने अपनी सस्कृति की छापन केवल जावा सुमात्रा, इण्डोनेशिया आदि पूर्व के देशो मे लगाई, वरन् जिसकी सस्कृति से पश्चिम मे मैकेले भी अछूता न रह सका—काले पानी पार जाने के अपराध में जाति-च्युत कर दिया जाने लगा। ऐसे सकुचित वृत्ति वाले समाज मे किसी की भी उन्नति क्यो कर होती? समाज को अपना ढाचा स्थिर रखने के लिये कई अन्य प्रकार की कुरीतियो की शरण लेनी पड़ी। बाल-विवाह का न जाने कैसे रिवाज पडा? शायद स्थिरता के अभाव से लोगों ने सोचा कि लडकियों की जिम्मेवारी से जितना जल्दी सुबुकदोश हो जावो अच्छा है। शायद इसलिये कि औसत आयु कम हो जाने से लोगो की इच्छा रहती है कि अपने जीते जी बच्चो का विवाह हो जाये। कुछ भी हो, बच्चो के विवाह करने की प्रथा ही बन गई। फलस्वरूप बच्चो के बच्चे पैदा होने लगे। लोगो का स्वास्थ्य गिरने लगा। उस देश मे जहाँ यदा-कदा साध्वी सतियाँ स्वेच्छा से अपने पतियो के साथ चिता की शरण लेती थी। यह भी रिवाज पड गया कि विधवा स्त्रियों को पति के साथ जलने पर मजबूर किया जाये। कितनी अमानुषिक यह प्रथा थी इसकी आज तो केवल कल्पना ही की जा सकती है। उस देश मे जहाँ केवल एक ब्रह्म की उपासना का मन्त्र पढाया गया था, धर्म के नाम पर ठेकेदारी का रिवाज पड गया। महन्तो ने गद्दियाँ बना ली और तरह-तरह के ढकोंसले और प्रपच चला कर जन-साधारण की कमजोरियो का लाभ उठाने लगे। कबरों और मूर्तियो की पूजा होने लगी। उनसे मुरादे मागी जाने लगी। हर प्रकार की मुरादें। बच्चे, लडके, कारोबार मे सफलता, नौकरी मे तरक्की, दुश्मन पर विजय, मुहब्बत मे कामयाबी, बीमारी का इलाज, झाड-फूक, तावीज यन्त्र, टोने इन सब पर जनसाधारण का ऐसा विश्वास बैठा कि आज का विज्ञान-वृत्ति का मनुष्य इस पर हैरान होकर रह जाता है। यह सब उस देश मे हुआ जहाँ ऋषियो ने शताब्दियो पहले उद्यम और पुरुषार्थ का यह गुर पढाया था—

"उद्यमेन ही सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा"

अर्थात् 'सब काम उद्यम से ही सिद्ध होते हैं, न कि मनोरथो से; सोये हुए शेर के मुख मे मृग स्वत ही नही चले जाते"।

चूंकि समाज विकासोमुख न रहा, इसलिये जैसे कैसे ढाचा बरकरार रखने की प्रवृत्तियाँ बलवती होती गई। नये रास्ते, नई बाते, नये तरीके असह्य हो गये। वर्णाश्रम व्यवस्था ने भी अवैज्ञानिक रूप धारण कर लिया। द्विज लोग जन्म के आधार पर अपनी सत्ता कायम रखने की कोशिश मे रहे। ब्राह्मण-पुत्र चाहे चाण्डाल का ही काम क्यो न करे वह ब्राह्मणत्व के अधिकार मागता। चाण्डाल चाहे ब्रह्मनिष्ठ ही क्यो न हो, समाज उसे दुत्कारता। क्षात्र धर्म तो केवल गृहयुद्ध और आपसी ईर्ष्या द्वेष और मार-काट तक ही सीमित रह गया। जहाँ वर्णाश्रम, व्यवस्था का अभिप्राय समाज के सगठन को शक्तिशाली करना था, वहाँ अब वह केवल झूठी मान मर्यादा को स्थिर रखने का और आपसी वैरभाव और नफरत बढाने का साधन मात्र रह गया। समाज का एक बडा भारी तबका अस्पृश्य कहलाने लगा। कई प्रदेशों मे तो वह न केवल अस्पृश्य ही थे बल्कि यदि उनका साया भी किसी जन्मजात ब्राह्मण पर पड जाता तो हाहाकार मच जाता। बाद मे जैसे अंग्रेजों ने भी किया, ऐसे लोगो के लिये कई सडको, कई राजपथो पर प्रवेश निषेध कर दिया गया।

ऐसी थी भारत वर्ष की दुर्दशा जब स्वामी दयानन्द हिमालय पर्वत की चोटियो पर योगियो की तलाश मे पर्यटन कर रहे थे। कहते है ऋषिवर उस समय तक पूर्णरूपेण योगारूढ हो चुके थे—चौबीस घण्टे योगसमाधि मे रहने का सामर्थ्य उन्हे प्राप्त हो चुका था। जीवन मुक्त इस दिव्यात्मा ने उस समय एक रम्य पर्वतीय स्थान पर खडे होकर सामने व्योम मे देखा तो प्रकृति का सौन्दर्य इतना मनमोहना मालूम हुआ कि वह आत्म विभोर हो गये। आत्ममग्न हुए उस दशा मे उन्हे ऐसा भान हुआ कि पहाड़ की चोटी पर से कूद कर जीवन समाप्त कर देना ठीक होगा। तब तुरन्त ही उन्हे देश की अधोगति का विचार आया। उन्होने "इच्छामरण" का विचार त्याग मानव जाति के उद्धार का सकल्प किया। एक कवि ने इस परिवर्तन के अनन्तर ऋषि जीवन का इन पक्तियो मे वर्णन किया है—

"कोह हिमालय की चोटी से जब ऋषि दयानन्द आये।
जो देखा तो भारत उजडा पाया, तब वेदों को पढ के स्वामी ने
नाद बजाया"।।

[शेष पृष्ठ ३ का]

"आचारहीन न पुनन्ति वेदा" अर्थात् आचारहीन (शीलहीन) मनुष्य को वेदपाठ भी पवित्र नहीं कर सकता। वेद का शब्दार्थ 'ज्ञान' है। ईश्वरोक्त होने से यह ससार मे सबसे उत्तम ज्ञान है। 'वेद ज्ञान भी आचाररहित (शीलरहित) मनुष्य को पवित्र नहीं कर सकता" तो फिर अन्य 'ज्ञान' भला क्या कर सकेगे ? अत 'शील' परमावश्यक वस्तु है। इसका अभाव मनुष्य की मृत्यु के समान है। महर्षि मनु का उपरोक्त वाक्य स्पष्ट अक्षरो मे 'शील' के समुख 'ज्ञान' की निस्सारता का बखान कर रहा है।

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष मे 'ज्ञान' की अपेक्षा 'शील' पर अधिक बल दिया जाता रहा है। स्वाध्याय 'ज्ञान'—उपार्जन का साधन है और ब्रह्मचर्य पालन से 'शील' उपजता है। ब्रह्मचर्य का परिगणन यमो (योग के प्रथम अग) मे और स्वाध्याय का नियमो (योग के द्वितीय अग) मे किया गया है। यही कारण है कि हमारे शास्त्रो मे दोनो पर ही आचरण करने का आदेश दिया है। केवल नियमो के अभ्यास के सबन्ध मे लिखा है कि यह व्यर्थ है ("न बुधा: केवलान् नियमान् पालयन्ति")। इस शास्त्रोपदेश के मूल मे भी यह विचार कार्य कर रहा है कि 'ज्ञान ते शील विशेषा।"

किसी भी दृष्टि से देखे शील' ही का पलडा भारी रहेगा। रामायण की प्राचीनतम गाथा उच्च स्वर से यही सुना रही है। रावण बडा विद्वान् था। कहते है अपने समय का वह अद्वितीय पण्डित था। कई एक तो उसे वेदवक्ता मानते है। इतने 'ज्ञान' के होते हुए भी शीलरहित होने के कारण वासनावश होकर उसने जानकी का हरण किया जो उसके सर्वनाश का कारण बना। इसके विपरीत राम वनवास मे सर्वथा निस्सहाय, लक्ष्मण के अतिरिक्त कोई साथी नहीं, केवल ईश्वर ही सहारा है, पर आत्मविश्वास उसमे कूट-कूट कर भरा है। हो भी क्यो न ? धर्मपत्नी साथ रहते हुए चौदह वर्ष तक दृढ ब्रह्मचर्य भी तो उसी ने पालन किया है। शीलसम्पत्ति और चारित्र्यबल का धनी असहाय होता हुआ भी वन मे अपने सहायक उत्पन्न कर लेता है। अन्तत वह ही हुआ जो होना था। शीलसम्पन्न राम प्रकाण्ड ज्ञानी रावण को उसके किये के लिये दण्ड देता है और लका भस्म कर दी जाती है।

अग्रेजी मे 'शील' को 'Character' कहते है। कैरेक्टर की कितनी महत्ता है यह निम्नलिखित अगल-उक्ति से स्पष्ट विदित हो जाता है—'When wealth is lost nothing is lost, when health is lost something is lost, when character is lost all is lost. अर्थात् "जब दौलत नष्ट हो जाये, परवाह मत करो, तुम्हारा कुछ नही बिगडा। जब-स्वास्थ्य नष्ट हो जाये, तनिक ध्यान दो, यह अभाव अखरेगा। किन्तु जब 'शील' चला गया तो सच मुच बहुत ही बुरा हुआ, इतना बुरा मानो कि सर्वनाश ही हो गया, अब बचाव संभव नहीं।

आवश्यक सूचना

श्री धर्म देव चक्रवर्ती जिनकी कवितायें और लेख 'आर्य सन्देश' मे प्रकाशित होते रहते है की पूज्या माता जी का गत २१ मार्च १९७८ को देहान्त हो गया। माता जी की आयु लग भग सौ वर्ष की थी। उन्होने अपने जीवन के ५० वर्ष अमृतसर और दिल्ली मे आर्य समाजो, महिला सुधार सभाओ तथा अन्य सामाजिक सस्थाओ का प्रचार एव प्रसार करने मे लगाये। माडल बस्ती दिल्ली मे आर्य स्त्री समाज की स्थापना माता जी द्वारा ही की गई थी। इस सबन्ध मे अन्तिम हवन यज्ञ तथा श्रद्धाजलि सभा ३१ मार्च को ५ बजे साय आर्य समाज मन्दिर माडल बस्ती दिल्ली मे होगी।

[शेष पृष्ठ ४ का]

देना चाहते है, वे मेरी दृष्टि मे ब्राह्मण नही है और एकादशी के दिन मे भी मैं कोई विशेषता नहीं समझता।" मेरा इतना कहना था कि पिता जी आश्चर्यचकित होकर मेरी ओर देखने लगे। मैंने आँखे नीची कर ली। एक क्षण के पश्चात् पिताजी ने दीर्घ श्वास लिया और कहा—"मैंने बडी आशा सजोकर तुम्हे बडी सरकारी नौकरी से हटाकर वकालत की ओर डाला था। मुझे तुमसे बडी सेवा की आशा थी। क्या इस सब का फल मुझे यही मिलना था ? अच्छा जाओ"। मैं चुपचाप नीचे उतर गया और सारा दिन विचार सागर मे डूबा रहा।

—दो तीन दिन तो मैं पिता जी के पास जाने से घबराता रहा और वह मुझे बुलाने से टलते रहे। परन्तु उनके हृदय मे मेरे लिए गहरा स्नेह था। एक दिन मुझे स्वय बुला कर अपने किसी अग्रेज मित्र को पत्र लिखाने लगे और धीरे-धीरे निर्जला एकादशी के दिन का दृश्य मेरी दृष्टि से ओझल हो गया। (क्रमश)

गायन प्रतियोगिता

रविवार, १६ अप्रैल १९७८ को २ बजे दोपहर बाद, आर्य समाज दीवान हाल मे, आर्य युवक परिषद के तत्वावधान मे एक सभा का आयोजन किया जा रहा है। इस सभा मे परिषद् द्वारा संचालित, सत्यार्थप्रकाश परीक्षाओ मे, गत वर्ष के उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को, ला० कर्मचन्द्र जी वकील अपने कर कमलो से प्रमाण पत्र और पारितोषिक वितरित करेगे। तदनन्तर बच्चों की गायन प्रतियोगिता होगी जिसके अध्यक्ष ला० सूर्यदेव जी होगे। प्रत्येक बच्चे को ५ मिनट का समय दिया जायेगा जिसमे उसे कोई गीत धार्मिक, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक विषय पर गाना होगा। विजेता बच्चो को इनाम तथा सभी गायक बच्चो को उत्साहवर्द्धनार्थ वैदिक साहित्य की पुस्तकों के भेंट दिये जायेगे।

शिमला मे शताब्दी समारोह

आर्य जनता को यह जानकर हर्ष होगा कि हिमाचल प्रदेश की सभी आर्य समाजे मिलकर ११ मई से १४ मई १९७८ तक शिमला नगर मे आर्य समाज की स्थापना का शताब्दी समारोह बड़े उत्साह से सज-धज-पूर्वक मनाने का आयोजन कर रही है। इस विज्ञप्ति द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश के मन्त्री श्री सत्यप्रकाश जी सब आर्य भाईयो को इस समारोह मे अधिक से अधिक सख्या मे शामिल होने का निमन्त्रण देते है। समारोह मे शामिल होने वाले महानुभावो का ठहरने और भोजन का प्रबन्ध समारोह समिति की ओर से निःशुल्क किया जायेगा। जो आर्य भाई इस समारोह मे शामिल होने का इरादा रखते हो उन्हे ११ अप्रैल से पहले पहले अपने आने की सूचना आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचलप्रदेश के कार्यालय को जो कि आर्य समाज लोअर बाजार शिमला मे स्थित है भेज देनी चाहिये।

कीर्ति नगर में सेवा कार्य

आर्य समाज कीर्ति नगर द्वारा आयोजित "नेत्र चिकित्सा शिविर" का समापन समारोह २० मार्च १९७८ को बडी धूम-धाम से श्री मदनलाल खुराना कार्यकारी पार्षद दिल्ली प्रशासन की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ। मार्शल इण्डस्ट्रीज के श्री राम स्वरूप जी कथूरिया समारोह के मुख्य अतिथि थे। सब ने आर्य समाज के कार्यों की मुक्त कण्ठ से सराहना की और जनता ने भी दिल खोल कर आर्य समाज को दान दिया। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री सरदारीलाल वर्मा ने भी जो कि इस अवसर पर आये हुए थे आर्य समाज कीर्ति नगर के उत्साही कार्यकर्त्ताओ की सेवा कार्य के लिये सराहना करते हुए उन्हें शुभ कामनाये भेंट की। विसर्जित होने से पूर्व समारोह ने पिछले दिनों दिल्ली मे भयानक तूफान से मारे गये व्यक्तियो के प्रति सहानुभूति प्रकट की और एकत्रित हुए धन मे से पीडितो की सहायता के लिये प्रधान मन्त्री कोश मे २५०१ रुपये की राशि भेजने की घोषणा की। अन्त मे "वैदिक धर्म की जय" के गगन चुम्बी घोषो के मध्य सभा विसर्जित हुई।

टंकारा में ऋषि मेला

महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्म स्थली टकारा मे गत ६ तथा ७ मार्च, १९७८ को ऋषिबोधोत्सव के पुण्य अवसर पर इस वर्ष भी भव्य ऋषि मेले का आयोजन किया गया। बोधोत्सव से एक सप्ताह पूर्व वहाँ पर एक विशाल यज्ञ कराया गया। जिसकी पूर्णाहुति ७ मार्च, १९७८ को प्रात १० बजे सम्पन्न हुई। यज्ञसम्बन्धी समस्त कार्यक्रम उपदेशक विद्यालय के आचार्य श्री सत्यदेव जी की सरक्षता मे सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर टकारा मे उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि प्रदेशो के हजारो आर्य नर-नारियो ने उपस्थित होकर ऋषि के प्रति अपनी भाव-भीनी श्रद्धाजलि अर्पित की। दिल्ली के प्रसिद्ध समाज सेवी श्री राजेश्वर जी आहूजा ने ध्वजारोहण किया। तदनन्तर एक भव्य शोभा यात्रा टकारा के बाजारो तथा निकटवर्ती ग्रामो मे से होती हुई निकाली गई।

बोधोत्सव के दिन रात्रि के ८ बजे से १२ बजे तक महात्मा आर्य भिक्षु जी की अध्यक्षता मे एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमे आचार्य शकरदेव जी, आचार्य सत्यदेव जी, श्री आनन्द प्रिय जी, श्रीमती सौराज-रानी जी, श्री सडाराम जी महता, श्री गन्धर्वसेन जी खोसला, श्री रामचन्द्र जी आर्य आदि वैदिक विद्वानों ने स्वामी जी-महाराज के प्रति अपने उद्गार व्यक्त किये। इस अवसर पर ट्रस्ट की ओर से अपील किये जाने पर २५००० रु० की धनराशि एकत्रित हुई। इसके अतिरिक्त १५ हजार रुपये के वायदों की भी घोषणा की गई। ऋषि मेला अत्यन्त सफल रहा।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार

की औषधियां सेवन करें

शाखा कार्यालय: ६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली–६ फोन नं० २६१४३८

दिल्ली के स्थानीय विक्रेता :—

(१) मैं० इन्द्रप्रस्थ आयुर्वेदिक स्टोर, ३७७ चांदनी चौक दिल्ली। (२) मैं० ओम् आयुर्वेदिक एण्ड जनरल स्टोर, सुभाष बाजार, कोटला मुबारकपुर नई दिल्ली। (३) मैं० गोपाल कृष्ण भजनामल चड्ढा, मेन बाजार पहाड़ गंज, नई दिल्ली। (४) मैं० शर्मा आयुर्वेदिक फार्मेसी, गडोदिया रोड आनन्द पर्वत, नई दिल्ली। (५) मैं० प्रभात कैमिकल कं०, गली, खारी बावली दिल्ली। (६) मैं० ईश्वरदास किशनलाल, मेन बाजार मोती नगर, नई दिल्ली। (७) श्री वैद्य भीमसेन शास्त्री, ५३७ लाजपतराय मार्किट दिल्ली। (८) दि सुपर बाजार, कनाट सर्कस, नई दिल्ली। (९) श्री वैद्य मदनलाल ११ ए शंकर मार्किट दिल्ली। (१०) मै० दि कुमार एण्ड कम्पनी, ३५४७, कुतुबरोड, दिल्ली-

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

साप्ताहिक

नई दिल्ली

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ दूरभाष . ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक २३ रविवार १६ अप्रैल, १९७८ दयानन्दाब्द १५३

वेदोपदेश

ओ३म् द्वा सुपर्णा सहयुजा सखाया समानं वृक्षपरिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥
(ऋ० १।१६४।२०)

शब्दार्थ—(द्वा) दो (सुपर्णा) सुनहरी परो वाले पक्षी (सहयुजा) साथ मिले जुले (सखाया) मित्र, (समानम्) एक ही (वृक्षम्) वृक्ष पर (परिषस्वजाते) साथ साथ हैं। (तयो) उन दोनों मे (अन्य) एक (पिप्पलम्) फल को (स्वादु अत्ति) स्वादवाला जान कर खाता है, (अन्य) दूसरा (अनशनन्) न खाता हुआ (अभि चाकशीति) केवल देखता है।

दृष्ट-अदृष्ट जगद्रूपी पहेली का हल आर्य लोग सदा वैदिक त्रैतवाद (ईश्वर, जीव और प्रकृति की सत्ता मे विश्वास) का सहारा लेकर करते आये हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र आर्यों के इस विश्वास को स्पष्ट रूप मे ससार के सामने उजागर करता है। 'दोनो' अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा **'सुपर्ण'** हैं यानी ज्ञानवान् है। दोनो ही "**सखाया**" हैं अर्थात् परस्पर मित्र है और दोनो ही "सहयुजा" है अर्थात् समानधर्मी हैं यानी सत् और चित् इनका समान धर्म हैं। सत् का अर्थ है सदा रहने वाले और चित् का अर्थ है सदा चेतन। चेतन से यहाँ अभिप्राय है बुरे और भले मे विभेद की सामर्थ्य रखने वाले। समान वृक्ष अर्थात् ससार (कार्यरूप प्रकृति) से दोनो का सम्पर्क है। किन्तु इन दोनो मे जीवात्मा अल्पज्ञ होने के कारण ससाररूपी वृक्ष के फल को स्वादिष्ट समझ भोगता रहता है और इसमे रमण करता रहता है तथा इसी कारण फसा रहता है। किन्तु परमात्मा को जो सर्वव्यापक और आनन्दरूप है भोग और रमण करने की आवश्यकता नही। वह भोगो को भोगने वाले जीवो के कृत्यो का साक्षी बना रहता है। जीवात्मा और परमात्मा यद्यपि दोनो आपस मे मित्र है, किन्तु जीवात्मा अपनी अल्पज्ञता के कारण परमात्मा के साथ अपनी मित्रता का पूरा लाभ नही उठा पाता। वह जगद्रूप वृक्ष के फलो के स्वादुपन मे आसक्त हो जाता है और इन्हे भोगकर सासारिक सुख दुःख और आवागमन के चक्र मे फसा रहता है। किन्तु ज्ञानी जीव जो यथार्थता को पा लेते है परमात्मा से सच्ची सख्यता का नाता जोडते है। वे "स्वादु पिप्पल' चुन्ध्या देने वाली प्रकृति की चकाचौध मे न फसकर तुरीयावस्था की ओर बढते है। या तो अपने प्रयत्नो मे यही सफल होकर जीवनमुक्त हो जाते है अन्यथा कवि के शब्दो मे "तन त्याग करे भवसागर को" के अनुरूप मरकर अमृततत्व (परब्रह्म) को प्राप्त हो जाते है।

प्रेरक प्रसग

शत शत प्रणाम

सन् १९४३ की बात है। एतहादी बर्लिन को तहस-नहस करने पर तुले हुए थे। अनगिनत बमवर्षक हर रात अपने अडडो से उडान भर घातक बमो के रूप मे हज़ारो मन विस्फोटक अन्धा-धुन्ध बर्लिन पर उढेल देते थे। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त जर्मन कानूनदान प्रो० जोजेफ बर्बर भी—एतहादी बमवर्षको की 'रेड' मे एक रात फंस गये। खतरे का 'अलारम' सुन आत्म-रक्षा के लिये वह तुरन्त भूमिगत रक्षागृह मे चले गये। दैवयोग से बम

बोना सो काटना

—कविराज बनवारी लाल "शादाँ" मानिकपुरा नई दिल्ली

आज तुम जो वो रहे हो, काटना होगा वही।
जो किया जाने अजाने, भोगना होगा वही ॥

हाथ से काटे लगाकर, आम कैसे खावेगा।
कर्म जो कुछ है किया, फल भी वही तो पायेगा ॥

खोदता है जो गढे, तू दूमरो के वास्ते।
एक दिन खतरा बनेंगे, आप तेरे रास्ते ॥

गरज अपनी के लिये तू मत किसी का कर बुरा।
याद रख होता नतीजा, है बुराई का बुरा ॥

जो भलाई बन न पडती हो किसी की आप से।
बेगुनाहो को सताने के बचो तुम पाप से ॥

दोष रहते आप मे तो कुछ न कर सकते यहाँ।
शुद्ध होता वस्त्र कोई मैल के द्वारा कहाँ ॥

भूल अपनी व्यक्ति जो, स्वीकार करते हर्ष मे।
वे सुखी हो अन्त मे, अपने बढे उत्कर्ष से ॥

अवगुण निकालो बीन कर गुण भरो सब यत्न मे।
यह वदन रूपी भवन शोभित बने गुण रत्न मे ॥

दुर्गुणो की बात अपने, खुद निरख सकते नही।
आँख मे सुरमा लगा खुद देख हो सकते कही ॥

पड कडी आलोचना मत शत्रु हमको जानिये।
बिन पिये कडवी दवा, नही रोग जाता जानिये ॥

लो समझ कर्त्तय 'शादा" की यही है प्रार्थना।
सग नेकी जायेगी बस साथ जाये स्वार्थ ना ॥

※※

इस रक्षागृह के एन मुह पर गिरा। रक्षागृह म इकठ्ठे हुए लोगो मे भगदड मच गई। प्रो० बर्बर भी डर के मारे इधर उधर भागने लगे। जहाँ बम गिरा था उस स्थान के पास ही एक जर्मन युवती खडी थी। वह भागी नहीं वही ठहरी रही। इस लडकी की निर्भीकता को देख सब लोग आश्चर्य-चकित थे। ज्यो ही 'आल सेफ" का घग्घ वजा प्रो० बर्बर सीधे उस लडकी के पास पहुचे और उससे वार्तालाप करने लगे।

'बेटी बडी देर से यहाँ खडी हो क्या तुम्हे घर नही जाना ?"

लडकी ने प्रो० बर्बर की ओर देखा और कहा — महोदय नही।"

"क्यो नही ?"

'लोगो की चाल ढाल देख रही हू।"

"क्या बम गिरने से तुम्हे डर नही लगा ?"

"अणमात्र भी नही लगा।"

आश्चर्यचकित प्रो० बर्बर ने पूछा 'क्यो ?"

लडकी ने शान्त भाव से उत्तर दिया **महाशय, मैंने गीता पढी है। मृत्यु और जीवन मेरे लिये एक समान हैं।"**

यह उत्तर सुन प्रो० जोजेफ बर्बर के रौंगटे खडे हो गये। उसी क्षण मे वह गीता ही नही समस्त भारतीय मान्यताओ के भक्त बन गये। स्मरण रहे प्रो० जोजेफ बर्बर कोई साधारण व्यक्ति न थे। वह अपने विषय के इतने बडे विशेषज्ञ थे कि जमर्न फ्युरर हर हिटलर भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून की पेचीदगियो के सम्बन्ध मे उनसे परामर्श लिया करता था।

योगिराज कृष्ण तुम्हें शत शत प्रणाम। पाँच हजार वर्ष पूर्व कार्पण्य को प्राप्त सखा पार्थ को दिया गया तुम्हारा उपदेश हज़ारो लाखो भक्तो को आज भी मृत्यु के भयानक भय मे अनायास ही ऊपर उठा देता है। (अरुणाभ)

सम्पादक—सरदारीलाल वर्मा, सहसम्पादक—सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए०

वेद निर्भ्रान्ति हैं

—एस० एन० तल्वाड एम० ए०

मानव भ्रान्तियो का पुतला है। मानवोपयोगी ऋग्-यजु-साम-अथर्वात्मिक अपने ज्ञान को जब परम पिता परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अगिरा इन चार ऋषियो (मानवो) के हृदय मे गीर्ण किया तो सभव है कि इन (ऋषियो) द्वारा ईश्वरीय ज्ञान को (उसके शब्दो को, शब्दार्थो को, शब्दार्थ सबन्धो को और शब्दानुपूर्वी को) समझने अथवा समझकर उसे अन्य ब्रह्मा आदि ऋषियो तक पहुचाने मे कोई स्खलन हो गया हो। सभव है इन ऋषियो से अन्य मानव सन्ततियों तक पहुंचते पहुचते वेदरूपी ईश्वरीय ज्ञान मे कोई उलट फेर, हेर फेर अथवा फेर-बदल हो गया हो। यदि ऐसी सभावना हो सकती है तो वेद की निर्भ्रान्तिता और स्वत प्रामाणिकता का दम भरना दम्भ है।

ऐसी आशका करना भ्रममात्र है। यह प्रश्न आज ही नही आदि काल से, सृष्टि के आरम्भ से—इसी कल्प मे ही नही, पूर्वकल्पो मे भी—उठता चला आ रहा है और इसका समाधान भी होता चला आ रहा है। देखिये वेद ने स्वय इस शाश्वत तथ्य का इस प्रकार वर्णन किया है—

'सक्तुमिव तितउना पुनन्तु यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥"

(ऋ० १०।७१।२)

अर्थात् 'सृष्टि के आदि मे जिस समय उन धीरो (अग्नि, वायु आदित्य अगिरा ऋषियो) ने अपने हृदय मे गीर्ण (प्रकाशित) हुई उस वेदवाणी को मन मे मनन कर के उच्चारण किया, उस समय वे बडे ही सावधान थे—उनकी तत्परता उस समय ऐसी थी—मानों चालनी से सत्तू छान रहे हो।" जिस प्रकार चालनी के चलाये जाने पर केवल सत्तू ही नीचे आते है अन्य बुस आदि नही तद्वत् उन ऋषियो के मुख से उस समय प्रभुप्रेरित वाणी ही निकली, तदतिरिक्त और कुछ भी नही।

प्रश्न उठता है कि "इसमे क्या प्रमाण है कि उस ससय उन ऋषियो के मुख से प्रभु प्रेरित वाणी ही निकली तदतिरिक्त और कुछ भी नही ?"

उत्तर मे वेद स्वय कहता है "वे सखा (प्रभु के मित्र=अग्नि, वायु, आदित्य, अगिरा ऋषि) सख्यता के नियमो को (प्रभु की वाणी मे अपनी वाणी को न मिलाने के नियमो को) भली प्रकार जानते थे"। इस कारण उन ऋषियो ने अपने हृदयो मे प्रकाशित प्रभु की वाणी मे मिलावट होने नही दी। दूसरा कारण प्रभु की वाणी मे मिलावट न होने का वेद के शब्दो मे यह है कि "उस समय इन ऋषियो के मुख पर (वाणी मे) प्रभु प्रेरणा से कल्याणमयी लक्ष्मी अधितिष्ठित थी।" ऐसा होने पर भला वे ऋषि प्रभुवाणी मे उलट फेर आदि होने देने की अभद्रता कैसे कर सकते थे।

यही कारण है कि वेदो का पूरी तरह से अवगाहन कर लेने के पश्चात् कणाद मुनि वैशेषिक दर्शन (६।१) मे लिखते हैं—"**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे**" अर्थात् "वेदो मे बुद्धि (तर्क) के विरुद्ध कोई भी बात नही है।"

महर्षि कपिल ने साख्य दर्शन (५।५१) मे "निजशक्त्यभिव्यक्ते स्वत प्रामाण्यम्" यह कह कर वेदो को ससार के साहित्य मे सबसे ऊँचा दर्जा प्रदान किया है। इस सूत्र का आशय यह है कि—"परमेश्वर की निजी (स्वाभाविक) शक्ति (विद्या) द्वारा प्रकट होने के कारण **वेद स्वत प्रमाण** है।' सृष्टि के आदि मे मानवो के हितार्थ (मानव-कल्याण-अकल्याण का बोध कराने के लिये) प्रभु द्वारा अग्नि, वायु, आदित्य, अगिरा ऋषियो के मन मे जो ज्ञान आविर्भूत किया गया, ये ऋषि तो उसमे केवल निमित्त मात्र थे। वस्तुत इस कर्म (क्रिया=ईश्वरीय ज्ञान की आविर्भूति) के स्वतन्त्र कर्त्ता तो सर्वशक्तिमान् प्रभु आप ही है। सर्वशक्तिमान् प्रभु के कार्यो मे भ्रान्ति कैसे हो सकती है ?

इसीलिये तो निरुक्तकार यास्क मुनि ने लिखा है—"पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसपत्तिर्मन्त्रो वेदे" (निरुक्त १।२) अर्थात् '**पुरुष की विद्या के अनित्य होने से वेद ही सम्पूर्ण कर्मों का बोधक है।**"

देखिये, महर्षि वेद व्यास ने भी महाभारत (शान्तिपर्व अध्याय २३२, श्लोक २४) मे इसी आशय को ध्वनित किया है—'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयभुवा। आदौ वेदमयी दिव्या यत सर्वा प्रवृत्तय।" अर्थात् 'सृष्टि के आदि मे स्वयभू परमात्मा ने वेद रूपी ऐसी दिव्यवाणी का प्रादुर्भाव किया, **जो नित्य है तथा जिससे ससार की सारी प्रवृत्तियां चलती है।**"

वेद अमृत का सिन्धू !

—कवि कस्तूर चन्द "घनसार" कविकुटीर पीपाड शहर राजस्थान

(१)

वेद सुधा-सिन्धू भरा, पीते न अभागी वही,
प्यासा रहे युग-युग, प्यासा ही रहायगा !
छिलर मे भूल रहा, छिलर मानुष कृत,
मनोरथ पाथ साथ पक मे फसायगा ! !
भिन्न-भिन्न भावना ही रही है विशेष बात,
वेद-ज्ञान भूल नर-जीवन गमायगा !
अरे नर ! वेद सुधा, पीते न समय को खोते,
'घनसार' बार-बार, कह समझायगा ! !

(२)

वेद का विशद ज्ञान-भूल कर रहे रीते,
पिता की अमृत बानी, जानी न अज्ञान से !
पिता सुख हेतु प्रिय पुत्रो को बताया ज्ञान,
अनुकूल चले तब मुक्ति होती ज्ञान से ! !
ससार मे शान्ति होवे, वेद-ज्ञान गह तब,
यज्ञ-कर्म करे सब वेद मन्त्र गान से ! !
यदि चहे 'घनसार' जीवन सफल निज,
वेद-विधि चले तब, टले दुख खान से ! !

(३)

वेद मे न भेद लिखा, मानव-मानव एक,
भिन्न-भिन्न भाव वाले रीति को भुलाई है !
तब से रहे है दूर, दूर-दूर गये सब,
पास न बिठाये कोई, ऊँचता जनाई है ! !
ईश्वर के नियम को, छोड कर भूले सब,
मानवता तजी मन्द-दानता-पाई है ! !
देव दयानन्द स्वामी, दिखाया आदर्श रूप,
भिन्नता मिटाई सद् एकता बताई है ! !

(४)

ईश्वर की बानी सद्, वेद-विद्या जान नर,
भूलिये न यदि चहे, परम कल्याण को !
वेद का आदेश यही, मुक्त करे है यज,
समान व्यवहार करे, छोड जन त्राण को ! !
वेदानुकूल चले करे कर्म वेदविधि,
पिता को न भूले, माने वेदो के प्रमाण को !
भने "घनसार" कवि, वेद है जीवन प्राण !
वेद मानवमात्र आधार एक प्राण को ! !

—०—

इसी विचार को इस सर्ग के आदिविधिकर्त्ता मनु महाराज ने भी निम्न शब्दो मे दोहराया है—

"चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा पृथक्। भूत भव्य भविष्य च सर्व वेदात् प्रसिध्यति" (मनुस्मृति १२।९७) अर्थात् "चारो वर्ण, तीनों लोक, चारो आश्रम तथा भूत वर्तमान और भविष्य की सब व्यवस्थाए **वेद से ही संसार में प्रचलित होती हैं।**"

और भी देखिये। मनु महाराज तो वेद को सब ज्ञानो का स्रोत मानते है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के १०० वे श्लोक मे आप लिखते हैं—'स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो ही स" अर्थात् ये सब धर्म (नियम) वेद मे प्रतिपादित किये गये हैं क्योकि **वेद सर्वज्ञानमय (सब ज्ञानों का प्रभव-स्थान) है।**"

ब्रह्मसूत्रो के अपने-भाष्य मे "शास्त्रयोनित्वात्" (वेदान्तदर्शन १।१।३) की व्याख्या करते हुए शकराचार्य वेद के सबन्ध मे लिखते है—

ऋग्वेदादे शास्त्रस्य अनेकविद्यास्थानोपबृहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म। न हीदृशस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यत सभवोऽस्ति।" अर्थात् ऋग्वेदादि जो चारो वेद हैं, वे अनेक विद्याओ से युक्त हैं, **सूर्य के समान सब सत्य विद्याओं का प्रकाश करने वाले हैं।** उनका बनाने वाला सर्वज्ञादि गुणो से युक्त ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई नही हो सकता।"

वेदो को निर्भ्रान्त ज्ञान की खान और स्वत. प्रमाण मानने वाले विद्वानों, महापुरुषो और युगकर्त्ताओं की इतनी लम्बी और अविश्रृंखल परम्परा की अवहेलना करके कौन है. जो पूर्वपक्षियो के अनर्गल वितण्डावाद मे विश्वास करने को तैयार होगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के तीसरे नियम मे ठीक ही कहा है—"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

सम्पादकीय

दयानन्द वेदभाष्य शताब्दी

महर्षि दयानन्द वेदभाष्य शताब्दी के उपलक्ष में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय जयन्ती समारोह ६ से ९ अप्रैल तक बड़ी धूमधाम से राजधानी में सम्पन्न हुआ। विविध सम्मेलनों, वेदगोष्ठियों और व्याख्यानों में यद्यपि उपस्थिति संतोषजनक ही रही। किन्तु ६ अप्रैल रात का खुला अधिवेशन तथा ९ अप्रैल मध्याह्नोत्तर का समापन समारोह इस लिहाज से बड़े सफल रहे। ९ अप्रैल प्रातः एक सौ एक कुण्डों के महायज्ञ की पूर्णाहुति के समय उत्साह श्रद्धा और आस्था का समुद्र उमड़ आया। वह दृश्य सचमुच देखने योग्य था।

वेदभाष्य शताब्दी का यही स्पष्ट संदेश है कि हतोत्साह होने का कोई कारण नहीं। आर्य जनता में पर्याप्त आत्मविश्वास, पुरुषार्थ और त्याग की भावना विद्यमान है। किसी भी सत्कार्य के लिये यदि ठीक समय पर उस का आवाहन किया जाये तो वह कोई भी कसर उठा नहीं रखेगी। आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं के लिए वह सर्वदा जोश होश और आर्थिक साधनों का अक्षय निधि सिद्ध होगी।

वेदभाष्य शताब्दी का मुख्य उद्देश्य था लोगों का ध्यान वेदस्वाध्याय की ओर आकृष्ट करना। वेदगोष्ठियों ने इस ओर जो सम्भव था सो किया। ऐसी गोष्ठियाँ स्थान स्थान पर आयोजित की जानी चाहिये जिनमें जहाँ जनता में वेद के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण किया जाये वहां भारत सरकार से माँग की जाये कि भारत के विविध विश्वविद्यालयों में वेद को पढ़ाने के लिए महर्षिभाष्य को पाठ्यक्रम का भाग बनाया जाये जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह में प्रस्ताव पास कर माग की गई है (विस्तृत प्रस्ताव अगले सप्ताह प्रकाशित होंगे)। आज के व्यस्त संसार में जहां किसी के पास भी समय नहीं, यदि समय है तो धन नहीं और यदि दोनों है तो समझ (रुचि नहीं, वेद विद्या की सूक्ष्म बारीकियों पर मगजपच्ची करना हर एक का काम नहीं। यह काम कतिपय थोड़े से विद्वानों का ही है। उनके लिये हर सम्भव सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिये। अन्यथा वेद विद्या के प्रचार और प्रसार के लिये भरसक प्रयास जो आज की दुनिया में सर्वथा अनाकर्षक दिखाई देता है, किन्तु राष्ट्र को जीवित रखने और समुन्नत करने के लिये बहुत ही आवश्यक है, कौन करेगा ?

अन्तिम बात जिस की ओर आर्य जनता का ध्यान इस ऐतिहासिक अवसर पर आकृष्ट कराया जाना जरूरी है यह है कि ऋषि वेदभाष्य का विवेचनात्मक टिप्पणियों से सुसज्जित एक Critical edition तैयार करवा प्रकाशित कराया जाना चाहिए। महर्षि को निर्वाण प्राप्त हुए सौ वर्ष होने को हैं। आज तक उनके 'वेदार्थ' की कदर हम आर्यसमाजी ही करते आये हैं। किन्तु अब अन्य भी करने लगे हैं। अतः एतद्विषयक सम्पूर्ण सामग्री संसार भर के विद्वानों को सुलभ करा दी जानी चाहिए। यदि ऐसा किया जा सका तो दयानन्द की यह दिव्य धरोहर भावी सन्ततियों के लिये सुरक्षित हो जायेगी। आज महर्षि के वेद भाष्य के हिन्दी संस्करणों की तो बाढ़ सी आ रही है। किन्तु महर्षि का संस्कृत वेद भाष्य पढ़ने पढ़ाने वालों को सुलभ नहीं। महर्षि के वेद भाष्य के संस्कृत भाग का Critical edition प्रकाशित किया जाना आज वक्त की जरूरत है। क्या आर्य समाज इस ओर ध्यान देगा ?

सत्यानन्द शास्त्री

विदेशी मिशनरियों की गतिविधियां

भारत सरकार ने विदेशी ईसाई मिशनरियों को खुला छोड़ रखा है। अब समय आ गया है कि उनकी संख्या सीमित कर दी जाये। आखिर ३७३२ रजिस्टर्ड विदेशी ईसाई मिशनरियों की इस देश में क्या आवश्यकता है। यह कहना कि भारतीय ईसाई इस देश में ईसाईयत के प्रचार के काम को सम्भाल नहीं सकते, भारत के एक मुख्य तबके को खुलमखुल्ला मानहानि करना है और इस देश के वासियों की राष्ट्रीय भावना को ठेस पहुंचाना है। यदि विदेशी ईसाई मिशनरियों की मनमानियों को इस समय न रोका गया तो भावी सन्ततियां निस्सन्देह हमें कोसेंगी। ये मिशनरी अपनी गतिविधियां यदि ईसाईयत के प्रचार तक ही सीमित रखें तो हमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु होता यह है कि ईसाईयत के प्रचार के नाम पर ये मिशनरी देश के गरीब तत्त्वों, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों आदि आदि के कतिपय सदस्यों को लोभ देकर वरगला लेते हैं और उनका इस देश में इस देश ही के विरुद्ध रोष फैलाने के निमित्त प्रयोग करते हैं।

कुछ वर्ष पहले की बात है। अमरीकी कांग्रेस और वहां के समाचार पत्रों ने इन मिशनरियों के सम्बन्ध में चौंका देने वाले उद्घाटन किये थे कि—किस प्रकार ये संसार भर के देशों में दिखाने को तो ईसाईयत का प्रचार करते हैं किन्तु वस्तुतः करते हैं गुप्तचरी "सी० आई० ए०" जैसी गुप्तचर एजेंसियों के लिये। केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय का कहना है कि इन मिशनरियों को भारत में अपनी गतिविधियों के लिये लगभग ५० करोड़ रुपया वार्षिक बाहर के मुल्कों से आता है। इतने विदेशी विनिमय का विदेशियों द्वारा इस देश में अनियमित रूप में व्यय किया जाना स्वयमेव एक भारी खतरा है। केन्द्रीय सरकार को इस विषय में सतर्क रहना चाहिए।

(सत्यानन्द शास्त्री)

सुराज्य की प्रेरणा देने वाला

—श्री बलभद्र कुमार, कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

महर्षि दयानन्द का कार्यकाल १८६६ से लेकर १८८३ तक का था। उनका जन्म १८२४ में हुआ। १८६० में उनकी गुरु विरजानन्द से मुलाकात हुई। गुरु विरजानन्द ने उनको वैदिक सभ्यता, वैदिक साहित्य और भारत के पुराने गौरव से अवगत कराया और उन्हीं के कहने पर गुरु-दक्षिणा के रूप में उन्होंने भारत एवं विश्व में वैदिक धर्म का प्रचार करने का सकल्प लिया। १८६७ में स्वामी दयानन्द ने हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर पाखण्ड खण्डिनी पताका लहराई और अपना कार्यक्रम जनता एवं पंडित लोगों के सम्मुख रखा। १८६९ में काशी नरेश के सभापतित्व में उनका काशी के पण्डितसमुदाय के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी वेदों को प्रमाण मानते थे। नाम के लिये तो सारा ब्राह्मण-समुदाय भी वेदों को प्रमाण मानता था। परन्तु अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये जहाँ कहीं से भी प्रमाण लेकर उसको वेदवाक्य का नाम देने की प्रथा जोरों से प्रचलित थी। स्वामी जी विद्वानों को यही चैलेंज दिया करते थे कि अपने मन के समर्थन में वेदवाक्य पेश करो। उनको भली प्रकार ज्ञात था कि मूर्तिपूजा के फलस्वरूप लोगों में कितनी अकर्मण्यता आ गई है और इसके कितने भयंकर परिणाम हो रहे है। सोमनाथ के मन्दिर पर हमले के समय पुजारियों का भगवान् की मूर्ति से सहायता मांगना नपुंसकता के अतिरिक्त और किस बात का द्योतक था ?

भगवान् भी उसी की मदद करते है जो अपनी मदद आप करता है। भगवान् उसी की सहायता करते है जिसमें कर्म और ज्ञान का सुन्दर सामंजस्य होता है। भगवत्प्राप्ति एवं जीवन में सफलता प्राप्त करने की पहली सीढ़ी कर्म है, दूसरी ज्ञान, तीसरी भक्ति। स्वामी जी ने जब देश में कर्मण्यता का अभाव पाया तो सबसे पहले उसी प्रथा पर चोट की जिसके कारण अकर्मण्यता फलती-फूलती है अर्थात् आत्मविश्वास एवं सुकृत्य छोड़कर 'पत्थर की मूर्तियों, कबरों, तीर्थों की पूजा।" उनके ईश्वर विश्वास में देश का प्यार कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह निराकार ब्रह्म से केवल यही मांगते थे कि उनका देश हरा-भरा हो, यहाँ के वासी तेजस्वी और शक्तिशाली हों।

अच्छे विचार, अच्छे कर्म के लिये आवश्यक होते है। इसी लिये वह वेद मन्त्रों का उच्चारण एवं गान आत्मा के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक मानते थे। सामवेद के शब्दों में —

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे। देवो ह्यसि नो दृशे।
(सा० १-१-१०)

अर्थात् हे ज्योतिर्मय अग्नि ! हम तेरे पास आते है। तू हमें शक्ति दे ताकि हम ऐसे धार्मिक एवं परोपकार के कृत्य कर सकें जिनके कारण सब लोग सुरक्षित रहें। हे अग्निदेव, तेरी ही ज्योति में हम सब कुछ देखने और समझने की शक्ति पाते हैं।" ईश्वर विश्वास से आत्मविश्वास पैदा होता है। तभी तो अथर्ववेद में कहा है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्। (अथर्ववेद ७-५०-८)

'दायें हाथ में पुरुषार्थ और बायें हाथ में विजय लेकर मैं पृथ्वी को जीत् और सब शक्तियों पर विजय पाता हुआ धन और स्वर्ण प्राप्त करूं।"

साहित्यकार अपने देश और काल का प्रतिबिम्ब होता है। स्वामी जी का कार्यकाल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन काल के समगामी था। 'भारत दुर्दशा" आदि नाटकों में भारतेन्दु ने तत्कालीन भारत की दुर्दशा एवं कमजोरियों का सही चित्रण किया है। उस समय के भारत की धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों का वर्णन करते हुये भारतेन्दु ने कहा है —

"विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचारयो।
रोके बिलायत गमन कूप मण्डूक बनायो
औरन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो।"

भारतेन्दु क्रान्तिकारी तो नहीं थे लेकिन सजग आत्मा सदा समाज और देश के प्रहरी के तौर पर काम करती है। उन्होंने लिखा— अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।" अर्थात् 'देश का धन अंग्रेज निचोड़-निचोड़ कर बाहर ले जा रहा था। देश में काल पर काल पड़ते थे ! करों की भरमार थी। सज्जन लोग दुखी थे।

ऐसे समय में ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव निश्चित ही देश के लिये एक वरदान था। वह जहाँ जनसाधारण में प्रचार करते थे वहाँ उनकी मान्यता थी कि देश के स्वाभाविक नेता राजे महाराजे धनी मानी विद्वान लोग यदि आत्मसम्मान और संगठन का रास्ता पकड़ते है तो देश की नय्या न केवल डूबने से बच सकती है अपितु शानदार तरीके से चल सकती है। इसीलिये उन्होंने जहाँ आर्यसमाज की स्थापना की वहाँ वह राजाओं महाराजाओं से विमुख नहीं हुए और उनकी राजधानियों में जा जाकर उनसे सम्पर्क बढ़ाते रहे एवं उन्हें सुराज्य के लिये प्रेरित करते रहे।"

ओ३म् ध्वज

("अन्तर्राष्ट्रीय वेद जयन्ती समारोह" के अवसर पर ओ३म्-ध्वजा फहराते समय स्वामी धर्मानन्द सरस्वती जी महाराज का आवाहन)

ओ३म् परमेश्वर का सर्वोत्तम निज नाम है। वेदो, ब्राह्मणो, उपनिषदो, योगदर्शनादियो मे सर्वत्र इसकी महिमा का गान करते हुए इसके जप का विधान किया गया है। "ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत स्मर" (यजु० ४०, १६) इस मन्त्र मे कर्मशील जीव को आदेश दिया गया है कि तू सदा ओ३म्-पद-वाच्य परमेश्वर का स्मरण कर, भक्ति की प्राप्ति के लिए उसका स्मरण कर और अपने किये कर्मो का प्रतिदिन स्मरण कर ताकि उसमे सुधार किया जा सके। ओ३म् की ध्वनि अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयहारिणी है। मनुष्य मात्र को एकता के सूत्र मे बाधने का सर्वोत्तम साधन सबको ओ३म् का भक्त और सच्चा उपासक बनाना है। जब सब मनुष्य वेद भगवान् के परमपावन शब्दो मे यह प्रार्थना करने लगेगे कि—

"त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ।
अधाते सुम्नमीमहे" ॥ ऋग्वेद ८-६८-११।

अर्थात् "हे सर्वाधार परमेश्वर ! तू ही निश्चय से सबका पिता और तू ही कल्याणमयी, मगलमयी माता है। अत हम तुमसे सुख और शान्ति के लिए प्रार्थना करते है। तब सर्वत्र वैर विरोध का अन्त हो जायेगा और शान्ति के साम्राज्य की स्थापना हो जायेगी। जब सब मानव मात्र, नही-नही प्राणिमात्र का परमेश्वर ही एक पिता और मगलमयी माता है और इसलिए सब परस्पर भाई भाई है तब उनमे वैर विरोध ईर्ष्या द्वेष कैसे रह सकता है।

ओ३म् के स्मरण और चिन्तन से जातिभेद, अस्पृश्यता, प्रजातिवाद रग-विद्वेष इत्यादि सब सकुचित भावनाओ की समाप्ति हो जाती है। परमात्मा जैसे हम मनुष्यो का पिता और मगलमयी माता है वैसे ही सब पशु-पक्षियो का भी वही पिता माता है। तब उन प्राणियो पर क्रूरता करने और उनको मार कर उनके मांस से अपने आप को तृप्त करने की निन्दनीय चेष्टा हम कैसे कर सकते है ? करुणासागर मगलमय भगवान ने अपार कृपा करके मानव सृष्टि के प्रारम्भ मे जो पवित्र वेदो का ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य और अगिरा इन चार ऋषियो के पवित्र अन्त करण मे मानवमात्र के कल्याणार्थ दिया उसमे स्पष्ट शब्दो मे बताया गया है कि सब मनुष्य भाई भाई हैं। उनमे जन्मादि के कारण कोई बडा व छोटा नही है। इस बात को सदा मन मे रखकर काम करने से ही मनुष्य सौभाग्य के लिए वृद्धि को प्राप्त होते है। सर्वशक्तिमान सब परमाणु आदि को मिलाने वाला परमेश्वर सबका पिता और पृथ्वी जो सब मनुष्यो के लिए विविध पदार्थो को देकर उन्हे प्रसन्न करने वाली है और इस प्रकार प्रत्येक दिन को उत्तम दिन बनाने वाली है सबकी माता है। सारे ससार के लोगो मे परस्पर प्रेम उत्पन्न करने और सगठन को दृढ करने वाला इससे उत्तम सदेश और क्या हो सकता है। ओ३म् की ध्वजा वेदमत्रो के द्वारा इसी प्रेम, परस्पर हार्दिक सहयोग और सगठन का सदेश देती है। आर्यो इस ओ३म् की पवित्र ध्वजा के नीचे जाकर सब एक हो जाओ, आपस के सब विरोधो को भूल जाओ, ईर्ष्या द्वेष का अन्त कर दो और प्रेम से सबको गले लगाना सीखो। वेद भगवान् तुम्हे पुकार-पुकार कर कह रहे है कि—

"स गच्छध्व स वदध्व' ऋग्वेद के इस अन्तिम सूक्त के मन्त्रो मे वेद की शिक्षाओ के सागर को गागर मे भर दिया है। परमपावनी श्रुति इन मन्त्रो के द्वारा मानवमात्र को सम्बोधन करते हुए कहती है कि "हे मनुष्यो, मिलकर एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगे-आगे चलो, मिलकर प्रेम से बोलो, तुम्हारे मन ज्ञान द्वारा सुसस्कृत हो। सत्यनिष्ठ पूर्वविद्वानो के समान तुम भी अपने कर्त्तव्य को निभाते रहो। अपने कर्त्तव्य का सदा पालन करने मे सदा तत्पर रहो"।

"तुम्हारे सकल्प एक जैसे पवित्र और समान रूप से प्रीति युक्त हो। तुम्हारे हृदय और मन परस्पर मिले हुए हों जिससे तुम्हारा परस्पर सहयोग बढता रहे"। इससे उच्च मानवमात्र का कल्याणकारी, सब मे परस्पर प्रेम को बढाने वाला और क्या सदेश हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि आर्य लोग परस्पर सब प्रकार के वैर विरोध का परित्याग करके सम्पूर्ण जगत के सम्मुख एक उच्च आदर्श प्रेममय जीवन और सहयोग का प्रस्तुत करे।

ओ३म् ध्वजा के नीचे आकर सबको यह व्रत लेना चाहिये कि वे वैर विरोध की भावना को त्याग के परस्पर सहयोग से सब धार्मिक कार्यो को करेगे और आर्य सस्थाओ को उनके उद्देश्यानुकूल उन्नत करने मे तत्पर रहेगे।

वेदो की सबसे प्रधान शिक्षा जो मनुष्य मात्र को मिलाने वाली है और जिस पर वैदिक धर्मोद्धारक शिरोमणि महर्षि दयानन्द का सबसे अधिक बल था वह विश्वमैत्री की है।

"....मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" यजु० ३६।१८

आर्याभिविनय के द्वितीय प्रकाश मे इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है, "हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन् ! सब भूत प्राणिमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखे सब मेरे मित्र ही हो जाये। कोई मुझसे किंचित् मात्र भी वैर दृष्टि न करे।...आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब भूतप्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वात्म-स्वप्राणवत् प्रिय जानू अर्थात् पक्षपात छोड के सब जीव देहधारी मात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्तमान करे। अन्याय से युक्त होके कभी किसी पर भी न वर्ते। यह परमधर्म का सब मनुष्यो के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है। सबको यही मान्य होन योग्य है।" महर्षि दयानन्द के जिस वेद-भाष्य की जयन्ती का समारोह श्रद्धा और उत्साह पूर्वक मनाया जाना है इसमे इस मन्त्र के भावार्थ मे महर्षि ने लिखा है—

"वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियो को माने, किसी से भी द्वेष न करे और मित्र के सदृश सबका सदा उपकार करे।"

मान्या आर्य देवियो और सज्जनो ! वर्तमान अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। चारो ओर अज्ञानान्धकार छाया हुआ है। वेद से विमुख होकर लोग नाना सम्प्रदायों मे विभक्त होकर भटकते फिरते ठोकरे खा रहे हैं। अपने को भगवान् का अवतार कहने वालो की बाढ सी आ गई है, मूर्ति पूजा, तीर्थस्नानादि द्वारा पापो से मुक्त होने की भावना अब भी विविध रूपो मे दिखाई देती है, योग के नाम पर भी पाखण्ड फैल रहा है, पाश्चात्य नर-नारियो की भोग विलास से तग आकर योग की ओर प्रवृत्ति को देखकर पाखण्डी लोगो ने योग की दुकाने खोल ली है बडे-बडे राष्ट्रो मे परस्पर सच्चा प्रेम और सहयोग न होकर ईर्ष्या, द्वेष तथा स्पर्धा की भावना बढ रही है, और निर्धनो तथा दलितो का शोषण हो रहा है, जातिभेद और अस्पृश्यता की भावनाये राजनैतिक क्षेत्र मे भी प्रविष्ट होकर उसे दूषित बना रही है, दुराचार और भ्रष्टाचार का चारो ओर बोलबाला है तथा जनता सरकार भी उसे निर्मूल करने मे अपने आपको असमर्थ पा रही है। ऐसे समय मे एक ओ३म् की ध्वजा और वेदभानु का प्रकाश ही है जो इस नितान्त शोचनीय दशा को दूर कर सकता है। ओ३म् की ध्वजा के नीचे आकर और वेदभानु के दिव्य आलोक से आलोकित होकर ही लोग सब प्रकार के अज्ञान दुराचार, भ्रष्टाचार और पाखण्ड से अपने आपको दूर कर सकते हैं अन्यथा कभी नही। अत. आर्यो पर बडा भारी उत्तरदायित्व है कि वे ओ३म् ध्वजा को हाथ मे लेकर और वेद की ज्योति से स्वय द्योतित होकर इस सम्पूर्ण शोचनीय परिस्थिति को परिवर्तित करने के लिए कटिबद्ध हो जाए। आओ प्रिय बन्धुओ तथा मान्या देवियो ! कमर कस के खडे हो जाओ। वेद सब सत्य विद्याओ की पुस्तक है। वेद का पढना पढाना सब आर्यों का परम धर्म है। ऋषि दयानन्द के इस आदेश का पालन करते हुए आगे बढो। निराशावाद को अपने पास न फटकने दो। आपको आगे-ही-आगे बढना है और तब तक विश्राम नहीं लेना जब तक दुराचार, भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, साम्प्रदायिकता का विष और पाखण्डो का अन्त नही हो जाता। पर इसके लिए आपको परमेश्वर की सच्ची उपासना और ईश्वरीय ज्ञान वेदों के श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय द्वारा अपने अन्दर दिव्य शक्ति को भरना होगा। "उद्यानते पुरुष नावयान"। अथर्व० ८-१-१।

वे स्फूर्तिदायक, नवजीवनदायक, वेद के उपदेश आप में नवचैतन्य का सचार करेगे जिनमे पुरुष को सबोधन करते हुए सर्वशक्तिमान भगवान ने कहा है कि "हे पुरुष ! उठ, तू उभर, उभर उठता जा, सदा उन्नति करता जा। कभी तेरी अवनति न हो। तू कभी नीचे न गिर। मैं (सर्वशक्तिमान) तेरी शक्ति का विस्तार करता हू, तुझे शक्तिशाली बनाता हू ताकि तू उत्तम जीवन व्यतीत कर सके। इस अमृत सुखमय शरीर रूपी रथ पर तू सवार हो जा और अनुभवी बनकर अन्यों को भी ज्ञान और यज्ञ का उपदेश कर"।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

लेखमाला (११)

"कुछ आप बीती, कुछ जग बीती"

स्वामी श्रद्धानन्द

(लेखक—प्रिन्सिपल कृष्णचन्द्र एम० ए० (त्रय), एम० ओ० एल०, शास्त्री, बी० टी० सी—११ (ए), कालका जी, नई दिल्ली)

(२-४-७८ के अंक मे प्रकाशित लेख से आगे)

—सम्भवत छुट्टियाँ सितम्बर के प्रथम सप्ताह तक थी। मैंने वे सभी छुट्टियाँ पिताजी की चिकित्सा कराने मे और उनकी सेवा मे व्यतीत कर दी। इन्ही दिनों मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश', 'आर्याभिविनय' और "पञ्चमहायज्ञ-विधि" का पुन: स्वाध्याय किया और जब लाहौर चलने लगा उस समय तक "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" के आधे भाग का अध्ययन कर चुका था। इस अध्ययन के कार्य मे मुझे एक योग्य शिष्य भी प्राप्त हो गया। उस समय पंजाब मे संस्कृत भाषा को जानने वालो की वैसे भी न्यूनता थी और फिर ग्राम मे तो संस्कृत भाषा का कार्य ही क्या था? परन्तु तलवन की ग्रामीण पाठशाला का सहायक अध्यापक आठ रुपये मासिक प्राप्त करने वाला काशीराम संस्कृत भाषा पढा हुआ था और इस लिए पिता जी को उनकी रुचि के अनुसार धर्मग्रन्थ सुनाया करता था। वही काशीराम अध्ययन-अध्यापन मे भी सम्मिलित हुआ। और जब मैं तलवन से लाहौर वापिस आ गया तो मेरे पीछे उसने पिताजी का विश्वास मेरे सिद्धान्तो पर दृढ कर दिया।

—मैं कानून की पुस्तके प्राय याद कर चुका था। "सत्यार्थ प्रकाश" आदि सारा दिन पढते रहना कठिन था और आर्य समाज मे प्रविष्ट होते ही अंग्रेजी भाषा के उपन्यासो से भी मुझे घृणा हो चुकी थी। तलवन मे कोई ऐसे शिक्षित सभ्य महानुभाव न थे जिनसे वार्तालाप करने मे दिन कट जाता। तब समय को व्यतीत करने के लिए एक पुराने व्यसन मे पुन फँसा। काशी से अन्तिम बार विदा होने से पूर्व मैंने बडे बडे शतरंज खेलने वालो से शतरंज खेलना सीखा था। तलवन मे पहुँचकर देखा कि मेरे वंश के मुसलमान अध्यापको और नूरमहल के सय्यदों का सारा का सारा वंश विख्यातशतरंजबाज है। वहाँ इस खेल मे और भी प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। फिर जालन्धर मे मेरे भ्राता लाला बालक राम जी को शतरञ्ज मे बहुत रुचि थी। उनके साथ डटकर प्रतियोगिता होती। सारांश यह कि शतरञ्ज बाजी मे बहुत समय बरबाद किया करता था। परन्तु आर्य समाज में प्रविष्ट होने ही जहाँ मासभक्षण का त्याग किया, जहाँ उपन्यासो को उठाकर पृथक् रख दिया, वहाँ शतरंज को भी तिलांजलि दे दी थी। परन्तु तलवन मे निकम्मा बैठा हुआ सामने पासो की खटखट देख कर मुझसे न रहा गया और पुन शतरंज के खेल मे दिन के पाँच-छ घण्टे व्यर्थ नष्ट करने लग गया। इसके अतिरिक्त मुझे सितार का भी चाव था और अपने वृद्ध उस्ताद पीरबख्श कलावन्त से सितार पर कुछ भजनो का अभ्यास करता रहा।

—इस प्रकार ज्यो त्यो करके मैंने दो मास से अधिक समय व्यतीतकर दिया और लाहौर के लिए विदाई का दिन निकट आ गया। अंगूरी बैलो से जुती हुई मझोली तैयार हुई। उसके नीचे और पीछे सभी सामान रखा और बंधवा कर मैं पिता जी की सेवा मे प्रणाम करने के लिए उपस्थित हुआ। अपने बनवाए हुए मन्दिर की ड्योढी के ऊपर उनके निवास करने के कमरे बने हुए थे। पिता जी तकिया लगाए बडे कमरे मे बैठे थे। उनका निजी सेवक 'भीमा' खडा था। मैंने उपस्थित होकर चरणो पर सिर रख कर प्रणाम किया। पिता जी ने सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। मैं चलने के लिए उठने लगा। आदेश हुआ कि अभी बैठ जाओ। फिर 'भीमा' सेवक की ओर संकेत किया। उसने एक थाल मे मिठाई रख कर और उसके ऊपर एक अठन्नी रख कर मेरे सम्मुख रख दी और पिता जी ने कहा—"जाओ पुत्र! ठाकुर जी को मस्तक झुका कर विदा हो। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री भगवान रामचन्द्र के साथ पदयात्रा करने वाले हनुमान जी तुम्हारे रक्षक हो।" मैं इतना सुनते ही सुन्न हो गया। काटो तो शरीर मे रक्त नही। मुझे उत्तर न बन आता था। मौन हो कर बैठा था। पिता जी मेरे मौन का कारण कुछ और समझे। मैं जहाँ अपने निजी भोग विलास के लिए उन दिनो भी अधिक व्यय नही करता था। वहाँ बहुत ही उदार हृदय वाला था। जहाँ दूसरा व्यक्ति दो आने पुरस्कार दे कर प्रसन्न होता। वहाँ मुझे आठ आने से कम देने मे लज्जा अनुभव होती। पिता जी स्वयं बडे प्रबन्धक थे और उनके घर का समस्त व्यय अत्यन्त नियमित रूप से होता था। पिता जी ने समझा कि आठ आने की भेट देवता के लिए न्यून समझता हूँ। 'भीमा' को कहा गया कि अठन्नी उठा कर एक रुपया रख दो। उसने ऐसा ही किया और पिता जी ने कहा— लो, पुत्र! अब ठीक हो गया। ठाकुर जी के आगे मस्तक झुका कर सवार हो जाओ"। तब मुझे अपने ऊपर बहुत दबाव डाल कर बोलना ही पडा। सूझता नही था कि किस प्रकार से बोलूं? जिससे पिताजी को कष्ट न हो। मैंने कहा—' पिता जी, यह बात नही है। अपितु मैं सर्वमान्य सिद्धान्तो के विपरीत कैसे आचरण कर सकता हूँ? हाँ, सासारिक कार्य-व्यापार मे आप आदेश दे। उसका पालन करने मे मैं उपस्थित हूँ।" इतना कहकर मैं मौन हो गया। पिता जी के मुख पर कई उतार-चढाव हुए और उन्होने आवेशपूर्ण शब्दो मे कहा—"क्या तुम हमारे ठाकुर जी को धातु (सोना-चाँदी आदि) और पाषाण समझते हो?" उस समय मेरे भीतर महान् संघर्ष हो रहा था। ज्ञात नही कैसी चतुराई से मैंने कहा—"परमात्मा से उतर कर मैं अपने लिए आप को ही समझता हूँ। परन्तु हे पिता जी, क्या आप चाहते हैं कि आप की सन्तान मक्कार हो?" ये शब्द अत्यन्त नम्रतापूर्वक ध्वनि मे मेरे भीतर से निकले थे। पिता जी की जिह्वा भी कुछ लडखडा गई। कौन अपनी सन्तान को मक्कार देखना चाहता है? मैंने उस समय को जीवन की रक्षा अथवा मृत्यु को प्राप्त करने का अवसर समझा और कहा—"तब मेरे लिए तो ये मूर्तियाँ इससे अधिक और कुछ नही और यदि मैं उनके सम्मुख भेट रखकर सिर को झुकाऊँगा तो वह मक्कारी होगी।" कहने को तो मैंने इतना बहुत कुछ कह दिया। परन्तु इस पर पिता जी के ये हृदय को चीरने वाले शब्दो को सुनकर मुझ मे कुछ शक्ति ही न रही—"हाँ, मुझे विश्वास नही कि मरने पर मुझे कोई पानी देने वाला भी रहेगा! अच्छा भगवान्! जो तेरी इच्छा"। मैं मानो भूमि मे गढ गया। पाँव वहाँ के वहाँ रहे। दस मिनट तक न मुझे ही कुछ सुध-बुध रही और न पिता जी ही बोले। पुन धीमे-धीमे कहा—"अच्छा अब जाओ। देर होगी"। मैंने चुपचाप प्रणाम किया और नीचे उतर कर मझोली पर सवार हो गया।

(क्रमश.)

भाषण प्रतियोगिता

रविवार १४ मई १९७८ बाद दोपहर २ बजे आर्य समाज मन्दिर माडल टाउन दिल्ली मे "आर्य समाज की दृष्टि मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम" इस विषय पर स्कूलो के छात्र-छात्राओ की भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई है। प्रत्येक वक्ता बच्चे को ५ मिनट का समय दिया जायेगा। प्रत्येक आर्य समाज, आर्य स्त्रीसमाज, आर्य शिक्षणसस्था तथा आर्य परिवार केवल एक एक बच्चे का नाम ही १२ मई ७८ तक भाषण प्रतियोगिता के संयोजक प० देवव्रत धर्मेन्दु आर्योपदेशक १९५४, कूचा दखिनी राय, दरियागंज नई दिल्ली ११०००२ को भेज सकते हैं। विजेता सर्वप्रथम बच्चे को १०) रु० मासिक द्वितीय को ७) रु० मासिक तथा तृतीय को ५) रु० मासिक वर्ष भर तक छात्रवृत्ति दी जाती रहेगी। इसके साथ-साथ सभी वक्ता बच्चों को मार्ग व्यय तथा प्रोत्साहन पुरस्कार के रूप मे ४) रु० नगद तथा वैदिक साहित्य की पुस्तको का एक-एक सैट भी दिया जायेगा। श्री ला० देशराज जी चौधरी प्रधान आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली राज्य अपने कर कमलो द्वारा पारितोषिक वितरण करेगे। सभी से प्रार्थना है कि बच्चो के उत्साह सम्वर्धनार्थ इष्ट मित्रो सहित बहु सख्या मे पधारकर इस आयोजन को सफल बना पुण्य व यश के भागी बने।

वार्षिक चुनाव आर्य समाज खंडवा

आर्य समाज खडवा जिला पूर्व निमाड (म० प्र०) का वार्षिक चुनाव दिनाक ३०-३-७८ को श्री डा० रघुनाथ सिंह वर्मा प्रधान जिला आर्य-समाज खडवा की अध्यक्षता मे हुआ। आगामी वर्ष के लिये निम्नपदाधिकारी चुने गये। प्रधान—श्री हीरालाल आर्य, उप प्रधान—श्रीमती कृष्णा बाई अग्निहोत्री तथा श्री लक्ष्मीनारायणा भार्गव, मंत्री—श्री बाबूलाल चौधरी; उपमंत्री—श्री रामप्रताप श्रीमाली; प्रचार मंत्री—श्री माँगी लाल सोनी; कोषाध्यक्ष— श्री कन्हैया लाल, पुस्तकाध्यक्ष—श्री गोकुल चन्द सोनी; निरीक्षक—श्री घीसीलाल राजकुले

शराब की दुकानें बन्द हों

गाधीनगर तथा कृष्ण नगर (यमुना पार) की आर्य समाजों ने अपनी आपात बैठको मे जो इसी मतलब के लिये बुलाई गई थी निम्न प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किये।

'यमुना पार गाधी नगर (कृष्ण नगर) मे शराब की एक और दुकान खोले जाने पर हम अपना घोर विरोध प्रकट करते है और केन्द्रीय सरकार तथा दिल्ली प्रशासन से अनुरोध करते है कि जनता की भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए शराब की उक्त दुकानो को शीघ्रातिशीघ्र बन्द करने के लिये तुरन्त आवश्यक कार्यवाही करे।

(पृष्ठ ४ का शेष)

प्रिय आर्य बन्धुओ ! ओ३म् पदवाच्य परमेश्वर की सच्ची उपासना और वेदो के स्वाध्याय की न्यूनता के कारण तुम्हारे अन्दर निर्बलता आ गई है। इसी से तुम निराशा के प्रवाह मे बैठकर यह समझने लगते हो कि अब हम क्या करे ? हमारे करने से क्या बनता है ? हमारी कौन सुनता है ? इस निर्बलता और निराशा का परित्याग करो। अपने व्यक्तित्व, पारिवारिक और सामाजिक जीवनो को अधिक से अधिक वेदानुकूल बनाओ। सर्व-शक्तिमान भगवान के सच्चे भक्त उपासक बनो। वेदो का नियमित रूप से प्रतिदिन सपरिवार स्वाध्याय करो। तब तुम देखोगे कि तुम्हारे अन्दर सर्व-शक्तिमान भगवान की कृपा से कितनी दिव्यशक्ति का सचार हो जाता है और तुम्हारे सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो का जीवन कितना पवित्र बन जाता है। परमात्मा कृपा करे कि ओ३म् ध्वज का यह उत्तोलन जो वेद दिवाकर की प्रखर किरणो से आलोकित है सब आर्यो मे कर्त्तव्य भावना, उत्साह और उल्लास को जागृत करने वाला और विश्व भर में शान्ति को लाने वाला हो।

"इन्द्रो विश्वस्य राजति···।" यजु० ३६. ८।

"सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु खभाग् भवेत् ॥"

संस्कृत शिक्षण त्रैमासिक शिविर

समस्त सस्कृत प्रेमियो को सूचित किया जाता है कि आगामी जून मास १९७८ से दिल्ली मे प्रथमबार महर्षि पाणिनि कृत अष्टाध्यायी की पद्धति से नि शुल्क रूप से त्रैमासिक शिविरो का आयोजन किया जा रहा है। पिछले कई वर्षो मे ऐसा आयोजन, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, सीतापुर आदि नगरो मे भी किया जाता रहा है, जिस के फलस्वरूप हजारो नर-नारियो ने अष्टाध्यायी द्वारा सस्कृत व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया है। इन शिविरो मे शिक्षण का कार्य स्व० प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के सुयोग्य शिष्य प० धर्मानन्द आचार्य करेंगे। प्रवेश पत्र आर्य समाज करौलबाग, लाल बहादुर शास्त्री सस्कृत विद्यापीठ तथा आर्यसमाज हनुमान रोड से प्राप्त किये जा सकते है। इन शिविरो मे पढने के लिये हिन्दी पढने लिखने का ज्ञान होना आवश्यक है। शिविर प्रात. ६॥ से ८ और साय ५॥ से ७ बजे तक लगेंगे जिसमे शिक्षार्थी अपनी सुविधा-नुसार किसी भी एक शिविर मे पढ सकते है।

श्रीमती सुषमा स्वराज्य सोहना में

गत २२ मार्च १९७८ को श्रीमती सुषमा स्वराज्य, मन्त्री समाज कल्याण विभाग हरियाणा राज्य, दयानन्द शिशु विद्यालय सोहना (गुडगावा) के छठे वार्षिक उत्सव मे सम्मिलित होने के लिये सोना पधारी। नगर के हर तबके के लोगो ने उन का बढ-चढ कर स्वागत किया। शिशु विद्यालय के सयोजक श्री मेघराज आर्य ने विद्यालय के प्रबन्धको और नगर की जनता की ओर से उन्हे मान पत्र पेश करते हुए उन का ध्यान विद्यालय को सुचारू रूप से चलाने मे पेश आ रही कठिनाईयो की ओर दिलाया। इसी अवसर पर आर्य समाज सोहना के प्रधान श्री न्यासी राम ने श्रीमती सुषमा स्वराज्य को महर्षि की प्रसिद्ध कृति सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति भेट की। श्रीमती स्वराज्य ने मानपत्र का उत्तर देते हुए स्थानीय आर्य महिला सगठन की सराहना की और समाज से कुरीतियो को दूर करने और विशेष कर शराबबन्दी का प्रचार करने के लिये उन का आवाहन किया। दयानन्द शिशु विद्यालय की सहायतार्थ सरकार की ओर से ५००० रुपये देने की घोषणा भी माननीया मन्त्री ने की।

आर्य समाजों के सत्संग

१६-४-७८

अन्धा मुगल—प० गणेशदत्त वानप्रस्थी; **अशोक विहार के० सी०-५२-ए०**—स्वामी ओ३म् आश्रित, **आर्य पुरा**—डा० नन्द लाल, **किंग्जवे कैम्प**—प० हरिदेव तर्ककेसरी; **किशन गंज मिल एरिया**—प० शिवराज सिंह शास्त्री; **ग्रेटर कैलाश नं० १**—प० विश्वप्रकाश शास्त्री, **गुड़मण्डी**—पं० देवेन्द्र आर्य; **जंगपुरा भोगल**—प० देवराज वैदिक मिशनरी; **जनकपुरी सी ब्लाक**—प० ईश्वरदत्त, **तिलक नगर**—प० ब्रह्मप्रकाश शास्त्री; **दरियागंज**—स्वामी स्वरूपानन्द, **नांगल राया**—डा० वेदप्रकाश महेश्वरी, **नारायण विहार**—प० वेदपाल शास्त्री; **न्यू मोती नगर**—कविराज बनवारी लाल शार्दा; **पाण्डव नगर**—प० तुलसी राम, **राजौरी गार्डन**—पं० प्रकाशचन्द शास्त्री; **राणा प्रताप बाग**—स्वामी भूमानन्द, **लड्डूघाटी**—श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा; **लक्ष्मी बाई नगर**—प० सत्यभूषण वेदालकार, **लाजपत नगर**—प० प्राणनाथ सिद्धान्तालकार; **सराय रोहेला**—प्रो० सत्यपाल बेदार; **विनय नगर**—प० राम किशोर वैद्य, **सरस्वती विहार टीचर्ज कालोनी**—प० महेशचन्द्र भजनमण्डली, **सोहन गंज**—स्वामी सूर्यानन्द; **हनुमान रोड**—प० सत्यपाल वेद शिरोमणि ।

शराब की दुकानें बन्द करो

आर्य समाज श्री निवासपुरी के प्रधान व स्थानीय नशाबन्दी समिति के महासचिव श्री नरेन्द्र अवस्थी ने श्री निवासपुरी पुल के निकट शराब के ठेके को पुन खोलने का जबरदस्त विरोध करते हुए उसे तुरन्त बन्द करने की माग की । उन्होंने प्रश्न किया कि जिसे चुनाव अभियान मे क्षेत्र पर माथे का कलक कहा जाता रहा वही अब जनता सरकार के दौर मे माथे का तिलक कैसे बन गया ? आप ने आश्चर्य प्रकट किया कि एक तरफ तो शराब की खपत घटाने व नशाबन्दी का प्रचार किया जा रहा है और दूसरी तरफ शराब के बन्द ठेकों को पुन चालू किया जा रहा है। यह कहा की नीति है ? आपने चेतावनी दी कि यदि ठेका बन्द न किया गया तो इस के विरुद्ध जनचेतना व जन-आन्दोलन किया जाएगा ।

सम्भल में लूट मार

कुछ दिन पहले सम्भल मे घटी घटनायें रौंगटे खड़े कर देने वाली ही नही, खून खौला देने वाली हैं । इन की प्रतिक्रिया होना देश के हित मे नही, न ही अल्पसख्यको के, न ही बहु सख्यकों के और न ही सत्ताधारी जनता पारटी के । इस लिये बर्बरता का शिकार हुए क्षतिग्रस्त लोगों के घावो पर अविलम्ब फोहा रखा जाना अत्यावश्यक है । इस सबन्ध मे जो बात सबसे पहले की जानी चाहिये वह यह है कि सबन्धित जिलाधिकारियो—जिलाधीश, डयटी मैजिस्ट्रेटो, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टो तथा अन्य अवर अधिकारियो—को तुरन्त निलम्बित किया जाये । दूसरी बात जिस के बगैर जनता सरकार सम्भल मे सताये गये अल्पसख्यको मे भरोसा पैदा नही कर सकती और न उनका विश्वास प्राप्त कर सकती है यह है कि इस लूट-मार-काण्ड की जाच को बिना ननु नच किये केन्द्रीय जाच ब्यूरो के सपुर्द कर दिया जाये । जिला मैजिस्ट्रेसी तथा पुलिस तो स्वय मुजरिम है । उनकी छत्र छाया मे, दिनदिहाड़े डेढ लाख की आबादी के शहर मे इतनी देर तक कहर बरसता रहा, वे सोते रहे, नही नही, हाथ पर हाथ रखे देखते रहे । ऐसी दोषी सरकरी एजेंसियों को इस लूटमार के मुकदमो की तफतीश पर लगाना जखमो पर नमक छिडकने के बराबर होगा । जनता सरकार को इस विषय मे अविलम्ब कार्यवाही करनी चाहिए ।

सत्यानन्द शास्त्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, ,१५, हनुमान रोड नई दिल्ली-१ दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अंक २६ रविवार ७ मई, १६७८ दयानन्दाब्द १५३

प्रेरक प्रसंग

दण्डी स्वामी और सिकन्दर महान्

ससार को विजय करने के लिये प्रस्थान करने से पूर्व सिकन्दर महान् अपने गुरु से मिलने गया। आशीर्वाद देते हुए गुरु ने सिकन्दर से कहा—"भारत के ब्राह्मण बडे ज्ञानी, त्यागी और तपस्वी होते है। लौटते समय यदि हो सके तो वहा के किसी ब्राह्मण को आदरपूर्वक अपने साथ लेते आना।"

विजय पर विजय प्राप्त करते हुए सिकन्दर ने जब व्याम नदी को पार किया तो सेना के सिपाहियो ने आगे चलने से इन्कार किया। हर चन्द समझाने पर भी जब वे न माने तो सिकन्दर को अपने गुरु का आदेश याद आया। उसने यह पता लगाने के लिये कि क्या कोई महाज्ञानी, त्यागी, तपस्वी ब्राह्मण वहा आस पास रहता है अपने एलची चारो ओर दौडाये। कुछ दिनो के बाद उसे पता लगा कि वहाँ से बहुत दूर जगल मे दण्डी स्वामी (Dandamıs="दण्डमिस") नाम का एक ब्राह्मण वास करता है। वह आबादी मे नही आता, जगल के कन्द मूल खाकर ही अपना जीवन यापन करता है, न ही कपडे पहनता है, केवल नगापन ढापने के लिये कौपीन बान्धता है, रात दिन पत्तों की शय्या पर लेटा रहता है, किसी से विशेष मिलता जुलता भी नही।

यह वृत्तान्त सुन सिकन्दर के मन मे इस ज्ञानी ब्राह्मण से मिलने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। उसने अपने सेनाध्यक्ष 'ओनिसि-क्रेट' को सैनिको की एक छोटी सी टुकडी दे दण्डी स्वामी को लिवा लाने का आदेश दिया। कुछ दिनो के बाद "अनिसि-क्रेट" ढूढता ढांढता आखिर दण्डी स्वामी के ठिकाने पर पहुंच गया। पास पहुच कर सम्मानार्थ झुकते हुए उसने दण्डी स्वामी से कहा —

"हे ब्राह्मणो के आचार्य, मैं सेनाध्यक्ष 'ओनिसि-क्रेट' तुम्हे नमस्कार करता हूं। हमारे सेनापति, मानवो के अधिपति, राजा सिकन्दर जो मकदूनियाँ महाराज "फिलिप" के सुपुत्र है तुम से मिलना चाहते हैं। उन्होने मुझे तुम्हे लिवा लाने के लिये भेजा है। प्रभो! यदि उनका हुकम मान तुम मेरे साथ चल पडोगे तो प्रसन्न होकर वह तुम्हे बहुत "इनामो इकराम" देंगे और यदि उनका हुकम न मानोगे तो क्रुद्ध होकर वह तुम्हारा सर धड से जुदा करवादेगे'।

दण्डी स्वामी ने मुस्कराते हुए 'आनिसि-क्रेट' के उपर्युक्त वचन सुने। इन्हे सुन कर वह तनिक भी उद्विग्न नही हुए। "ओनिसि-क्रेट" की ओर घृणापूर्ण दृष्टि से देख कर पर्णशय्या पर लेटे-लेटे उन्होने उच्च स्वर से कहा —

"ईश्वर जो राजाओ का अधिराज, अपापविद्ध, प्रकाश शान्ति जीवन जल और मानव देह का जन्मदाता और दुरिच्छा से परे है वह ही मेरा आराध्य देव है। तुम्हारा राजा सिकन्दर ईश्वर नही, वह तो मरणधर्मा है। जो पदार्थ वह मुझे देना चाहता है मेरे किसी काम के नही। मैं वन्यपदार्थो पर निर्वाह करता हुआ पूर्णतया सन्तुष्ट और सुखी हूँ। दूसरे और पदार्थ सब मेरे लिये हेय है। मैं शान्ति का अभिलाशी हू, आखे मूद कर आनन्द मे मग्न रहता हू. किसी बात की मुझे परवाह नही, भूमि, माता के समान मुझे सब कुछ देती है। यदि सिकन्दर मेरा सर लेना चाहता है तो उसे याद रखना चाहिये कि वह मेरा आत्मा नही ले सकता। वह कटा हुआ सर ले सकता है। किन्तु आत्मा पुराने वस्त्रो की भान्ति शरीर को त्याग जायेगा। आत्मरूप हो मैं ईश्वर के पास पहुच जाऊँगा। सिकन्दर मेरा कुछ नही बिगाड सकता।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

वेदोपदेश

कर्म की उत्कृष्टता

ओ३म् कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति
यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः।
वदन् ब्रह्माऽवदतो वनीयान्
पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात्॥ (ऋ० १०/११७/७)

शब्दार्थ—(फाल) हल का फाल (कृषन् इत्) भूमि को फाडता हुआ ही (आशितम्) भोजन (कृणोति) कराता है, जुटाता है। (यन्) चलने वाला (चरित्रैः) कदमो से [अर्थात् कदम उठा कर ही] (अध्वानम्) मार्ग को (अपवृङ्क्ते) दूर हटाता है [अर्थात् समाप्त करता है]। (वदन्) बोलने वाला (ब्रह्मा) ज्ञानी पुरुष (अवदत) न बोलने वाले से (वनीयान्) अधिक आदर के योग्य होता है [अर्थात् उस के लिये अधिक मान होती। है], (पृणन् आपि) दाता बन्धु (अपृणन्तम्) न देने वाले को (अभि स्यात्) दबा लेता है।

कार्य करने मे ही जीवन की सफलता है। हल का फाल कितना ही अच्छा क्यो न हो लोहार की दुकान पर पडा पडा या किसान के घर मे पडा पडा भोजन की उत्पत्ति नही कर सकता। भोजन जुटाने का साधन तो वह तभी बनेगा, जब उस से भूमि जोती और बोई जायेगी। इसी प्रकार रास्ता कदम बकदम चलने से कटता है, कोई बैठा बैठा मार्ग काटने के उपाय किये बिना, मार्ग को समाप्त नही कर सकता। मार्ग को समाप्त करने के लिये तो चलना ही होगा। कोई महाज्ञानी हो, चारो वेदो का पण्डित हो, किन्तु यदि वह पढाता न लिखता है, न कही उपदेश करता है उस के पण्डित होने या न होने मे कोई अन्तर नही। समाज को उस की पण्डिताई और विद्वत्ता से क्या लाभ? समाज के लिये तो वही पण्डित काम का है जो बोले, उपदेश करे अथवा लेख आदि लिख कर उस का मार्गप्रदर्शन करे, अपनी विद्या और बुद्धिबल के अनुसार सुकर्म, सुधर्म का उपदेश करे। इसी प्रकार जो धनी अपने धन से जन का उपकार नही करता, भूखे को भोजन नही देता नगे को वस्त्र नही देता, उस मे और धनहीन दरिद्र मे क्या अन्तर है? धन होने का लाभ दूसरो की सहायता करने मे है। अत दानी धनवानो को कजूस धनियो की अपेक्षा सदा अधिक मान और आदर मिला करता है। दुनिया मे कर्म किये बिना कुछ भी नही उपजता। विद्या, धन और शक्ति निष्फल है यदि इन द्वारा दूसरो का भला न किया जा सके। ससार मे कर्म की महिमा अपार है। किन्तु दूसरो के हित के लिये कर्म करना तो और भी गरिमामय है।

सम्पादक—सरदारीलाल वर्मा, सहसम्पादक—सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए०

भोगवाद और त्यागवाद का समन्वय

—प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

हम अपने लेख 'यथार्थ सत्ता क्या है ?" मे बता आये हैं कि किस प्रकार भोगवाद और त्यागवाद की समन्वयात्मक दृष्टि को सामने रखकर उपनिषत्-कालीन ऋषियो ने न केवल जीवन की कल्पना ही की अपितु इसे क्रियात्मक रूप मे साकार भी किया। उपनिषदो की इस समन्वयात्मक विचारधारा की नीव पर छहो भारतीय दर्शनो ने अपने अपने भवन खड़े किये है। इन दर्शनो के प्रतिपादन का लक्ष्य एक ही है। सब मिलकर अपनी-अपनी दृष्टि से एक ही लक्ष्य की तरफ टिकटिकी बान्धे हुए हैं। ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास मे छहो दर्शनो की एकलक्ष्यता का प्रश्न उठाकर बड़े बुद्धिगम्य रूप मे इस पक्ष पर प्रकाश डाला है। वह लिखते है —

'सृष्टि छ कारणो मे बनती है। उन छ कारणो की व्याख्या एक-एक शास्त्र ने की है। इसलिए उनमें विरोध नही है। जैसे छ पुरुष मिलकर एक छप्पर उठाकर भितियो पर धरे, वैसे ही सृष्टिरूप कार्य की व्याख्या छ शास्त्रकारो ने मिलकर पूरी की है। जैसे पांच अंधे और एक मद-दृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है ? उनमे मे एक ने कहा—खम्भे जैसा, दूसरे ने कहा सूप जैसा, तीसरे ने कहा मूसल जैसा, चौथे ने कहा झाड़ू जैसा, पाँचवे ने कहा चौतरे जैसा, छटे ने कहा भैंसे जैसा।"

इस दृष्टान्त से ऋषि दयानन्द ने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि छहो दर्शन अपनी-अपनी बात कहकर किसी एक लक्ष्य की तरफ-इशारा कर रहे है। जैसे हाथी का वर्णन करते हुए उसके एक-एक अंग को देखकर अंधो मे कोई उसे खभे जैसा कोई सूप जैसा समझने लगता है वैसे दर्शनो की एकलक्ष्यता को न समझकर लोग उनको परस्पर विरोधी समझते है। परन्तु ऐसी बात नही है। सब दर्शन एक ही लक्ष्य की तरफ अंगुली उठा रहे है। वह लक्ष्य क्या है ? वह लक्ष्य वही है जिस लक्ष्य का मानचित्र वेदो ने खीचा, जिस मानचित्र को लक्ष्य मे रखकर उपनिषदो ने भारतीय संस्कृति की नींव डाली, जिस नीव के ऊपर छहो दर्शनो ने इस संस्कृति के विशाल भवन को खड़ा किया। सांख्य दर्शन के सूत्रो को एक साथ पिरोते हुए सांख्य-कारिका मे लिखा है —

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययात् अधिष्ठानात्
पुरुषोस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।

इस कारिका मे कहा गया है कि संसार मे मनुष्य भोक्ता बनकर आया है, परन्तु भोक्ता होने के साथ-साथ उसमे संसार से अलग होने—कैवल्य—की भी प्रवृत्ति है।—'भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च'—संसार को भोगना और संसार से अलग होकर 'केवल' हो जाना—यही जीवन का सही रास्ता है। 'भोक्तृभावात्' पहले कहा, 'कैवल्यार्थं' पीछे कहा—संसार का पहले भोग करना, फिर संसार को अपने-आप छोड़ देना—यह वेदो का, उपनिषदो का, भारतीय दर्शनो का यथार्थवादी, भोगवाद और त्यागवाद को समन्वित करने का दृष्टिकोण है। इसी को वैशेषिक दर्शन मे 'यत अभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धि स धर्म' —जिससे संसार का उपभोग करके 'अभ्युदय' होता है, और जिस उपभोग को छोड़ देने पर 'निःश्रेयस्' होता है, वह धर्म है—ऐसा कहा है। शास्त्रो मे धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की चतुःसूत्री प्रसिद्ध है। इसका भी अन्तर्निहित अर्थ यही है कि संसार मे डुबकी लगाओ, और डुबकी लगाने के बाद उससे छूट जाओ। यहा 'मोक्ष' का अर्थ अध्यात्मवादियो की मुक्ति नही है, 'मोक्ष' का अर्थ है—छोड़ देना। संसार को पकड़ लेना अर्थ और काम है, संसार को पकड़ने के बाद उसे छोड़ देना मोक्ष है। भारतीय दर्शनकों का भी कहना वही है जो उपनिषदो का कहना है जो वेदो का कहना है—वेदो, उपनिषदो, दर्शनो का सार यही है।

(दयानन्द वेदभाष्य शताब्दी के अवसर पर हुए उपनिषद् एवं दर्शन सम्मेलन मे पढ़े गये भाषण से उद्धृत)

●

इस संकोच को दूर करो

—श्री अमरनाथ अग्रवाल

आखिर सरकारी कार्यालयो मे हिन्दी मे कार्य करने की गति धीमी क्यो है ? साथियो ! क्या आपने कभी इस विषय पर ध्यान दिया है ? यदि नही तो आइये इस पर गम्भीरता पूर्वक सोचे। अन्य जो भी कारण हो, परन्तु मेरी दृष्टि से तो इसका कारण मात्र मैं हूँ। मैं वह व्यक्ति जो अपनी ही मातृ-भाषा के प्रति उदासीन एवं विरक्त हू।

मैं एक हिन्दी भाषा प्रदेश मे पैदा हुआ, जन्म मे हिन्दीमय वातावरण मिला। शिक्षा माध्यम भी हिन्दी ही था। आज भी एक ऐसे कार्यालय मे कार्यरत हू जहाँ हिन्दी भाषी जनो का बाहुल्य है, साथ ही साथ कार्यालय मे हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि मे कार्य करने की पूर्ण-स्वतत्रता है। मैं यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि मैं अपने व्यवहार मे हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपी का प्रयोग करूगा तो मेरा ही नही अपितु समाज एवं सम्पूर्ण देश का भला होगा। फिर आखिर क्या कारण है कि मैं अपनी मातृभाषा, राष्ट्र-भाषा, जनभाषा हिन्दी मे कार्य बहुत कम करता हू। अपितु अंग्रेजी, जिसमे मुझे निपुणता भी प्राप्त नही है, मैं कार्य करता हू। आप ही बताये कि क्या मैं अपनी मातृभाषा, राजभाषा हिन्दी के प्रति अपने दायित्व का पालन कर रहा हू ? क्या मेरे ही जैसे लाखो करोडो और ऐसे ही व्यक्ति नही है ? तब फिर आप ही बताये कि जिस माँ के पूत ही अपनी मा के प्रति कर्तव्य विमुख हो जायें, क्या वह माँ कभी सुख भोग सकेगी ? कभी उन्नति के शिखर पर पहुच सकेगी ? नही, कदापि नही।

जरा सोचिये कि ऐसा क्यो हुआ ? क्यो हो रहा है ? आखिर मुझमे वह कौनसी कमी है जो मुझे ऐसा करने पर बाध्य कर रही है ? दोस्तो ! वह और कुछ नही, वह है मेरा सकोच कि कही हिन्दी मे कार्य करने पर मेरा साथी, मुझे अनपढ़, बुद्धिहीन, पिछड़ा हुआ तो नही समझेगा। यह कैसी विडम्बना है कि बेटा मा को मा कहने मे हिचक रहा है ? अपनी स्नेहमयी मा का दामन झटक अन्धकार मे भटक रहा है। यह कैसी उत्पीडना है कि मा को मा न कहकर 'मम्मी' कहने मे अपने आप को गौरवान्वित अनुभव करते है। क्या हम हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि के प्रति मन मे व्याप्त भय और सकोच का परित्याग नही कर सकते ?

आइये, आज भारत मा पर सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले महान सपूतो की शपथ लेकर प्रण करे की हम अपने दैनिक व्यवहार मे राष्ट्र भाषा मातृभाषा हिन्दी का प्रयोग करेंगे तथा मार्ग मे आने वाले व्यवधानो को हँसते-हँसते दूर कर देंगे।

राज्यों में राजभाषा कार्यान्वयन समितियां बनें

अ० भा० राजभाषा सम्मेलन की सिफारिश

केन्द्रीय राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय राज-भाषा सम्मेलन गृह मन्त्रालय मे राज्यमन्त्री श्री धनिकलाल मण्डल की अध्यक्षता मे गत मास नई दिल्ली मे हुआ। इस सम्मेलन ने राजभाषाओ के प्रचार और प्रसार के लिए बहुत सी सिफारिशें की है। पाठको की जानकारी के लिए मुख्य-मुख्य सिफारिशें यहा दी जाती है—

सम्मेलन ने सिफारिश की है कि सभी राज्यो मे सरकारी कामकाज उनकी राजभाषाओ मे किया जाए तथा उसके लिए ऐसा समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किया जाए जिससे दो साल के भीतर उनका सारा काम राजभाषाओ मे होने लगे। सम्मेलन ने यह भी सिफारिश की है कि कार्यक्रमो पर नजर रखने के लिए प्रत्येक राज्य मे मुख्यमत्री की अध्यक्षता मे राजभाषा-समिति तथा सरकार के प्रत्येक विभाग और नीचे के कार्यालयो मे राजभाषा-कार्यान्वयन समितियो की स्थापना की जाए। इस सम्मेलन मे भारत के सभी राज्यो तथा सघशासित क्षेत्रो और मत्रालयो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। बिहार के मुख्यमत्री ने सम्मेलन की तीनो दिनो की सगोष्ठियो मे भाग लिया। सम्मेलन ने तय किया कि राजभाषा के काम के लिए स्टाफ, टाइप राइटरो, टेली-

[शेष पृष्ठ ६ पर]

सम्पादकीय

क्या संस्कृत मृत भाषा है ?

जो लोग संस्कृत को मृत भाषा कहते हैं उनकी आंखें खुल जानी चाहिएं २३ मार्च १९७८ को आन्ध्र विधानपरिषद मे श्रीमती कोन्डा पार्वती ने बजट पर हो रही बहस में भाग लेते हुए अपने विचार सस्कृत मे प्रकट किए। यह ठीक है कि माननीय सदस्या के भाषण के अधिकाश भाग को परिषद के सदस्य समझ नहीं पाये, किन्तु यह बात तो सिद्ध हो गई कि सस्कृत में भाषण देने की योग्यता रखने वाले आज भी इस देश मे मौजूद हैं। सन् १९७१ की जनगणना की रिपोर्ट देख लीजिए आज भी सस्कृत बोलने वालो की सख्या हजारों में है। ये लोग संस्कृत में बोलते हैं, पत्रव्यवहार भी संस्कृत में करते हैं। आज भी यदि किसी विद्वान् को समूचे भारत में अपने विचारों का प्रचार करने की इच्छा होती है तो उसे सस्कृत का अवलम्बन करना पडता है। हर राज्य मे संस्कृत समझने और बोलने वाले व्यक्ति आज भी विद्यमान हैं।

इस सम्बन्ध मे अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के पृष्ट ८ पर संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् श्री मेक्डोनल लिखते हैं: "जैसे ईस्वीय सम्वत् से शताब्दियों पूर्व संस्कृत बोली जाती थी, वैसे आज भी सहस्रो विद्वान् ब्राह्मण अपनी भाषा की भांति इसे बोलते हैं। साहित्यिक प्रयोजनो के लिये भी इसका प्रयोग बन्द नहीं हुआ। आज भी पुरानी संस्कृत भाषा मे अनेक ग्रन्थ रचे जाते हैं और सामयिक पत्र प्रकाशित होते हैं। इसी सदर्भ मे आगे चलकर मेक्डोनल महोदय पुन: लिखते हैं:—"एक विशेष अर्थ मे, विशेषत: भाष्य, टीका आदि लिखने की दृष्टि से संस्कृत भाषा का साहित्यिक प्रयोग······ आज तक चालू है।"

यह विशेष जानने की बात है कि युरोप की किसी भी प्राचीन भाषा मे आज कोई भी नई रचना नही रची जा रही। इसके विपरीत सस्कृत साहित्य मे नित्य नूतन कृतिया की जा रही हैं। कुछ एक तो उनमे इतनी उत्कृष्ट हैं कि साहित्य एकादमी भी उन्हे पुरस्कृत करने के लिये वाधित हो जाती है। अत सस्कृत को मृतक कहना घोर अन्याय है। केवल भाष्य, टीका, टिप्पणी आदि ही नहीं, प्रत्युत् नई रचनायें—काव्य, नाटक, दर्शन आदि विषयों के अनेक ग्रन्थ संस्कृत मे आज कल भी रचे जा रहे हैं।

जो भाषा आज भी पचास करोड़ मनुष्यो के जीवन मे ओत प्रोत हो रही हो वह मृत कैसे कही जा सकती है? प्रातः काल उठते ही करोडो मनुष्य जिस भाषा मे अपने इष्टदेव को स्मरण करते हों वह मृत कैसे? स्नान के पश्चात् समुद्र पर, नदी कूल और दरिया के तट पर, किसी जलाशय के किनारे बैठकर करोडो भक्त जिस भाषा मे भगवत्पूजन करते हो वह मृतक कैसे? भारत की सारी प्रादेशिक भाषायें जिसके शब्द भण्डार से अशदान ले विकसित और पल्लवित हो रही हो उस भाषा को मृतक भाषा कहना या तो अज्ञता की परिकाष्ठा है अथवा अपने पक्षपात का भौंडा प्रदर्शन मात्र।

सत्यानन्द शास्त्री

वेद गोष्ठियां

पिच्छले दिनो चण्डीगढ़, दिल्ली, ज्वालापुर आदि नगरों में आयोजित की गई "वेदगोष्ठियां" पर्याप्त सफल रही। यद्यपि इनमे श्रोतागण इतनी अधिक सख्या मे उपस्थित नही हुए जितने दूसरे कार्यक्रमों—भजनों, व्याख्यानों, सम्मेलनों आदि—मे, किन्तु फिर भी सुनने के लिये आये व्यक्तियों की सख्या कम न थी, उत्साहवर्द्धक ही कही जानी चाहिये। वे विषय जिन पर इन गोष्ठियों में चर्चा हुई पर्याप्त सूक्ष्म और दुरूह थे, और ऐसे होने भी चाहिये। आखिर वेद सम्बन्धी सिद्धान्तों (अपने और विरोधियों के) की चीर फाड़ जो मुख्यतया इन गोष्ठियों का उद्देश्य है, सर्वसाधारण के लिये रोचक और आकर्षक नही हो सकती और विशेषकर आजकल के जनसाधारण के लिये। इस लिये पर्याप्त लोगों का इन गोष्ठियो में श्रोताओं के रूप मे उपस्थित होना आशाजनक चिह्न ही है। वे भावनाविभोर होकर नहीं आए थे, ज्ञानपिपासा से प्रेरित हो उपस्थित हुए थे। अत: हमारी राय में साधनसम्पन्न आर्य समाजों को ऐसी वेदगोष्ठियों का आयोजन करने में अधिक अभिरुचि प्रदर्शित करनी चाहिये।

ऐसी गोष्ठियों से दोहरा लाभ होगा। एक तो वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार होगा और दूसरे आर्य विद्वानों का मान बढ़ेगा, जिससे विद्या की कदर बढ़ेगी और वह वृद्धि को प्राप्त होगी। संसार मे आखिर विद्या की वृद्धि करना भी आर्य समाज का एक उद्देश्य है। आर्य समाज मे पिछले कुछ वर्षो से, अब से शास्त्रार्थ करने कराने का रिवाज बन्द हो गया है, विद्वानो का द्रुत गति से ह्रास हो रहा है। 'वेद गोष्ठी' कार्यक्रम के प्रचारित हो जाने से यह ह्रास तुरन्त रुक जाएगा। एक और तीसरा लाभ इससे यह होगा कि सुपठित लोगों का पढा पढाया विचारविनिमय से परिमार्जित हो कर तेजस्विता को प्राप्त होगा और "तेजस्वि नौ अवधीतमस्तु" इस प्रार्थना को सार्थक करेगा।

सत्यानन्द शास्त्री

प्रचार करना हैं तुम्हें

ले० कविराज बनवारीलाल शादाँ

आर्यो वेदो का अब, प्रचार करना है तुम्हे।
वेदवाणी से विश्व का, उद्धार करना है तुम्हें।।

वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सबसे पहला धर्म है।
मानवो सेवा करो, मानव का येही कर्म है।।
ऋषि सम अय आर्यो, उपकार करना है तुम्हे।।

वेद के पथ पर चलो, रुकने का अब ना नाम लो।
पथ-कठिन वैदिक बहुत है, अब न तुम विश्राम लो।।
वेदों के प्रचार का, विस्तार करना है तुम्हे।।

पाप भ्रष्टाचार को जगसे मिटाना है तुम्हें।
परोपकारी काम मे, अब मन लगाना है तुम्हे।।
अज्ञान के अन्धकार का, सहार करना है तुम्हे।।

भारतीय गौरव के गीतो, की भरी झन्कार हो।
रामराज की तरह, सबसे परस्पर प्यार हो।।
यह भावना शादाँ, भर तैयार करना है तुम्हे।।

"मधुपर्क" का सच्चा स्वरूप

श्रीमती तोष प्रतिमा एम० ए०

सस्कृत के "उत्तररामचरितम्" नाटक के चौथे अक मे महर्षि बाल्मीकि के आगमन पर उनके सत्कार मे प्रस्तुत किए गए मधुपर्क के सम्बन्ध मे लिखा है "समांसो मधुपर्क।" वहा इसका अर्थ भी "मांसयुक्त मधुपर्क" ही लिया गया है। यह भी ठीक है कि नाटक के इस सदर्भ मे इस मधुपर्क के मिमित गोवध किये जाने का सकेत भी मिलता है।

मधुपर्क (अतिथि के लिये दी गई भेंट) अवश्य मास युक्त होनी चाहिये यह धारणा उत्तर कालीन है। वैदिक युग मे "समांसो मधुपर्क" का यह अर्थ प्रचलित न था। "मास" शब्द का इस वाक्यास मे अर्थ "गोश्त" नहीं है। यहा मांस का अर्थ "गूदा" अर्थात् फल का भीतरी भाग है। "मासल" शब्द आज भी संस्कृत मे अधिक गूदे वाले फल के लिए प्रयुक्त होता है। इस वाक्याश का प्रयोजन इस तथ्य पर जोर देना रहा होगा कि अतिथि को दी गई भेंट केवल दूध जैसा द्रव पदार्थ ही नहीं होना चाहिये, अपितु उसमें कोई ठोस खाद्यपदार्थ अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए जो सारवान् और स्वास्थ्य-प्रद हो। लोगो के बिगडे हुए स्वाद ने बाद मे इस वाक्याश का मनमाना अर्थ निकाल लिया। और अतिथि को दी जाने वाली भेंट मे मास को सम्मिलित कर लिया। अतिथि के सामने परोसी गई भेंट को दिया गया नाम "मधुपर्क" ही बतलाता है कि इस मे शहद अवश्य मिलाया जाना चाहिए तथा इसे निश्चित रूप मे मीठा होना चाहिये। क्या कोई व्यक्ति सामान्य रूप से उसी समय मारे गये पशु के मास से अतिथि के लिये कोई मीठी चीज परोस सकता है। हर व्यक्ति जानता है कि मास से बनी वस्तु (dish) प्राय. नमकीन होती है, विशेषकर जब उसे स्वादिष्ट बनाना अभिप्रेत हो।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य मे "मधुपर्क" शब्द केवल एक बार ही आया है। वह स्थल है अथर्ववेदका निम्नमन्त्राश —"यथा यश सोमपीथे मधुपर्के यथा यश.' (अ० १०-३-२२)। अर्थात् "जैसा यश सोम पान मे है और जैसा यश मधुपर्क में है वैसा यश मुझे प्राप्त हो।" इस सदर्भ मे तो तनिक भी ऐसा सकेत नही मिलता कि जिससे अनुमान लगाया जा सके कि वैदिक मधुपर्क विधि मे मांस का परोसा जाना आवश्यक था। सच पूछो तो यह धारणा उत्तरकालीन लोगो के मस्तिष्क की उपज ही है।

सुराज्य के लिये प्रशासक क्या-क्या करे

—श्री बलभद्र कुमार कुलपति गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय

अपने देहावसान से एक वर्ष पूर्व सवत् १८८२ ईस्वी मे स्वामी दयानन्द ने कुछ महीनों के लिये उदयपुर मे कयाम किया। वहाँ के महाराणा सज्जन सिह उनके अनन्य भक्त थे और आप मे बहुत श्रद्धा रखते थे। स्वामी जी ने महाराणा के लिये जो दिनचर्य्या बना कर दी वह उल्लेखनीय है। आज कल के शासको के लिये भी प्रेरणादायी है इस लिये नीचे दी जाती है।

"प्रशासक को चाहिये कि रात के ३ बजे शय्या त्याग दे। शौचादि से निवृत हो कर चित्रक की छाल में रखा हुआ पानी का एक प्याला पीवे। तत्पश्चात् आधे घन्टे के लिये ध्यानमग्न रहे। इसके बाद घुडसवारी या पैदल हवाखोरी के लिये जावे और घूमते वक्त चीजो को बडे ध्यान से देखे। वापिस लौट कर दैनिक हवन यज्ञ करे। इससे वायु सुगन्धित होती है और वर्षा आकृष्ट होती है। नगर भर को लाभ होता है। फिर ९ बजे तक राज्य कार्य मे लगा रहे।

९ से ११ बजे तक भोजन आह्लाद आदि करे।

११ से १२ बजे तक आराम करे।

१२ से ४ बजे साय तक राज्य कार्य एवं कचहरी आदि करे।

शाम को घुडसवारी करते हुए फौज, बाग, महल और नगर आदि का मुआयना करे। वापिस लौटकर स्वाध्याय, अथवा गुणियो एव वैज्ञानिको से सत्सग करे अथवा साहित्य एवं इतिहास का अध्ययन एव श्रवण करे। तदुपरान्त भोजन एव चहलकदमी करे। चहलकदमी करते हुए सगीत श्रवण और तत्पश्चात् ६ घन्टे तक सोए। औरतो की कियामगाह मे कदापि न रहे। सप्ताह अथवा पखवाडे मे एक रात रानी के महल मे बिताये।"

रह क्या गया? कितना सयमपूर्वक, कितना सुलझा हुआ और वैज्ञानिक कार्यक्रम है। कहते है महाराणा सज्जन सिह इसका पूरे तोर पर परिपालन करने का यत्न किया करते थे।

स्वामी जी का दृष्टिकोण कितना विस्तृत था, उनका व्यावहारिक ज्ञान कितना गूढ और उनके आदर्श कितने ऊंचे थे, यह उन हिदायतों से प्रकट होता है जो उन्होने महाराणा सज्जन सिह के आग्रह पर उनके मार्गप्रदर्शन के लिये लिख कर दी थी। इनको यहाँ अक्षरश उद्धृत किया गया है ताकि इनके अध्ययन एव मनन से **भारत के आज के हाकिम और कर्णधार लाभ उठा सके।** यदि स्वराज्यधारी भारतीय गणतत्र के नेता इन आदेश कायदे कानूनो का निज इच्छा से अवलम्बन करे तो यहाँ सुराज्य की स्थापना होकर देश दृढ बलवान् एव शक्तिशाली हो सकता है। आज सब से बडी आवश्यकता देश को सम्पन्न एव शक्तिशाली बनाने की है। चाहे हम कितनी भी क्यों न बाहर से मदद मागे, अन्ततोगत्वा तो हमारी इज्जत हमारे अन्दर की शक्ति पर निर्भर है और हमारी अन्दरुनी शक्ति तब बन सकती है जब देश के २० करोड वयस्क नर नारी नित्य प्रति हर घन्टे हर मिनिट देश को सशक्त बनाने मे अपना तन मन धन लगावे। यह तभी हो सकता है जब हर मनुष्य यह समझे कि इस देश की, जिस व्यवस्था को बचाने की, दृढ करने की उससे प्रत्याशा की जाती है वह बचाने योग्य है, उसमे उसका हर प्रकार से कल्याण है, मगल है। समष्टि की परिवृद्धि मे ही व्यक्ति की वढोत्री है, भलाई है। जैसा कि स्टालिन ग्राड में हुआ।

जब निरकुश हिटलर की सेनाये स्टालिन ग्राड मे पहुँची तो हर मुहल्ले मे, हर मकान मे, हर मकान की हर छत पर उनका मुकाबला किया गया और नदी के प्रवाह की तरह आगे बढती हुई जर्मन फौज की प्रगति को वहीं रोक दिया गया। बहादर स्टालिन ग्राड वालो ने उनका ऐसा मुकाबला किया कि जर्मन फौजो को मुहँ की खानी पडी। ऐसा क्यो हुआ? वीर लाल सैना को अपनी सस्कृति, अपने निजाम से प्यार था। वे उसके बचाव के लिये हर कीमत अदा करने को तय्यार थे। हिन्दुस्तान की आजादी एवं राज्य-प्रणाली भी तभी सुरक्षित रह सकती है यदि जनता को इस बात का विश्वास हो जाये कि इस व्यवस्था मे ही इनकी बेहतरी है, भलाई है। यह विश्वास तभी हो सकता है जब राज्य के कर्मचारी चाहे वे चुने हुए नेता हों या प्रतियोगिताओं द्वारा नियुक्त किये गये अधिकारी हों, राज्य कार्य इस प्रकार से चलावें कि जन साधारण को यह अनुभव हो कि हमारे देश से बढ़ कर शासन की प्रणाली हो ही नही सकती। तभी देश की शान कायम रह सकती है। तभी देश अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों मे आदर पा सकता है। तभी देश की सरहदें दुश्मनों के हमलों मे सुरक्षित रह सकती हैं।

राज्य का सब से पहला फर्ज है न्याय प्रदान करना। सभी व्यक्तियों को, जनता को इस बात का विश्वास होना चाहिए कि हमें राज्य में न्याय मिलेगा। जहाँ से न्याय मिलता है उसमे श्रद्धा, आस्था एवं भक्ति बढ़ती है। राजा के लिये स्वामी जी ने लिखा है कि "वह कचहरी में हंसमुख एवं दयालु मुद्रा के साथ प्रवेश करे और जो लोग वहा विद्यमान हो उनमे हर्ष एवं सुख की भावना पैदा करे। मुद्दई, मुद्दालय, राज्य कर्मचारी, सभी लोगों को शकारहित करने के लिये दायाँ हाथ ऊचा उठाये। न्याय की कुर्सी पर बैठकर आँखें मूंद कर परमात्मा से प्रार्थना करे, 'हे न्यायमूर्ति, सर्वज्ञ, सर्वत्र विद्यमान, परमेश्वर, हम पर कृपा करो कि हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, दु:ख एव पक्षपात के वशीभूत हो कर अन्याय न कर बैठें। प्रभु हमारे सहाई हो।' उसको यह कदापि नही भूलना चाहिए कि लालच ही अन्याय की जड़ है। उसको लालच से हर कीमत पर बचना चाहिए। उसको किसी पक्ष से मित्रता अथवा अमित्रता नही करनी चाहिए, वरन् मध्यस्थ रहना चाहिए। जैसा कि परमात्मा करता है, हर एक के साथ एक जैसा बरताव, हर एक को सम्यक् दृष्टि से देखना, पक्षपातरहित रहना। राजा का भी यही परम कर्त्तव्य है।"

'प्रति सप्ताह, बृहस्पतिवार को सिविल और आदित्यवार को फौजदारी मुकदमे सुनने के लिये निश्चित करे। राजा को पक्षपात रहित हो कर मुद्दई एव मुद्दालय, मुस्तगीस एव मुलजिम की बात ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए। दोनो पक्षो को सत्य बोलने के लिये कडी से कडी कसम दिलवानी चाहिए। गवाह एक दूसरे से जुदा रखे जावें। पढाए हुए गवाहो पर विश्वास नही करना चाहिए। यह सब पर प्रत्यक्ष कर देना चाहिए कि झूठे गवाहो को न तो सम्मान मिलेगा, न ही आराम, न केवल इस जन्म मे वरन् अगले जन्म मे भी। इस छोटी सी जिन्दगी मे जो लोग सत्य बोलेंगे, सदाचार से रहेंगे, उनकी इच्छाएँ स्वत. पूर्ण होगी, परन्तु जो झूठ बोलेगे, दुराचारी बनेंगे, दु:ख पावेंगे। इसलिये अपने सुख के लिये और परमात्मा को खुश करने के लिये, सभी सत्य बोले। जो जिस के दिल मे है कहे। जज को चाहिए कि जो जिसके दिल मे है उसे भाँपने की कोशिश करे। गवाहो के रग-ढंग को उनकी मुद्राओ को भली भाँति देखे। वह ब्यान को ध्यानपूर्वक सुने और उसका विवरण लेखबद्ध कर ले, चाहे गवाह जबानदराज एव बड़बोला ही क्यो न हो? वकीलो के सवालो एव उनके उत्तरो को भी लेखबद्ध करे। स्वय प्रश्न पूछ कर बात को साफ कराये। यदि फिर भी मामला साफ न हो तो जहाँ वारदात हुई हो वहाँ के प्रतिष्ठित नर-नारियो से पूछताछ करे। यदि किसी परदा-नशीन औरत से पूछताछ हो रही हो तो इस बात का यकीन करवा ले कि परदे के पीछे वही औरत है जिसका ब्यान मतलूब है। जब वह जज के सम्मुख पेश हो तो इस बात का ध्यान रखा जाये कि कोई उसे परेशान न करे, न ही ठट्ठा मजाक करे। यदि फिर भी शका का समाधान न हो तो अपने विश्वस्त एलची भेज कर सही बात की जानकारी प्राप्त करे।"

"राजा को चाहिए कि सत्य बात जानकर दोषी को योग्य सजा दे और निदर्षो को सम्मान सहित विदा करे। जो पक्ष हार जाये उसका निरादर भी न किया जाये बल्कि उसे बताया जाये कि ऐसा करना उससे अपेक्षित नही था। उसको अपने खान्दान की इज्जत का ख्याल करना चाहिए। यह बडी खेदपूर्ण बात है। यदि उसने ऐसा कृत्य न किया होता तो उसे सजा क्यो मिलती? यदि कोई बदमाश या दु:खी पुरुष कोई ऊँची नीची बात कह दे तो उसे सन्तोष से सुनना चाहिए। हाँ अपना भी हर प्रकार से बचाव रखना चाहिए। दूसरे के मन में क्या है इसको जानने की सदा कोशिश करनी चाहिए। चाहे कोई कितना ही गिडगिड़ाए, अथवा करोडों रुपयो का दान करे, अन्याय कभी नही करना चाहिए। न्याय करने से राजा का मान, उसकी शोहरत, उसके साधन एव प्राधिकार बढ़ते हैं। उसको सभी प्रकार के झगड़े, चाहे भूमि के हों धन के हों, ट्रस्टों एव हद्दो के हों, जबानी अथवा लिखित हो, या चोट पहुंचाने के हों, पूर्णन्याय से निपटाने चाहियें। उसको अपना न्याय विभाग मनुस्मृति के ८ वें अध्याय एवं ९ वें अध्याय के अनुसार संगठित करना चाहिये, जिस में न्याय करने के अठाईस तरीके दिये हुए हैं।"

(शेष पृष्ठ ५ पर)

(पृष्ठ ४ का शेष)

इससे बढ़कर एक न्यायधीश के लिये क्या हिदायतें हो सकती हैं ? इनमे शहादत एक्ट का एवं जाब्ता दीवानी का निचोड आ गया है। यदि सभी न्यायाधीश उपरोक्त भाव से न्याय की गद्दी पर बैठें तो देश मे विश्वास एवं निष्ठा का वातावरण बनने मे क्या कसर बाकी रह जायेगी ?

इसी बात का निचोड़ भर्तृहरि के प्रसिद्ध श्लोक में यू दिया गया है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात् पथ: प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥

अर्थात् "नीति निपुण लोग चाहे आप की श्लाघा करे अथवा निन्दा करे, लक्ष्मी आवे अथवा जावे, आज मरण हो अथवा युगान्तर के बाद हो, न्याय के पथ से धीर लोग कभी विचलित नहीं होते।"

स्वामी जी आगे चल कर हिदायतों में बताते हैं, कि "कचहरी का काम समाप्त कर के राजा १५ मिनट के लिये विश्राम करे और फिर सवा पांच बजे तक राज्य काज के बारे में मशीरो से सलाह मशवरा करे और जनता जनार्दन को मुलाकात का मौका दे।

यदि प्रातः काल का भोजन १० बजे किया है तो दूसरी जरूरियात से फारिग हो कर ६ बजे शाम का भोजन करे और फिर पैदल हवाखोरी के लिये जाये। सर्दियो में प्रार्थना के बाद खाना खाये। शीत काल में सैर और प्रार्थना पांच और सात बजे के दर्मियान करे और साढ़े सात बजे रात्रि का भोजन करे।

तत्पश्चात् १५ मिनट का मौन रखे हाथ मुह अच्छी तरह धोये, कुल्ला करे और पान खाये। तदनन्तर एक सौ कदम चले और फिर दोनो बाजू थोडी देर के लिये लेटे।

पौने आठ से नौ बजे तक अपने प्रतिनिधियो से देश विदेश की रिपोट सुने और उचित आदेश दे।

नौ दस बजे तक आमदनी खर्चे का हिसाब ले और अगले दिन का कार्यक्रम निश्चित करे।

अगले आध घन्टे मे, अपने वजीरो और मित्रो से हसते हुए प्रसन्न वदन विदाई ले और साढे दस बजे बिस्तर पर जा लेटे। गर्मियो मे दस बजे लेट जाये। उस समय परमात्मा का धन्यवाद करे और प्रार्थना करे कि "हे प्रभु कल का दिन भी इसी तरह सुख और आराम से गुजरे।'

मगलवार को सरकारी कर्मचारियो की ज्यादतियो के विरुद्ध आरोप सुने। बुध, शुक्र और शनि को मन्त्रियो आदि से परामर्श करे। और देशभक्त एव विद्वान् लोगो से विचार-विनिमय करे कि देश के उत्थान के लिये क्या-क्या व्यावहारिक कदम उठाये जाये।'

राजा के लिये कितना नपा तुला सयममय जीवन बिताने का आदर्श बतलाया गया है। एक एक घडी का कार्यक्रम बान्ध दिया गया है। राजा अपने लिये नही वरन् प्रजा के लिये जीता है। प्रजा उसे राजा इसी लिये नियुक्त करती है कि वह प्रजा की चौबीस घन्टे या तो सेवा करे या अपने आपको सेवा के योग्य बनाने में लगा रहे। अपने स्वास्थ्य को, बुद्धि को, मन को, बलवान् बनाये और "सर्वहिताय" अर्थात् "जनहिताय" अपना तन मन धन अर्पण करदे। ऐसा राजा आदर्श राजा है। फिर ऐसे ही उसके कर्मचारी होने चाहियें। तभी जनता की राज्य मे श्रद्धा कायम रह सकती है। तभी जनता भी राज्य एव देश के लिये अपना सर्वस्व देने को उद्यत हो सकती है।

—o—

आवश्यकता है

एक सुयोग्य प्रबन्धक की जो वैदिक धर्म प्रचार की भावना से अनुप्राणित हो और सभा से संबंधित राजागार्डन स्थित डिस्पैंसरी के कार्यभार को सम्भालने के लिये तय्यार हो। स्टाफ के कार्य की निगरानी, आयव्यय का नियन्त्रण तथा डिस्पैंसरी से संबन्धित अन्य कार्यों की देखभाल उसकी जिम्मेवारी होगी। उचित उपलब्धियों के अतिरिक्त रहने के लिये क्वाटर भी दिया जायेगा। केवल वे व्यक्ति ही जो प्रशासनकार्य का अनुभव रखते हों आवेदन पत्र भेजने का कष्ट करें, जो कि मन्त्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ के नाम आने चाहियें। इस डिस्पैंसरी के लिए एक आंखों का शल्य-चिकित्सक की दरकार है। इस 'पोस्ट' के लिए भी आवेदन पत्र सभा-मन्त्री के नाम ही आने चाहियें।

परिपत्र संख्या-१९

आर्य समाजों के निर्वाचन सम्बन्धी स्पष्टीकरण

सभा के परिपत्र संख्या-19 दिनाक 12/4/78, जो आर्य समाजों को अपने सभासद घोषित करने के सबंध मे लिखा गया है, उसके उपलक्ष में निम्न स्पष्टीकरण सभावित भ्रान्ति निवारणार्थ आवश्यक है।

सभासदों की घोषणा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संशोधित उपनियमो की धारा 4 के अनुसार ही की जानी आवश्यक है। मत देने का अधिकार केवल घोषित सभासद को ही होगा। सभासद घोषित करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रस्तावित सभासद का नाम आर्य समाज मे सदाचार पूर्वक दो वर्ष तक अंकित रहा हो, सत्सगो में 25% उपस्थिति हो एवं जो अपनी आय का शताश देता हो। किसी भी ऐसे सदस्य का शताश वर्तमान काल में एक रुपया मासिक से न्यून नही होना चाहिए। सदाचार की परिभाषा यह है "संध्या आदि नित्य कर्म, शुद्ध वृत्ति, वैदिक सस्कार, पत्निव्रत व पतिव्रत आदि सदाचार है"। "व्यभिचार, मद्यादि मादक द्रव्यो और मॉसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन, जुआ, चोरी, छल, कपट, रिश्वत आदि दुराचार है।"

2 आर्य समाजे निर्वाचन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखे कि अधिकारी एव अन्तरग सदस्य जहा तक हो सके समय देने वाले कर्मकाण्डी एवं नवयुवक हों। प्रत्येक आर्य समाज आर्य वीरदल का अधिष्ठाता भी नियुक्त करे और प्रत्येक आर्य समाज आर्य वीरदल एव आर्य कुमारसभा का सचालन अवश्य ही करे।

सरदारी लाल वर्मा, सभामन्त्री

निर्देशिका

(दिल्ली की समस्त आर्य समाजों को)

कुछ समय से अनुभव किया जा रहा था कि दिल्ली नगर मे आर्य समाज के विशाल सगठन का सामूहिक रूप में परिचय प्राप्त नही हो पाता। इस स्थिति को ध्यान मे रखते हुए आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली ने निश्चय किया है कि दिल्ली की समस्त आर्य समाजों, आर्य स्त्री समाजो तथा आर्य शिक्षण सस्थाओ की एक निर्देशिका तैयार कराई जाये जिसमे प्रत्येक आर्य समाज का पूर्ण परिचय उपलब्ध हो। यत्न किया जा रहा है कि निर्देशिका इस प्रकार की हो कि जिसमे आर्य समाजो तथा उनसे सम्बन्धित सस्थाओ की सम्पूर्ण जानकारी मिल सके। इसलिये राजधानी की आर्य समाजों के मन्त्री महोदयो से अनुरोध किया जाता है कि वे अपनी आर्य समाज से सम्बन्धित जानकारी निम्न तालिका मे अंकित कर आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली के कार्यालय १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली मे भेजने की कृपा करे—

१. समाज का नाम
२. पूरा पता
३. अधिकारियो के पद, नाम, पते, टेलीफोन नम्बर आदि नीचे दिये गये फार्म के अनुसार

पद	नाम	घर का पता	दुकान/कार्यालय का पता	टेलीफोन घर/कार्यालय का

४ आर्य समाज द्वारा चलाई जा रही सस्थाओ के नाम तथा उनका सक्षिप्त कार्यविवरण।

—o—

आर्य समाज माडल टाउन का वार्षिकोत्सव

आगामी ८ से १४ मई १९७८ को आर्य समाज माडल टाउन दिल्ली का २२ वां वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जायेगा। इस उपलक्ष मे प्रति दिन प्रात ६ से ८ बजे तक चतुर्वेद शतक यज्ञ का आयोजन किया गया है, जिसके ब्रह्मा प० राजगुरु शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रदेश होंगे। साय ८ से ९ बजे तक रोजाना उक्त पण्डित जी सी ब्लाक पार्क मे वेदकथा भी किया करेंगे। मुख्य समारोह १३ तथा १४ मई को समाज मन्दिर में ही होगा। श्री राम गोपाल वानप्रस्थ, प० प्रशान्त कुमार वेदालकार, डा० सत्यकाम वेदालकार आदि आदि के भाषण होंगे और माता ब्रह्मशक्ति की अध्यक्षता में महिला सम्मेलन भी होगा। समस्त आर्यबन्धु सम्मिलित होकर धर्म-लाभ प्राप्त करें।

[पृष्ठ १ का शेष]

सिकन्दर उनको धमका सकता है जो धन चाहते हों या मौत से डरते हों। मैं इन दोनों से बेन्याज हूं। ब्राह्मण स्वर्ण से प्रेम नहीं करता और न ही मौत से डरता है। जा, अपने राजा सिकन्दर से कह दे : 'दण्डी स्वामी तुझ से कुछ नहीं चाहता। इसलिये तेरे पास आने को तैयार नहीं। हां यदि तू उससे कुछ चाहता है तो उसके पास जा, बिना खटके जा, झिझक नहीं"।

जब सिकन्दर ने सेनाध्यक्ष "ओनिसि-क्रेट" से दण्डी स्वामी के आत्माभिमान से पूर्ण उपर्युक्त तेजस्वी वचन सुने तो मन में बहुत ही 'पशेमान' हुआ। होता भी क्यों न। जिस जाति के उद्भट योद्धाओं को वह अपने बाहुबल से जीत चुका था; उसी जाति के एक वृद्ध नंगे ब्राह्मण साधु से उसे मात खानी पड़ी।

[पृष्ठ २ का शेष]

प्रिंटरों और छपाई आदि के साधनों की पूरी व्यवस्था की जानी चाहिए और राजभाषा नीति के निर्धारण, कार्यान्वयन, अनुवाद, प्रशिक्षण और भाषाओं के विकास के लिये सभी राज्यों में स्वतन्त्र राजभाषा विभागों की स्थापना की जानी चाहिए।

सम्मेलन ने यह भी अनुभव किया कि यदि मन्त्रिमण्डल के सदस्य तथा उच्चस्तर के अधिकारी राजभाषाओं में स्वयं काम करें तो उससे नीचे के कर्मचारियों को भी वैसा करने की प्रेरणा मिलेगी।

इस सम्मेलन में यह तय हुआ कि भारतीय भाषाओं से संबंधित कार्य करने वाले अधिकारियों के वेतनमान उसी प्रकार का कार्य अंग्रेजी में करने वाले अधिकारियों के समकक्ष होने चाहियें।

अखिल-भारतीय सेवाओं आदि की भर्तीपरीक्षाओं में हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के वैकल्पिक प्रयोग के बारे में सरकार के निर्णय का सम्मेलन ने स्वागत किया। साथ ही, यह सिफारिश की कि प्रश्नपत्र अंग्रेजी के अलावा उन भाषाओं में भी बनें और इन परीक्षाओं में उम्मीदवारों के लिए एक भारतीय भाषा का पर्चा भी अनिवार्य रखा जाए। सम्मेलन ने सिफारिश की कि राज्यों की सभी भर्तीपरीक्षाओं में उनकी क्षेत्रीय भाषाएं भी माध्यम बनाई जाएं। ✻✻

मुक्ति के साधन

(१) चांदपुर के मेले में स्वामी जी ने मुक्ति के साधन इस प्रकार बताए—

(क) मुक्ति का पहला साधन सत्याचरण है। (ख) दूसरा साधन वेद-विद्या का ठीक रीति से लाभ करना और सत्य का पालन करना है। (ग) तीसरा-सत्पुरुषों और ज्ञानी जनों का सत्संग करना है। (घ) चौथा—योगाभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से निकाल कर सत्य में स्थापन करना है। (ङ) पांचवां—ईश्वर की स्तुति करना, उसकी कृपा का यशवर्णन करना, और परमात्मकथा को मन लगा कर सुनना है। और (च) छठा साधन प्रार्थना है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए—"हे जगदीश्वर कृपानिधे ! हमारे पिता ! मुझे असत् से निकाल कर सत् में स्थिर करो। अविद्या-अन्धकार और अधर्माचरण से पृथक् करके ज्ञान और धर्माचरण में सदा के लिए स्थापित करो। जन्ममरण रूप संसार से मुक्त कर अपनी अपार दया से मोक्ष प्रदान करो।"

(२) उदयपुर में एक रामस्नेही साधु के उत्तर में महाराज ने उपदेश किया—

"परमानन्द की प्राप्ति के लिए नामी के गुणों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जैसे शब्द के साथ ही अर्थ का बोध हो जाता है, जल कहते ही शीत-गुण प्रधान द्रवीभूत जल पदार्थ की प्रतीति हो जाती है. ऐसे नाम लेते ही उसके वाच्य का ज्ञान होना चाहिए। जैसे जल शब्द कहते ही उसके वाच्य का ज्ञान होना और उसकी प्राप्ति की क्रिया करना परमावश्यक है, ऐसे ही नाम और उसके अर्थ को जानना तथा उसकी उपलब्धी के लिए प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आदि क्रिया-कलाप का करना अतीव आवश्यक है।" (दयानन्द प्रकाश)

आर्य समाज गांधी नगर का वार्षिक उत्सव ८ मई से १४ मई १९७८ तक मनाया जा रहा है जिसमें अथर्ववेदीय यज्ञ श्री श्यामसुन्दर जी स्नातक द्वारा तथा कथा पं० शिवकुमार जी शास्त्री द्वारा होगी। उत्सव में स्वामी ओमानन्द जी, पं० रामकिशोर जी वैद्य, स्वामी स्वरूपानन्द जी, श्री सत्यपाल जी मधुर, आदि-आदि पधारेंगे।
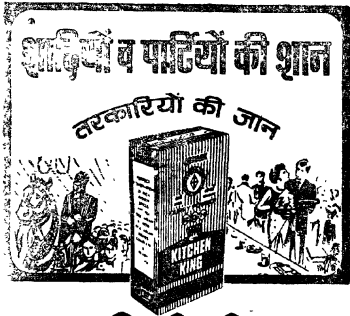
आर्य समाजों के सत्संग

७-५-७८

अन्धा मुग़ल प्रताप नगर—प्रो० सत्यपाल बेदार, **अमर कालोनी**—डा० नन्दलाल; **अशोक विहार**—प० देवेन्द्र आर्य, **आर्य पुरा**—प० विश्वप्रकाश शास्त्री, **किंग्ज वे कैम्प**—श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा, **कृष्ण नगर**—प० सूर्यप्रकाश स्नातक, **गुड़ मन्डी**—प० महेशचन्द करतारसिंह भजनमन्डली, **जोर बाग़**—प्रिंसिपल चन्द्रदेव, **तिलक नगर**—प० प्रकाशवीर शर्मा व्याकुल कवि; **दरिया गज**—स्वामी ओ३म्-आश्रित; **नारायण विहार**—प० रामकिशोर वद्य, **न्यू मोती नगर**—स्वामी सूर्यानन्द, **बसई दारापुर**—प० ओ३म् प्रकाश आर्य भजनोपदेशक, **टैगोर गार्डन**—प० श्रुतबन्धु, **माडल बस्ती**—प० वेदपाल शास्त्री, **महावीर नगर**—आचार्य हरिदेव, **महरौली**—प० तुलसीराम भजनोपदेशक, **मोती बाग**—प० वेदप्रकाश महेश्वरी, **लाजपत नगर**—प० सत्यकाम वर्मा, **लड्डू घाटी**—प० ब्रह्मप्रकाश शास्त्री; **विक्रम नगर**—प० देवराज वैदिक मिश्नरी, **विनय नगर**—प० प्रकाशचन्द वेदालकार, **शक्ति नगर**—प० प्राणनाथ सिद्धान्तालकार, **सराय रोहेल्ला**—प० गनेशदत्त वानप्रस्थी, **सुदर्शन पार्क**—प्रो० भारत मित्र, **हरी नगर घन्टाघर**—स्वामी भूमानन्द, **हनुमान रोड**—प० हरि शरण, **हौजखास**—प० सत्यभूषण वेदालकार,

आर्य समाज स्थापना दिवस

आर्य समाज अड्डा होश्यारपुर जालन्धर मे इस वर्ष आर्य समाज स्थापना समारोह बडी धूमधाम से मनाया गया। गत १४.१५ तथा १६ अप्रैल को प्रतिदिन प्रात स्वस्तियज्ञ सम्पन्न हुआ । साथ श्री रामनाथजी के भजनो के उपरान्त इरा राज श्री श्यामसुन्दर जी स्नातक द्वारा वेदकथा की जाती रही । श्री स्नातक जी ने जीवन के चार स्तम्भ—भोजन, स्नान, परोपकार तथा ईश्वर-स्तुति पर बडे सुन्दर और सारगर्भित व्याख्यान दिये । रविवार १६ अप्रैल को रामनोमी के उपलक्ष मे रामजीवन पर दिया गया उनका भाषण जनता ने बहुत ही पसन्द किया ।

संस्कृत के लिए योगदान

गत १५-४-७८ को आर्य समाज मन्दिर कोटा (राजस्थान) मे "एक मासीय निशुल्क सस्कृत शिक्षण शिवर" का दीक्षान्त समारोह श्री हरिकुमार औदीच्य की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ । इस अवसर पर प्रमाणपत्र वितरित करते हुए श्री कृष्णकुमार गोयल केन्द्रीय राजमन्त्री ने कहा कि आर्यसमाज प्राचीन भारतीय साहित्य को सुरक्षित रखने तथा देववाणी सस्कृत को जन-साधारण के लिए सुलभ बनाने का प्रशसनीय कार्य कर रहा है। स्मरण रहे कि श्री सोमदेव शास्त्री ऐसे एक मासीय निशुल्क सस्कृत शिक्षण शिवर सफलतापूर्वक ब्यावर, पाली, अजमेर, बीकानेर, प्रतापगढ, कुशलगढ आदि मे भी लगा चुके हैं । इस योजना से हजारो अनभिज्ञ विद्यार्थियो को सस्कृत सीखने का सु-अवसर प्राप्त हुआ है ।

आ० स० बाजार सीताराम का निर्वाचन

आर्य समाज बाजार सीताराम देहली का वार्षिक चुनाव रविवार दिनाक २३ ४-७८ को सम्पन्न हुआ । निम्न पदाधिकारी सर्वसम्मति से चुने गये ।

प्रधान—श्री श्यादरमल गुप्ता, उपप्रधान—सर्वश्री देवराज अग्रवाल, दिवानचन्द पल्टा तथा सुर्जनसिह आर्य, मत्री—श्री मामचन्द रिवारिया, कोषाध्यक्ष—श्री बाबूराम आर्य, पुस्तकाध्यक्ष—श्री अर्जुनसिह ।

शिमला चलो

११ से १४ मई १९७८ तक शिमला मे हिमाचल प्रदेश की समस्त समाजे मिलकर आर्य समाज शताब्दी समारोह मना रही है। आप भी सम्मिलित होकर समारोह की शोभा बढाये । जाने के लिये बसो का प्रबन्ध किया गया है । सभाकार्यालय १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली—१ से सम्पर्क करे ।

सरदारीलाल वर्मा, सभामन्त्री

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा [illegible] गली, गाँधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म्   कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१   दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये,   एक प्रति ३५ पैसे   वर्ष १   अंक २८   रविवार २१ मई, १९७८   दयानन्दाब्द १५३

भारतीय इतिहास लेखन

युरोपीय लोगो का कहना है कि भारतीय लोग इतिहास लिखना नही जानते थे। मुसलमानो के आने से पूर्व उन्होने इतिहास लिखा ही नही। रामायण महाभारत को वे इतिहास नही मानते। जिस देश मे केवल काश्मीर जैसे छोटे से प्रदेश का इतिहास **"राजतरंगिणी"** जैसा विशाल ग्रन्थ हो उस देश के वासियो के सम्बन्ध मे यह कहना कि वे इतिहास लिखना नही जानते थे, कितना बडा झूठ है। जिस जाति की आयु हजारो नही, लाखो नही, करोडो नही अपितु अरबो वर्ष की हो, जिसने सहस्रो उत्थान तथा पतन देखे हो, जिसके सरस्वती भण्डार विदेशीय आक्रामको द्वारा सैकडो वर्षो तक जलाये जाते रहे हो, उस देश का इतिहास यदि शृंखला-बद्ध न मिले तो आश्चर्य ही क्या है? आश्चर्य तो यह है कि इतने विनाशकारी विप्लवो को सहते हुए यह जाति बच सकी। भारत मे पैदा हुए अभारतीय भावनाओ मे पले डा० इकबाल तभी तो वाध्रित होकर इस जाति के सम्बन्ध मे लिखते है—

यूनानो, मिस्रो रोमा सब मिट गये जहा से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशा हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी
सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा।
इकबाल कोई महरम अपना नही जहा मे,
मालूम क्या किसी को दर्दे निहा हमारा।

राजतरंगिनी मे अनेको इतिहास ग्रन्थो का नाम सकीर्त्तन है। ऐसी ही अवस्था नीलमत पुराण की है। प्राचीन समय में तो भारतीय विद्वान् इतिहास को एक विशेष विद्या मानते थे। छांदोग्य उपनिषद् मे एक कथा आती है कि पुराने समय मे महाविद्वान् नारद महामुनि सनत्कुमार के पास ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिये गये। नारद ने वहाँ पहुचकर प्रार्थना की, 'महाराज! मुझे उपदेश दीजिये।" मुनिवर सनत्कुमार बोले, "पहले यह तो बताओ कि आपने अब तक क्या पढा है।" नारद जी ने अपना जो पढा पढाया था सुनाया। उसमे स्पष्ट ही 'इतिहासपुराणम्" शब्द विद्यमान है। अत. यह कहना कि भारतीयो को इतिहास नही आता था, कोरी गप्प है।

यदि कहो कि आज जो इतिहास की परिभाषा है, उसकी कसौटी पर भारतीय इतिहास पूरा नही उतरता, तो उसका उत्तर यह है कि इस पचास वर्ष के भीतर 'इतिहास' की कई परिभाषाए बनी और अस्वीकृत हुई है। इसका क्या सबूत है कि यह परिभाषा जो आज सर्वमान्य है हमेशा ही सर्वमान्य बनी रहेगी। आज भी तो यह सर्वमान्य नहीं हो पाई। भारत मे इतिहास की एक सीधी सादी परिभाषा परिचलित रही है। उस पर भारतीय इतिहास पूरा उतरता है। उस परिभाषा के अनुसार रामायण और महाभारत इतिहास सिद्ध होते हैं। ये दोनो ग्रन्थ आर्य जाति के गौरव की गाथाओ को सुरक्षित किए हुए है।

उत्तरकालीन काव्य-नाटक साहित्य इन दो ग्रन्थो के आख्यानो के आधार पर निर्मित हुआ है। रघुवंश का प्रधान आधार रामायण है। शकुन्तला नाटक महाभारत पर आश्रित है। भास के अधिक नाटक महाभारत के ऋणी है। अर्थगौरव वाला भारविकृत "किरातार्जुनीय" पाण्डवो के वनवास काल की एक घटना को लेकर लिखा गया है। हर्षचरित महाभारत का अनुग्रहीत है। भवभूति के उत्तररामचरित का उपजीव्य रामायण का उत्तरकाण्ड है। वर्तमान समय मे काव्य नाटक सम्बन्धी जो साहित्य मिलता है, वह अति विशाल है। जैनियो ने राम लक्ष्मण तथा पाण्डवो के सम्बन्ध मे अनेक गद्य-पद्य ग्रन्थ लिखे हैं।

पुराणो मे भी इतिहास की पुष्कल सामग्री है। इनमे अनेक स्थानो पर किसी राजवंश के राजाओ का उल्लेख करते हुए एक महत्वपूर्ण बात कही गई है, जिसकी युरोपीयन इतिहासान्वेषक उपेक्षा कर जाते हैं। वह यह है कि इस देश के यही राजा नही हुए, ये तो वे है जो अपने किसी कार्य विशेष के कारण अति प्रसिद्ध हो गये।

यह तो साधारण सी बात है कि विशिष्टता तो किसी-किसी के भाग्य मे ही होती है। शेष तो जन्मते मरते है। भारतीय इतिहास की यह विशेषता ध्यान मे रखने योग्य है। अन्यथा करोडो वर्षो के सुदीर्घ काल म हुए सभी राजाओ आदि का नाम सकीर्त्तन करना भी असम्भव सी बात है। अति दीर्घ पुरानी जाति का विस्तृत रूप मे ब्योरे वार इतिहास कैसे लिखा जा सकता है। यदि लिखा जाये तो कितना बडा होगा। तनिक अनुमान लगाए। ●

वेदोपदेश

ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

य० ३१।१८

शब्दार्थ—(अहम्) मैं (एतम्) इस (महान्तम्) महान् (आदित्यवर्णम्) आदित्य प्रकाशक (तमस) अन्धकार से (परस्तात्) परे (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हू। (तम्) उसको (एव) ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम्) मृत्यु को (अति एति) लाघ जाता है (अयनाय) मुक्ति-प्राप्ति के लिये (अन्य) दूसरा (पन्था) मार्ग (न) नही (विद्यते) है।

भगवान् सब प्रकाशको का प्रकाशक है, अन्धकार का लवलेश भी उसमे नही। उस पूर्ण परमात्मा को जाने बिना जीव का कल्याण नही हो सकता। यही विचार अथर्ववेद (१०।८।४४) मे इस प्रकार प्रतिध्वनित हुए है—**अकामो धीरो अमृत स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोन। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मान धीरमजरं युवानम्॥**" अर्थात् वह कामनाओ से रहित अविकारी, महाज्ञानी, बुद्धिदाता, अविनाशी, अपनी सत्ता के लिए दूसरो से निरपेक्ष, रस से आनन्द से भरपूर, कही से भी कम नही है। उस ही धीर अविचल, अजर, बूढे न होने वाले, सब से मिला हुआ होते हुए भी सब से पृथक् अथवा सदा जवान, सदा ज्ञानक्रियाशक्तिसपन्न भगवान् को जानने वाला मौत से नही डरता।

भगवान् आप्तकाम है, इसलिये उसमे चचलता नही, वह धीर है। वह अजन्मा है अतएव अविनाशी भी है। वह आनन्द से भरपूर है। किसी प्रकार की भी उसमे त्रुटि या न्यूनता नही है। वह सब मे समा रहा है। किन्तु फिर भी है सबसे भिन्न। वह भगवान् सदा एकरस रहता है। मृत्यु और वृद्धावस्था उसे छू तक नही गई। ऐसे भगवान् को जान लेने से मृत्यु का भय हट जाता है।

स्वर्ग० स्वामी चैतन्य देव

—जगदीश प्रसाद आर्य M A, B T नीमच

श्री स्वामी चैतन्य देव जी का बचपन का नाम श्री गोबर्धन लाल था। आपका जन्म सवत १६१४ वि० को ग्राम गगराना, मारवाड की वीर प्रसूता भूमि मे श्री छोटे लाल जी के घर हुआ था। बाद मे आप देवास आ गये। आप प्रारम्भ से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। केवल २० वर्ष की अवस्था मे ही जब आप ज्ञानप्राप्ति के लिये किसी अच्छे गुरु की खोज मे नाथ द्वारा जा रहे थे तो रेल के डिब्बे मे ही आपको सत्यार्थप्रकाश पढने को मिला। पढते ही हृदय मे सत्य का प्रकाश देदीप्यमान हो गया। आपने सत्यार्थ प्रकाश को अपना सच्चा गुरु माना। मन मे यह निश्चय कर लेने के बाद सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सस्कार विधि आदि मगवा कर उनका खूब स्वाध्याय किया। आपने मानव समाज को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश मे लाने का सकल्प किया तथा जीवन के ६६ वर्ष इसी साधना मे लगा दिये। उस समय आर्य समाज के नाम से लोग भडकते थे। यहाँ तक कि सन् १८६३ मे जब आपने देवास मे प्रथम आर्य समाज की स्थापना की तो लोगो ने श्री भागीरथ जी के मकान को (जहाँ यज्ञ हुआ था) जला दिया तथा आर्यो पर झूठा आरोप लगाकर १० आर्यों को पकडवा दिया। अभियोग तो चला मगर सब बरी हो गए। श्री गोबर्धन लाल जी का कद लम्बा, वर्ण गौर व व्यक्तित्व आकर्षक था। आपके चेहरे पर दृढता तथा मुस्कराहट सदा विराजमान रहती थी। ६ मार्च १८६७ को आपने अपनी दवा की दुकान पर आर्य मुसाफिर पं० लेखराम जी के हत्यारे को पकड़ कर पुलिस के हवाले किया, किन्तु पुलिस ने उसे छोड दिया। आपने अपने साथियो सहित भूख प्यास सह कर बाद मे उसे गाँव-गाँव बहुत ढूढा पर वह मिला नहीं।

विरोधी लोग आपको बहुत कष्ट देते थे। वे आपके माता-पिता के पुतले बना कर बाजार मे निकालते। कोई उन पर थूकता, कोई जूते मारता, कोई मुह पर कालिमा पोतता, बाजार मे उनकी अर्थी निकालते, तथा मुह मे जो आता बकते, लेकिन यह महर्षि के भक्त, वैदिक धर्म के दीवाने उनकी किसी बात का बुरा न मनाते अपितु दुगने वेग से काम करते। आपकी दीवानगी का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आपने "ओ३म्" का झण्डा हाथ मे लेकर नगर-नगर, ग्राम-ग्राम पैदल घूम-घूम कर वैदिक धर्म की दुन्दुभी बजाई। आपके प्रचार का तरीका सरल व ठोस था। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नही होगा कि मालवा प्रान्त की कई आर्य समाजे आपके प्रभाव मे ही स्थापित हुई हैं। आर्य समाज के प्रचारको, विद्वानो, भजनोपदेशको व कार्य कर्त्ताओ को आपके त्यागमय जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

प्रबल विरोध होने पर भी १-२ फरवरी १६०३ को आपने आर्य समाज देवास का प्रथम वार्षिकोत्सव बडी धूम-धाम से मनाया। एक बार आपके कार्यो से प्रभावित होकर महाराजा साहब बडौदा आर्य समाज मन्दिर मे पधारे। देवास के दोनो महाराजा साहब नियमित रूप से समाज मे पधारते रहे। दोनो ही राजा श्रीमन्त तुको जी राव बापू साहब पवार तथा श्रीमन्त मल्हार राव बाबा साहिब पवार श्री गोबर्धन लाल जी का उनके सदाचार, सादगी व सत्याचरण के कारण बडा सम्मान करते थे। यहाँ के उत्सवो पर आपने समय-समय पर श्री प० गणपति जी शर्मा, श्री प० रुद्रदत्त जी सम्पादकाचार्य और स्वामी नित्यानन्द जी जैसे उच्च कोटि के सन्यासियो व विद्वानो को बुलाया।

श्री गोबर्धन लाल जी कई वर्षो तक आनरेरी मेजिस्ट्रेट व पचायत कोर्ट के जज भी रहे। आपका घराना पूर्ण आर्य था। आपने अपने सुपुत्र श्री प० वीरसेन जी (वर्तमान वेदश्रमी जी) को आयुर्वेदिक शिरोमणी तथा वेद का विद्वान् व गुरुकुल वृन्दावन का स्नातक बनाया और सुपुत्री सत्यवती देवी को कन्या गुरुकुल हाथरस मे शिक्षा दिलाकर स्नातिका बनाया और वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार उनके विवाह किये।

श्री गोवर्धन लाल जी मालवे मे प्रथम आर्य पुरुष है जिन्होने वानप्रस्थी होकर अपना नाम सत्यानन्द और सन् १६३८ मे सन्यास लेकर अपना नाम स्वामी चैतन्य देव ग्रहण किया। आप कट्टर राष्ट्रवादी थे। ८५ वर्ष की आयु मे आप कुँवर चाँद किरण जी शारदा के जत्थे के साथ हैदराबाद सत्याग्रह मे गए और गुलबर्गा जेल मे रहे। राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा की जयन्ती पर गाँव-गाँव मे पैदल प्रचार करते हुए आप अजमेर पहुचे।

वैदिक धर्म के सच्चे अनुयायी, मालव प्रदेश मे आर्य समाज का नाद गुजाने वाले महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, नर नाहर २० नवम्बर १६४६ की अर्धरात्रि को वेदमन्त्रो का जयघोष करते हुए इस भौतिक देह को यही छोडकर आदित्य लोक को प्रस्थान कर गये। 卐

आर्य समाज शताब्दी समारोह शिमला सम्पन्न

११ से १४ मई तक शिमला में आर्य समाज का शताब्दी समारोह आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश द्वारा उत्साह पूर्वक महिला पार्क मे मनाया गया। इस अवसर पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ला० राम गोपाल जी वानप्रस्थी एव उपमन्त्री श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के उपप्रधान श्री आचार्य पृथ्वी सिंह जी आजाद, हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी रामेश्वरानन्द जी एव दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री सरदारी लाल वर्मा पधारे। आर्य जगत् के अनेक सन्यासी महात्मा व उपदेशक स्वामी सुरेश्वरानन्द जी सरस्वती, स्वामी सत्यप्रकाश जी, स्वामी स्वात्मानद जी, केन्द्रीय राज्य मन्त्री श्री प्रो० शेर सिंह जी, श्री ओ३म् प्रकाश शास्त्री खतौली वाले, श्री प्रो० उत्तमचंद जी शरर पानीपत, प्रो० राजेन्द्र जी जिज्ञासु अबोहर, हिमाचल प्रदेश के शिक्षा मन्त्री श्री दौलत राम जी चौहान व चीफ पारलियामेन्ट सचिव श्री रूप सिंह जी, श्रीमती कमला जी आर्या लुधियाना एव श्रीमती कमला जी प्रभाकर पधारी।

समारोह मे महिला सम्मेलन, वेद सम्मेलन, कवि सम्मेलन, राष्ट्र निर्माण व समाज सुधार सम्मेलन एव शताब्दी सम्मेलन सम्पन्न हुए। जिनमें आर्य समाज एव राष्ट्र की अनेक समस्याओ के सदर्भ मे आर्य नेताओ ने अपने विचार दिये एव प्रस्ताव पारित किये गये।

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध आर्य भजनोपदेशक श्री ओ३म् प्रकाश जी वर्मा, श्री पन्ना लाल जी पीयूष ने उपस्थित जनता मे अपने मनोहर एव शिक्षाप्रद भजनो से प्रचार किया। शनिवार साय ५ बजे एक विशाल शोभायात्रा निकाली गई जिसका नेतृत्व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाल, श्री सच्चिदानद जी शास्त्री, स्वामी रामेश्वरानन्द जी, प्रो० उत्तमचद जी शरर, आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश के प्रधान श्री विद्याधर जी, मन्त्री श्री सत्यप्रकाश जी महन्दीरत्ता, श्री चमन लाल जी आदि महानुभाव कर रहे थे। इस शोभा यात्रा की शिमला मे धाक जम गई। दिल्ली से सभामन्त्री श्री सरदारी लाल जी वर्मा के साथ दो विशेष बसो एव रेल गाडी द्वारा दो सौ से अधिक आर्य बहिन-भाईयो ने इस आयोजन की सफलता मे अपना योग-दान दिया एव सभा की ओर से ग्यारह सौ रुपये की राशी भी भेंट की।

शिमला निवासियो ने इस आयोजन मे बाहर से पधारे आर्य बहिन-भाईयो के आवास एव भोजन का सुन्दर प्रबन्ध किया। ऋषिलगर मे तीन हजार यात्री एक समय भोजन करते रहे। भोजन का प्रबन्ध भी अतिसुन्दर था जिसका सचालन श्री ग्रोवर जी कर रहे थे।

इस सारे आयोजन की सफलता के लिये हम हिमाचल प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री प० विद्याधर जी, मन्त्री श्री महन्दीरत्ता एव अधिकारियो को बधाई देते है। आर्य नवयुवको ने इस समारोह मे भारी सख्या मे सम्मिलित होकर इसकी सफलता मे चार चाद लगा दिये। शिमला में गुण्डो द्वारा वहाँ के सुप्रसिद्ध व्यापारी के २६ वर्षीय पुत्र के निरकुश कत्ल किये जाने के कारण शुक्रवार १२-५-७८ को पूर्णहडताल के बावजद भी समारोह पूर्णतया सफल रहा।

वैदिक धर्म क्या है ?

"हमे स्मरण रखना चाहिए कि आर्य समाज का उद्देश्य ससार का उपकार करना है, आर्य समाज के सिद्धान्तो का प्रत्येक देश मे प्रचार करना है। न्याय की दृष्टि से आर्य समाज न हिन्दुओ का पोषक है, न मुसलमानी धर्म वालो का, न ईसाईओ का। प्रत्येक धर्म की जो मिथ्याचारिता है, उससे उस धर्म को हमे विमुक्त करना है।

धर्म+मिथ्याचारिता=साम्प्रदायिक धर्म।

यह समीकरण सभी साम्प्रदायिक धर्मों के लिए एक सा है।

वैदिक धर्म+अन्ध विश्वास=हिन्दुत्व।

इस समीकरण का भी यही अर्थ है। असत्य मिथ्याचारिता या अन्धविश्वास किसी भी साम्प्रदायिक धर्म मे से आप निकाल दें तो जो बचता है, वही सच्चा धर्म या वैदिक धर्म है। आर्य समाज इसी का पोषक है, और इसी अभिप्राय से स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश से चतुर्दश तक चारो समुल्लास लिखे थे। जब हम 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" कहते है, तो हमारा अभिप्राय मिथ्याचारिता असत्य और अन्धविश्वास का उन्मूलन है। अत स्मरण रखना चाहिये कि व्यापक दृष्टि से आर्य समाज हिन्दुत्व नही। चौदहवे समुल्लास की अनुभूमिका मे कुरान का खण्डन करने से पूर्व महर्षि दयानन्द ने ये शब्द लिखे हैं—'न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ बुराई या भलाई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सबको विदित होवे"। (स्वा० सत्यप्रकाश सरस्वती के आर्य सम्मेलन कलकत्ता मे दिये गये अध्यक्षीय भाषण से)

सम्पादकीय

स्वा० विज्ञानानन्द का स्वास्थ्य

संन्यास आश्रम गाजियाबाद के अध्यक्ष जी स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती आजकल अस्वस्थ हैं। आप की आयु ९७ वर्ष से ऊपर है। पिछले डेढ वर्ष से लगातार बीमार चले आ रहे हैं। अब दशा और भी बिगड गई है। गत शनिवार १३-५-७८ सायं उन के दर्शन करने के लिये जब मैं आश्रम पहुचा तो अपने कमरे मे 'मर्गूरगी' की हालत मे चारपाई पर लेटे हुए थे। बार-बार जगाने पर भी नही जागे। एक दो बार आखें अवश्य खोली, परन्तु बोले नही। एक सप्ताह से उन का खाना पीना, चलना फिरना बन्द हो गया है। बोलने की भी सामर्थ्य नही रही। औषध उपचार हो रहा है। डाक्टर रोजाना आता है और जो उचित समझता है दवा दारू देता है। आश्रम वासी धन्यवाद के पात्र हैं जो इतने वयोवृद्ध बीमार सन्यासी को लगातार पिछले डेढ वर्ष से बिना माथे पर शिकन लाये सभाले हुए हैं, हर प्रकार से सेवा सुश्रूषा कर रहे हैं।

अठानवे वर्ष की अपनी आयु मे ८० वर्ष से ऊपर स्वामी जी महाराज ने आर्य समाज की सेवा की है। आश्रम का विशाल भवन और विरजानन्द वैदिक संस्थान का बृहत्प्रकाशन-कार्य उन के ही परिश्रम का फल है। मारिशस में आज जो आर्य समाज का बोल बाला है, इस का भी अधिकतर श्रेय उन को ही है। आप ने १९२५—३२ तक मारिशस मे गाँव गाँव घूम कर जो महर्षि दयानन्द का दिव्य सदेश लोगो तक पहुंचाया वह आज फल ला रहा है। उन का जितना व्यक्तिगत सपर्क लोगो से है, शायद ही किसी और का होगा। सैकडों परिवार ऐसे हैं जिन मे जीवित तीनो पीढिया— पिता, पुत्र और पौत्र— उन की उपकृत हैं और उन्हें गुरु तुल्य मानती हैं। जन सम्पर्क निमित्त प्रतिदिन बीस तीस मील चलना उन का रोजका काम रहा है, इन दिनो ही नही, बहुत पहले से, उस दिन से जिस दिन आर्य समाज मे प्रविष्ट हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विभूति भी अब कुछ दिनो की ही महमान है।

सत्यानन्द शास्त्री

साहित्य सृजन-नये अवसर

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ससार की बदली हुई परिस्थितियो के कारण भारतीय आर्य समाजी भूमण्डल के सभी देशो मे बिखर गये हैं। उगाण्डा, केनिया, टैंजानिया की अप्रतिकूल स्थितियो से भयभीत होकर ये युरोप, केनाडा और अमरीका मे आकर बसते जा रहे हैं। दक्षिणी अमरीका मे भी भारतीय आर्य समाजी पर्याप्त संख्या मे पहुंच चुके हैं। इसी प्रकार सूरिनाम (जो कि पहले डचो के अधीन था और अब स्वतन्त्र हो चुका है) को छोड कर अनेको भारतीय आर्य समाजी परिवार हालेण्ड आकर बस गये हैं। ब्रेजील और मेक्सिको में भी भारतीय आर्य समाजियो के कुछ परिवार आकर रहने लग पडे हैं। इस प्रकार अब हम विदेशों मे रहने वाले इन आर्य समाजियो के माध्यम से आर्य समाज के सिद्धान्तो को भूगोल मे सर्वत्र प्रवृत्त करने (प्रचारित और प्रसारित करने) की स्थिति में हो गये है। सचमुच यह बड़े ही सौभाग्य की बात है।

रक्तसाक्षी पं० लेखराम ने आततायी के छूरे से क्षत-विक्षत होने के पश्चात् अन्तिम श्वास छोडने से पूर्व इच्छा प्रकट की थी कि "आर्य समाज मे 'तस्नीफ' (साहित्यसृजन) का कार्य बन्द न होने पाये"। "शहीदे अकबर" की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिये आर्य समाज यथाशक्ति प्रयत्न करता रहा है और उसे इस दिशा मे कुछ न कुछ सफलता मिली भी है। किन्तु यह सफलता सन्तोषजनक नही। आर्य समाज का मुख्योद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार करना है। वैदिक धर्म ईश्वरीय ज्ञान वेद की शिक्षाओं पर आधारित होने के कारण मनुष्य मात्र के लिये है, किसी देश या जाति विशेष की बपौती नही, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक है। अत. हमे हिन्दी मे ही नहीं, न केवल भारतीय भाषाओं मे ही अपना साहित्य सृजन करना है, हमे तो संसार की सब भाषाओं मे आर्य साहित्य का निर्माण करना-करवाना है।

मारिशस में हम फ्रांसिसी भाषा में आर्य साहित्य का सृजन करवा सकते हैं। डरबन (दक्षिण अफ्रीका) में बसे आर्य समाजियों के द्वारा अफीकान तथा जुलू भाषाओं में, नैरोबी (केनिया) में बसे आर्य समाजियो के माध्यम से अंग्रेजी और स्वाहिली भाषा में आर्य साहित्य का सृजन करवाया जा सकता है। इसी प्रकार सूरिनाम मे रहने वाले आर्य समाजी डच भाषा मे आर्य साहित्य लिखावा सकते हैं। लन्दन और बैंकोवर (कनाडा) मे रहने वाले आर्य समाजी अंग्रेजी मे, मौण्ट्रियल (कनाडा) मे बसे आर्य समाजी फ्रांसिसी मे, हाकाग मे रहने वाले आर्य भाई चीनी और जापानी भाषाओ मे आर्य साहित्य का निर्माण करवा सकते है। यह अपूर्व अवसर है जो आर्य समाज के प्रचार और प्रसार के लिये प्रभु कृपा से उपस्थित हुआ है। तवा गरम है। दुनियां भूखी है, विशेष कर स्वस्थ विचारों के लिये लालायित है। जरूरत इस बात की है कि हम तत्परता से रोटिया पका व्यग्र जनसमूह मे बाट दें। आर्य समाज को इस प्रभुप्रदत्त अवसर को हाथ से नही जाने देना चाहिये।

आह स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती

बाये कालम में छपा सम्पादकीय कम्पोज हो चुका था जब १६/५/७८ को प्रात: मुझे ज्ञात हुआ कि विरजानन्द वैदिक सस्थान के अध्यक्ष तथा दयानन्द वैदिक सन्यास आश्रम गाजियाबाद के आचार्य पूज्यपाद स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती का कल सायं ७ बजे सन्यास आश्रम गाजियाबाद मे देहान्त हो गया है। मैं खबर पाते ही गाजियाबाद के लिये चल पडा। वहाँ जाकर स्वामी जी महाराज के शव को देखा तो ऐसा जान पडा मानों सोए हुए हो। मुख की आकृति पूर्ववत् थी। प्राण पखेरू हो जाने के पश्चात् भी उसमे कोई विकृति न आई थी। शवयात्रा आश्रम से साढे नौ बजे आरम्भ हुई। सारे गाजियाबाद मे से होकर यह यात्रा ग्यारह बजे श्मशान भूमि (जो हिण्डन नदी के तट पर स्थित है) पहुंची। गाजियाबाद की जनता के अतिरिक्त जो कि पर्याप्त सख्या मे अर्थी के साथ थी दिल्ली से भी स्वामी जी महाराज के अनेकों भक्त उनके अन्तिम दर्शन पाने के लिए श्मशान भूमि आये हुए थे।

अन्त्येष्टि सस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न कराया गया जिसकी विशेषता यह थी कि घृत और सामग्री इतनी पुष्कल मात्रा मे थी कि अन्त्येष्टि के सम्पूर्ण मन्त्रो का एक बार ही नहीं दो बार पारायण कर लेने पर भी समाप्त नही हुई। इस सम्बन्ध मे अन्तिम हवन आश्रम मे बृहस्पतिवार साय पाँच बजे होगा।

—सत्यानन्द शास्त्री

ताकत का पुतला इन्सान

—कविराज बनवारी लाल शादाँ

तेरी कृति को देख दग है, बुद्धि हमारी है भगवान।
तूने कैसा रच डाला ये, ताकत का पुतला इन्सान॥

नस नस हड्डी हड्डी कहती, अद्भुत तू कारीगर है।
जितना सोचे उतनी गहरी, लगती रचना ईश्वर है॥

क्या वजूद है क्या दिमाग है, क्या विचार है क्या करनी।
दुर्गम कृति की महिमा भारी, क्यो कर जा सकती बरनी॥

थल को जीता जल को जीता, चला जीतने अब आकाश।
कष्ट उठाये जीवन गालर, तो भी होता नही निराश॥

सिंह, बाघ, हाथी को इसने, अपना दास बनाया है।
सागर की गहराई पर भी, निज अधिकार जमाया है॥

पानी, आग, हवा पर इसका, कब्जा होता जाता है।
ले विज्ञान नई खोजो को, करतब बदला जाता है॥

यह छोटी सी मगर पहेली, नहीं किसी ने बूझी है।
इस शरीर की उलझन कैसे, हल हो यही न सूझी है॥

अक्ल लगाई टक्कर मारी, आखिर को मानी है हार।
हे प्रभु तेरी इस रचना का, पाया नही किसी ने पार॥

बेहद इसे बडाई बख्शी, इसे बनाया है बलवान।
सब कुछ जान लिया है इसने, "आप" न जाने हे भगवान॥

'शादाँ' इसको और समझ दे, कहते तुझको लोग महान।
अपने को पहचान सके, यह ताकत का पुतला इन्सान॥

—०—

प्रशासकों के लिये आचारसंहिता

—श्री बलभद्र कुमार कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मेरे पिछले लेख "स्वराज्य के लिये प्रशासक क्या क्या करे" मे पाठक वे हिदायतें जो महर्षि दयानन्द ने महाराणा उदयपुर को देशीय राजाओं (आज कल के सदर्भ मे भारत के प्रशासको) की दिनचर्य्या के सबन्ध मे दी थी पढ ही चुके हैं। उन हिदायतो के अतिरिक्त स्वामी जी महाराज ने महाराणा सज्जन सिंह (उदयपुर महाराज) के लिये उनकी विशेष प्रार्थना पर ५१ विशेष हिदायतें लिख कर दी थी। वे भी बहुत गम्भीर और विचारणीय हैं। यदि आज के भारतीय प्रशासक उनका पालन करें तो निश्चय ही राजकाज मे अद्भुत सुधार हो। राजा अपने काम मे कभी भी अकेला सफल नही हो सकता। जब तक रानी उसको सहयोग न दे, राजा को यज्ञ का फल नहीं मिल सकता। रानी के सहयोग के बिना राजा का यज्ञ अधूरा ही रह जाता है। इसलिये अत्यन्त आवश्यक है कि राजा और रानी मे सर्वदा प्रेम बना रहे और रानी राजा की सहचरी और अनुगामिनी हो। यह कैसे हो, इस सबन्ध मे स्वामी जी महाराज लिखते हैं :—

१—जब पति और पत्नि मिलें तो एक दूसरे को नमस्ते कहे और सदा ऐसा बर्ताव करें कि उनका प्रेम चिरस्थायी रहे। इसके विपरीत कोई भी आचरण न करें।

२—मैथुन के थोडी देर बाद दोनो स्नान करें और केसर और मिश्री से सुगन्धित किया हुआ नीम गरम दूध पियें। यत्पश्चात् मुंह धो कर जुदा-जुदा पलंगों पर सो जावें।

३—दोनों अपने शरीर, मन और अन्य साधनों से अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिये पूरा यत्न करें और धर्मोपार्जन एव जनहित के कामो में तल्लीन रहे।

४—वे किसी ऐसे धार्मिक झगडे मे न फसे जो वेदविरोधी अथवा अयुक्तियुक्त हो। वे वैदिक मार्ग पर अग्रसर हों एव दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दे।

५—अपने देश मे अथवा परदेस मे वे सर्वदा प्रयत्न करे कि लोग वेदानुयायी बनें। हा यदि फिर भी कोई मनुष्य युक्तियुक्त रास्ता नही अपनाता और कूए मे गिरना चाहता है, तो यह उसकी बदकिस्मती है।

६—जब बुरे आदमी अपनी बुराई नही छोड़ते तो अच्छे आदमी अपनी अच्छाई क्यों छोड़े।

७—सदा वैदिक और शास्त्रानुकूल नीति को धारण करें। आर्य ऋषियो के बताये रास्ते पर चलें। अपना तन, मन, धन सर्वसाधारण के हित में लगावे। स्वय सदा शास्त्रीय भाषा का प्रयोग करें। परन्तु परराष्ट्र सबन्धी कार्य मे, जहाँ विदेशी लोग अपनी भाषा नहीं समझते अथवा हमसे अधिक शक्तिशाली हैं, उनकी भाषा सीखें।

८—मामले को बिना अच्छी तरह समझे-बूझे कोई आदेश जारी न करे। सब आदेशो को लेखबद्ध करें। इस बात को देखें कि आदेशो की समयानुसार पालना की जाती है या नही।

९—जो आदेशों का समयानुकूल पालन करते हैं, उन्हें इनाम दिये जावे और जो ऐसा नही करते हो उन्हे सजा दी जावे।

१०—कोई भी नौकरी छोटी या बडी योग्यता को परखे बिना न दी जावे। अयोग्य पुरुष को कभी कोई कार्यभार न दिया जावे। हर काम योग्य पुरुषो की संरक्षता मे कराया जावे। गरीब और लालची पुरुषों को ऊँची पदवी तत्काल नही देनी चाहिए। रिश्तेदारों अथवा मित्रों को एक ही विभाग मे नियुक्ति नही करनी चाहिए।

११—वेदानुयायी लोगों को दूसरे धर्मानुयायियों के नीचे कभी न रखें। न्यायादि विभाग छोड कर जहाँ रिश्वत का मौका मिल सकता है—यदि वैदिक धर्मानुयायी लोग दूसरा काम न कर सकें तो—वह इन लोगों से कराया जाए।

१२—जो लोग ३० वर्ष तक राज्य की वफादारी और मेहनत से सेवा करें उन्हें आधे वेतन के बराबर पैंशन दी जाये। यदि कोई कर्मचारी युद्ध मे मारा जाये तो उसके बीबी बच्चो को इतनी ही पैंशन तब तक मिले जब तक वे वयस्क न हो जावें। जब वे वयस्क हो जावें तो उन्हे योग्यतानुसार नौकरी दी जाये। विधवा को आयुपर्यन्त गुजारा दिया जाये। यदि मृत पुरुष केवल ५ रुपये पा रहा था, तो पूरी पैंशन दी जाये परन्तु जब पुत्र वयस्क हो जावे तो पैंशन आधी कर दी जावे।

१३—सब बच्चो को अनिवार्य रूप से पढाया जाये और उनसे ब्रह्मचर्य का पालन कराया जाये।

१४—कोई पुरुष २५ साल से पहले और कोई स्त्री १६ साल से पहले विवाह न करे। विवाह स्वयंवर पद्धति से रचाये जायें, अर्थात् स्त्रियाँ पुरुषों को वरें।

१५—राजा ध्यान रखे कि उसकी शोहरत और प्राधिकार दिनो दिन बढते रहें। इनमे कमी कभी न आने पावे।

१६—जो उसका हक्क है उसे कभी न छोडे और जो दूसरो का हक्क है उसका लोभ न करे।

१७—सेना द्वारा लूटे हुए धन का १६ वां भाग वसूल करे। परन्तु जो साधन और जायदाद विजय से प्राप्त हों उसका १६ वां भाग सेना मे बाँटे और १५ बटा सोलहवाँ भाग राज्य में दाखिल करावे।

१८—युद्ध मे आहत शत्रु की रक्षा करे और उसका इलाज करावे। स्त्रियो, बच्चों, बूढों, दुखियो, डरपोको एव शरणागतों के विरुद्ध कभी शस्त्र प्रयोग न करे।

१९—विजय के बाद शत्रु का निरादर न करे। उसका यथायोग्य सम्मान करे। हां उसको कभी स्वतत्र न करे।

२०—जो अपने पास नहीं है उसे प्राप्त करने के लिये सदा प्रयत्न करें। जो है उसका सरक्षण करे और उसकी परिवृद्धि करें। आय मे जितनी बढोत्री हो उसका व्यय शिक्षाप्रसार, धर्मप्रचार, समाजकल्याण एव अनाथ-रक्षा आदि शुभ कामो में करे।

२१—धन का उपयोग सदा बच्चों की शिक्षा मे करे, ना कि शादी व्याह मृत्यु आदि के अवसर पर।

२२—तुच्छ बातों से दूर रहे। वेश्याओ से, रखेलियों से, नाचरग से, विदूषको चापलूसों एव चारणों की झूठी प्रशसा से बचे और दूसरो को बचावे।

२३—युवावस्था प्राप्त होने पर २५ वर्ष की आयु पर अपने योग्य अपनी पसंद की लडकी से ब्याह करे। उसी के साथ यथासमय मैथुन करे। यदि गलती से एक से अधिक शादी हो जाये तो सब पत्नियों से पक्षपातरहित बर्ताव करे।

२४—इस बात का ध्यान रखें कि उनमे प्यार मुहब्बत के बारे मे सब मे बराबर का बर्ताव हो।

२५—सब पत्नियो मे यह भानना हो कि यदि एक के यहाँ पुत्र हुआ है तो सभी उसकी माताएँ है।

२६—राजा रानी के लिये आवश्यक है कि परस्पर प्रेम से व्यवहार करें और ऐसा आचरण करे जिससे परस्पर प्रेम बढे और उनके और प्रजा के बीच भी स्नेह कायम रहे, इसके विरुद्ध कुछ न करे।

२७—प्रशिक्षित गुप्तचरो द्वारा कर्मचारियों एव जनता की भली-बुरी प्रवृत्तियो की सदा जानकारी रखे। सदा ऐसे काम करे कि उनकी अच्छी प्रवृत्तिया फले-फूले और बुरी प्रवृत्तियाँ दबें।

२८—यदि कोई अधिकारी बुरा काम करे तो उसे सख्त सजा दी जाये। शेर को कुकृत्य से रोकना, बकरे को कुकृत्य से बचाने की निस्बत अधिक श्रेयस्कर है।

२९—करविधान ऐसा होना चाहिये जिससे किसानों की और दूसरो की खुशहाली बढे। राजा प्रजा को सन्तान की तरह रखे, क्योंकि उसी के द्वारा राज्य की वृद्धि होती है।

३०—यदि कोई शत्रु समझाने से, सुलह सफाई से अथवा भेद डालने से काबू न आये तो उसे सजा देनी चाहिए।

३१—किसी सदाचारी पुरुष से न झगडा करे न लडाई मोल ले। हाँ दुराचारी का निस्संकोच दमन करें।

३२—सब काम श्रेष्ठ पुरुषो के बहुमत के अनुसार करने चाहिएं। जनता की राय हर ऐसे विषय मे लेना आवश्यक है जिसका उससे सम्बन्ध हो। हर कायदे कानून के अच्छे-बुरे पहलू पर उनसे वाद-सवाद कर के पूरी तरह-गौर करना चाहिए। तदुपरान्त अच्छे कायदे कानून लागू किये जावें और बुरे कायदे तर्क किये जावें।

३३—अपना और अपने परिवार का साधारण एवं असाधारण खर्चा सुनिश्चित नियमों के अनुसार करना चाहिए।

३४—यदि किसी व्यक्ति को उसके अच्छे कार्य के सिलसिले मे, या किसी धार्मिक सस्था को कोई मासिक भत्ता या जागीर दी जाये तो वह केवल उसके आयुपर्य्यन्त ही उसका भोग करे या जब तक कि उस भत्ते अथवा जागीर का सदुपयोग किया जाता है, उसके बाद नही।

३५—यदि किसी पूर्वज की दी हुई जागीर की शर्तों का ठीक तौर से पालन नहीं किया जा रहा, उसका पुनर्ग्रहण करना ही अभीष्ट है।

३६—अलबत्ता यदि किसी धार्मिक एव खैरायती सस्था को कोई जागीर दी गई है और उसके सचालक ठीक ढग से व्यवहार नही करते तो भी वह जागीर पुनर्ग्रहण न की जाये, वरन् दुष्ट सचालको को हटाकर श्रेष्ठ पुरुषो के हवाले कर दी जाये। यदि वे भी सदुपयोग न करे तो अन्य व्यक्तियो को दी जाये। यदि भोक्ता के परिवार मे कोई श्रेष्ठ व्यक्ति नही है, तो किसी और योग्य व्यक्ति के सुपुर्द कर दी जाये, चाहे वह किसी अन्य परिवार का ही हो।

३७—हाँ यदि किसी भोक्ता के वारिस भोविता से अधिक योग्य हो तो उनका हिस्सा अयोग्य लोगो की जागीर कम कर के बढ़ा देना चाहिए।

३८—यदि न्यायाधीश अथवा राजा अन्याय करे तो राज्य कर्मचारियों एवं जनता के श्रेष्ठ वर्ग से अपेक्षित है कि वह राजा का इस बारे मे विरोध करे। यदि वह फिर भी उनकी बात न सुने तो हटा दिया जाये और उसके स्थान पर उसके परिवार के किसी योग्य सदस्य को नियुक्त किया जाये। ऐसी नियुक्ति सर्वथा पक्षपातरहित होकर करनी चाहिए, क्योंकि राजा की नियुक्ति सर्वसाधारण के कल्याण, शिक्षा के प्रसार एव धर्म के प्रचार के लिये ही होती है।

३९—राजा को चाहिए कि राज्य की आय का एक दसवा हिस्सा धार्मिक एव खैरायती कामो मे खर्च करे। इस धन से शिक्षक और प्रचारक नियुक्त किये जाये ताकि वे वैदिक धर्म और सही शिक्षा का प्रचार करें। प्रतिकूल परिस्थितियो मे यह धन राज्य की रक्षा के लिये व्यय किया जा सकता है।

४०—बाकी ९ बटा १० आय मे से २ भाग सचित निधि मे २ भाग राज्य परिवार के खर्च के लिये, ३ भाग फौज के लिये, एक भाग सार्वजनिक कार्यों पर और एक भाग वैज्ञानिक और तकनीकि मामलो पर खर्च किये जाएं।

४१—राज्य का कारोबार किसी हद तक व्यक्ति विशेष के सुपुर्द नही करना चाहिए। यह जनता और कर्मचारियों की सहमति से चलाना चाहिए।

४२—जो भी राजा नियुक्त हो उसके प्रति किसी को भी मनसा, वाचा और कर्मणा लेशमात्र निरादर का भाव प्रकट नही करना चाहिए। यदि अधीनस्थ अधिकारी ऊँचे अधिकारी से किसी बात मे श्रेष्ठ भी हो तो भी उच्चाधिकारी का यथायोग्य सम्मान करना अभीष्ठ है और राजा को तो परमात्मा से उतर कर दूसरे नम्बर पर ही मानना चाहिए।

४३—सब कर्मचारियो से वान्छित है कि राज्य के आदेशो को अपने जीवन से अधिक महत्वशाली समझें, चाहे राज्य के आदेशो से उनके मित्रों एव सबन्धियों पर कोई भी असर पडता हो। उनकी पक्षपातरहित पालना वान्छनीय है। राज्य की आज्ञा का उल्लघन सर्वथा अक्षम्य है।

४४—यह अत्यावश्यक है कि आज्ञाएँ पूरे सोच-विचार के बाद जारी हों। तत्पश्चात् यह बहुत जरूरी है कि उनका पूरी तरह पालन हो।

४५—राजा एव अधिकारी वर्ग को अपने शरीर एव आत्मा का इतना ध्यान नही करना चाहिये जितना सामाजिक नीति का।

४६—राज्य के सुप्रबन्ध के लिये तीन परिषद् स्थापित करने चाहिए। राज्यपरिषद्, शिक्षापरिषद् और धर्मपरिषद्।

४७—इन तीनों परिषदो मे राज्य कर्मचारियो एव जनता के प्रतिनिधि नियुक्त किये जावे। राज्य कर्मचारी राज्य के हित का एव जनता के प्रतिनिधि जनहित का ध्यान रखें। सभी कायदे कानून इन परिषदो के परामर्श से बनाने चाहिएं।

४८—इनके बनाए कायदो की अवहेलना करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाना अभीष्ट है।

४९—सब अधिकारियो के लिये आवश्यक है कि वे मनुस्मृति के ७ वे, ८ वें और ९ वें अध्याय के तात्पर्य मुद्दों एव व्यावहारिक आदर्शों को अच्छी प्रकार समझें। इनमें राजनीति और सकट कालीन परिस्थितियो मे क्या कर्त्तव्य है इस विषय पर बडी सुन्दर समालोचना की गई है। इसी तरह ऋषि विदुर के आदेश भी बड़े शिक्षाप्रद हैं। इन सबका भली भांति प्रचार किया जाए।

५०—जो कानून पास किये जाएँ उपरोक्त परिषदो के परामर्श से एव वैदिक विधान के अनुसार किये जाये।

५१—यह कहना अनावश्यक है कि जैसी भावनाएँ आचरण उत्साह एव शक्ति राजा दिखलाता है सर्वसाधारण भी वैसा ही करते है। इसलिये मुखियों का यह कर्त्तव्य है कि वे सर्वदा सात्विक एव न्यायपूर्ण ढग से बरताव करें। झूठे और गलत रास्ते पर चलने वाले मुखिया का लोग अनुकरण करने लग जाते है। राजा उनके आचरण के लिये जिम्मेदार है। इसलिये राजा को सदा जागरूक एव सतर्क रहना चाहिए।"

कितनी महत्वपूर्ण यह हिदायते हैं। आज जब भारत को स्वराज्य प्राप्त हो चुका है। देशभर में हजारो नही लाखो व्यक्ति राज सिंहासन पर बैठे हैं। हमारे नेता गण सहमत हैं कि उनके लिये आचार सहिता बनाना आवश्यक हो गया है। यह है बनी बनाई आचारसहिता। सुराज्य से स्वराज्य अच्छा है। परन्तु स्वराज्य को स्थाई रखने के लिये इसे सुराज्य बनाना होगा,

(क्रमश)

"कुछ आप बीती कुछ जग बीती"

स्वामी श्रद्धानन्द के आत्मसस्मरण (१३)

(अनुवादक—प्रि० कृष्णचन्द एम० ए०, एम० ओ० एल०, शास्त्री)

(२३-४-७८ मे छपे लेख से आगे)

लाहौर के साथ मलेरिया का गहरा सम्बन्ध है। सम्भवत कोई ही ऐसा वर्ष होगा जब वर्षा ऋतु की समाप्ति पर मलेरिया के आक्रमण से ७५ प्रतिशत लाहौर निवासियो के मुख मेडक की भांति पीले न पड जाते हो। इस लाहौरी मलेरिया ने मुझे भी दबा लिया। ज्वर इतना चढा कि थर्मामीटर का पारा १०६ डिग्री तक पहुच गया। मेरी यह अवस्था थी जब मुझे ज्ञात हुआ कि अमृतसर क्षेत्र के निवासी एक सरदार महोदय अपनी समस्त सम्पत्ति एक आर्य स्कूल अमृतसर मे खोलने के लिए ने दी है और उनका धन्यवाद करने के लिए आर्य समाज मन्दिर ल दान एक विशेष समारोह होगा। मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं इस हौर मैं मे सम्मिलित होऊँ। परन्तु जो समय उस समारोह का था, समारोह ज्वर चढा करता था। मेरे मित्र एक बगाली बाबू लाहौर उस समय मुझे के छात्र थे, उस वर्ष अन्तिम परीक्षा देने वाले थे। उन्ह मेडिकल कालेज मध्याह्नोत्तर साढे चार बजे मुझे वे समारोह मे सम्मि ने प्रतिज्ञा की कि देगे। और हुआ भी ऐसा ही। मुझे प्रात काल से लत होने के योग्य बना होने लगी और बारह बजे तक ६ ग्रेन कोनीन ि ही कोनीन की भरमार मन्दिर मे चला गया। मुझे ज्वर तो न था बना दी गई। मैं आर्य समाज कानो मे ऐसे ढोल बज रहे थे कि वहा परन्तु निर्बलता बहुत थी और भाषणो को स्पष्ट रूप से सुनने मे भी बैठना कठिन हो रहा था। वहा साहस दिलाने वाले दृश्य को कभी कठिनाई हो रही थी। मैं उस प्रथम मन्दिर भी अधूरा था। उत्तर ि भूल नही सकता। लाहौर का आर्य समाज निर्माण करने की तय्यारी जा शा का भवन गिरा हुआ था और उस के अधिकारी स्वय दरियां ि री थी। आर्य समाज लाहौर के बडे-बडे प्रसिद्ध वर्षों तक देखता रहा। छा रहे थे। वह पुरानी गोल मेज, जिसे मैं बीस जिसके निकट खड़े हो कर व्याख्यान देने को मैं अपना गौरव समझने लग गया था। इस गोल मेज पर उस दिन अत्यन्त सुन्दर मेज-पोश बिछा हुआ था और उसे फूलदानो से सुशोभित किया गया था। लाहौर के बडे-बड़े धनी मानी व्यक्ति आमन्त्रित हो कर पधारे हुए थे। बहुत भाषण हुए। सरदार महोदय को पुष्पमालाएं पहनाई गईं, अभिनन्दनपत्र प्रस्तुत किया गया। उनके आत्मत्याग की सराहना की गई और पुष्पवर्षा हुई। यह उत्साह-वर्धक दृश्य देखकर मैं अपने निवास-स्थान पर लौट आया। मुझे खेद के साथ लिखना पडता है कि उस सरदार महोदय ने अपने पुत्र द्वारा अदालत मे दावा करा कर अपना दान पुन वापिस करा लिया। परन्तु इस दृश्य का प्रभाव मुझ पर अच्छा ही पडा। इस प्रकार तुरन्त ज्वर उतारने का सौदा मेरे लिए महगा पडा। दूसरे दिन अत्यन्त प्रबल रूप से पुन ज्वर चढा। मेरे मित्र भाई सुन्दरदास जी ने परामर्श दिया कि मै हकीम नूरुद्दीन, जिन पर उन का पूर्ण विश्वस था, की चिकित्सा कराऊ। भाई जी का तर्क मुझे

(शेष पृष्ठ ६ पर)

(पृष्ठ ५ का शेष)

अब तक स्मरण है। उन्होंने कहा कि भारतवासियों को भारतीय ओषधि ही अनुकूल है। और अंग्रेजी ओषधियों द्वारा चिकित्सा कराने वालों के सम्बन्ध में यह कहावत चरितार्थ बतलाई कि—"देसी कुतिया और विलायती बोली।" मैं बहुत निर्बल था। अतः गाड़ी पर बैठ कर हकीम जी के पास नगर में पहुचा। हकीम जी की मुखाकृति देखते ही मुझे विश्वास हो गया कि उनकी चिकित्सा से ही मैं स्वस्थ हो जाऊंगा। प्रथम तो उन की धैर्य दिलाने वाली बातों ने मुझे मुग्ध कर दिया और जब सम्भवत दो माशे लाल रंग की पिसी हुई दो पुड़िया दे कर मधु के साथ खाने का आदेश किया तो मेरा हृदय गदगद हो गया। हकीम जी ने एक नुसखा भी दिया। जिस का प्रयोग पुड़िया से प्रथम करना था। छ तोला तरबूज के बीज, छ तोला बनफशा, समान मात्रा की मिश्री के साथ घोट कर पी लीजिए। बड़ा आसान जुलाब होगा। तीन बार शौच जाने के पश्चात् आधा घण्टा ठहर कर लाल रंग की पुड़िया खा लीजिए। एक घण्टे के पश्चात् दूसरी पुड़िया खाइए और ज्वर भाग जाएगा। परमात्मा ने चाहा तो कल आप टहलते हुए पधारेंगे।" डेरे पर पहुंच कर हकीम जी के निर्देशों का पूर्णरूप से पालन किया और सचमुच दूसरे दिन मैं टहलता हुआ ही उनके पास गया। दूसरे दिन प्रातः सायं के लिए दूध के साथ पीने को दुगनी पुड़ियाँ लीं। जब तीसरे दिन गया तो निर्बलता के अतिरिक्त कुछ शेष न था। तब हकीम जी ने उस के लिए नुसखा लिखना आरम्भ किया और कुछ आहार के सम्बन्ध मे निर्देश देने लग गए कि मैंने उन की बात काट कर कहा —"हकीम साहब! एक बात पहिले ही सुन लीजिए। मैं मांस-भक्षण को पाप समझता हूं।" मेरा इतना ही कहना था कि प्रसन्न-मुद्रा वाले हकीम साहब हस पड़े। और कहा —"जनाब, बाबू साहिब! यदि आप मांस-भक्षण के अभ्यस्त होते तब भी मैं आप से कहता कि मेरी ओषधि के प्रभाव डालने वाली होने के लिए आप मांस-भक्षण त्याग दें। मांस तो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक आहार है"।

—हकीम साहिब का नुसखा भी मुझे मुग्ध करने वाला था। अत्यन्त स्वादिष्ट ओषधियों को कूट छान कर बहुत से दूध मे डाल खोया बनाया गया। उसमे से चार तोले प्रातः और चार तोले सायं गाय के ताज़े दूध के साथ खाने का आदेश हुआ। परन्तु क्या वह पहिले तैयार किया हुआ नुसखा मेरे भाग्य मे था? मेरे भ्राता भक्तराम जी को वह ओषधि अत्यन्त स्वादिष्ट प्रतीत हुई तो उन्होंने कुछ मित्रों के साथ दो दिनो मे समस्त मर्तबान खाली कर दिया। और मुझे वह नुसखा दूसरी बार बनवा कर ताले के भीतर रखना पड़ा। इस स्वादिष्ट खोए की मिठाई को भक्षण करते हुए सभी भक्षण करने वालो ने हकीम साहब को 'शाह शुजा" की उपाधि दी और मैंने कानूनी परीक्षा देने वाले प्रत्याशियों मे "शाह शुजा" की धूम मचा दी। मुझे यह जान कर के अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी कि इस मोसिमी ज्वर से ग्रस्त कानूनी प्रत्याशियों द्वारा "शाह शुजा" को लगभग तीन सौ रुपयों की आय हुई।

(क्रमशः)

आर्य वीर दल प्रशिक्षण शिविर

आगामी २७ मई से ४ जून १९७८ तक बी० सी० गुरुकुल हाई स्कूल गुरुकुल लेन घाटकोपर बम्बई ४०००७७ में महाराष्ट्र प्रान्तीय आर्य वीर दल की ओर से शारीरिक व बौद्धिक प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया जा रहा है। इसमे योगासन, प्राणायाम, खेलकूद, सन्ध्या, हवन, वक्तृता, कला, चरित्रनिर्माण, सदाचार, देशभक्ति, धर्म तथा वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जायेगा। सत्यार्थ प्रकाश तथा आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द, स्वा० विरजानन्द, स्वा० श्रद्धानन्द, पं० लेखराम, महा०, हंसराज आदि सभी आर्य महात्माओं के जीवन चरितों की शिक्षाओं से प्रशिक्षण में सम्मिलित होने वालों को पूर्ण जानकारी कराना इस शिविर का मुख्य उद्देश्य है। प्रशिक्षण के लिये राणा राम सिंह जी आर्य, प० रुद्र मित्र जी शास्त्री तथा प० जगदीश.चन्द्र बसु प्रधान शिक्षक सार्वदेशिक आर्य वीर दल की सेवायें प्राप्त कर ली गई हैं। आप भी अपने होनहार पुत्र-पुत्रियो को इस शिविर में भेजें ताकि उन पर आर्य समाज की विचारधारा का प्रभाव पड़ सके।

आर्य समाजों के सत्संग

२१-५-७८

अन्धा मुग़ल प्रताप नगर—प० लक्ष्मीनारायण आर्य पाराशर, **अशोक विहार के० सी०-५२ ए**—प० शिवराज शास्त्री, **आर्य पुरा**—प० अशोक कुमार विद्यालकार; **किंग्ज वे कैम्प**—प्रिंसिपल चन्द्रदेव, **किशन गंज मिल एरिया**—श्री मोहनलाल आर्य, **गांधी नगर**—प० ईश्वरदत्त; **गुड मन्डी**—प० ब्रह्मप्रकाश, **ग्रेटर कैलाश**—प० प्रकाशचन्द शास्त्री, **जगपुरा भोगल**—पं० देवराज वैदिक मिशनरी, **जनक पुरी सी ब्लाक**—स्वामी स्वरूपानन्द, **तिलक नगर**—पं० गनेशदत्त वानप्रस्थी, **दरिया गज**—प० वेदपाल शास्त्री; **नगर आर्य समाज शाहदरा**—डा० त्रिलोकचन्द, **नांगल राया**—प० रामकिशोर वैद्य, **नारायण विहार**—डा० वेदप्रकाश महेश्वरी; **नौरोजी नगर**—स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती, **टैगोर गार्डन**—स्वामी ओ३म् आश्रित, **महरौली**—प० सत्यभूषण वेदालकार, **राणा प्रताप बाग**—प० उदयपाल शास्त्री, **लड्डू घाटी**—प० तुलसीराम भजनोपदेशक, **लक्ष्मी बाई नगर**—प० प्राणनाथ सिद्धान्तालकार, **लाजपत नगर**—प० प्रकाशवीर शर्मा व्याकुल, **विक्रम नगर**—स्वामी सूर्यानन्द, **विनय नगर**—आचार्य हरिदेव तर्ककेसरी, **सुदर्शन पार्क**—प्रो० भारतमित्र स्नातक, **सराय रोहेला**—कविराज बनबारी लाल, **सोहन गज**—प्रो० सत्यपाल बेदार, **हौज खास**—प० सत्यपाल भजनोपदेशक,

आर्यसमाज पजाबी बाग का चुनाव

७ ५ ७८ को आर्य समाज पजाबी बाग नई दिल्ली का वार्षिक निर्वाचन हुआ। सन १९७८-७९ के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से चुने गये—

प्रधान—श्री सत्यानन्द शास्त्री; उपप्रधान—सर्वश्री नकुलसेन सच्चर, विश्वम्भर नाथ मलिक, गणपत राय खेडा, मन्त्री—श्री गिरधारी लाल गुलाटी; उपमन्त्री—सर्वश्री धर्मवीर केहर, चन्द्रभानु गुप्त, कोषाध्यक्ष—श्री देवेन्द्र नाथ सेठ, पुस्तकाध्यक्ष—श्री ओम्प्रकाश।

आर्य समाज महरौली दिल्ली राज्य का चुनाव

प्रधान—चौ० रौनकी राम, उपप्रधान—श्री सुभाष कुमार, डा० कृष्णलाल; मन्त्री—श्री पुरुषोत्तम दास, कोषाध्यक्ष—श्री मोहन लाल, पुस्तकाध्यक्ष—श्री मोहन लाल सभरवाल।

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी

आर्य जनता को यह जानकर हर्ष होगा कि दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया है कि सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी समारोह १९७८ मे अवश्य ही मनाया जाये। समारोह की तिथियां निश्चित करने और कार्यक्रम निर्धारित करने के लिए एक उपसमिति बना दी गई हे जिसे अपना प्रतिवेदन शीघ्रातिशीघ्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है।

वेदकथा

आगामी १५ से २० मई १९७८ तक आर्य समाज मन्दिर टैगोर गार्डन (ए० सी० ब्लाक) मे प्रति दिन रात्रि ९ से १० बजे तक श्री हरिशरण जी सिद्धान्तालकार की वेदकथा हुआ करेगी। सभी श्रद्धालु एव जिज्ञासु भाई बहिनो से अनुरोध है कि निश्चित समय पर पहुच कर धर्म लाभ प्राप्त करे।

शोक सभा

श्री स्वा० विज्ञानानन्द सरस्वती आचार्य वैदिक सन्यास आश्रम गाजियाबाद के निधन की खबर सुन समस्त आर्य जगत् शोकसतप्त हो गया है। त्यागी, तपस्वी इस महान् आत्मा की स्मृति मे श्रद्धा के फूल चढाने के लिए आगामी रविवार २१-५-७८ को साय ५ बजे आर्य समाज हनुमान रोड, नई दिल्ली मे एक वृहद श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन किया गया है। सब आर्य भाईयो से अनुरोध है कि निश्चित समय पर अधिक-से-अधिक सख्या मे पहुचकर इस आयोजन को सफल बनाये।

सरदारीलाल वर्मा, सभामन्त्री

आर्य पुत्री पाठशाला (आर्य समाज मन्दिर) गाँधी नगर दिल्ली की कार्य कारिणी की बैठक मे आर्य जगत के महान् सन्यासी स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज (सन्यास आश्रम गाजियाबाद) के निधन पर शोक प्रस्ताव पास किया गया।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार

औषधियां सेवन करें

शाखा कार्यालय: ६३, गली राजा केदारनाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली–६ फोन नं० २६१४३८

दिल्ली के स्थानीय विक्रेता —

(१) मै० इन्द्रप्रस्थ आयुर्वेदिक स्टोर, ३७७ चांदनी चौक दिल्ली। (२) मै० ओम् आयुर्वेदिक एण्ड जनरल स्टोर, सुभाष बाजार, कोटला मुबारकपुर नई दिल्ली। (३) मै० गोपाल कृष्ण भजनामल चड्डा, मेन बाजार पहाड़ गंज, नई दिल्ली। (४) मै० शर्मा आयुर्वेदिक फार्मेसी, गडोदिया रोड आनन्द पर्वत, नई दिल्ली। (५) मै० प्रभात कैमिकल क०, गली, खारी बावली दिल्ली। (६) मै० ईशरदास किशनलाल, मेन बाजार मोती नगर, नई दिल्ली। (७) श्री वैद्य भीमसैन शास्त्री, ५३७ लाजपतराय मार्किट दिल्ली। (८) दि-सुपर बाजार, कनाट सर्कस, नई दिल्ली। (९) श्री वैद्य मदन लाल ११ ए शंकर मार्किट दिल्ली। (१०) मै० दि कुमार एण्ड कम्पनी, ३५४७, कुतुबरोड, दिल्ली-६

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभा मंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली, गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित। कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

ओ३म्

आर्य सन्देश

कार्यालय : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ दूरभाष : ३१०१५०

वार्षिक मूल्य १५ रुपये, एक प्रति ३५ पैसे वर्ष १ अक २६ रविवार २८ मई, १९७८ दयानन्दाब्द १५३

वेदोपदेश

ओ३म् मधुमन्मे निक्रमण मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥

अ० १।३४।४

शब्दार्थ :—(मे निक्रमणम्) मेरा निकलना, जाना (मधुमत्) मीठा हो, (मे परायणम्) मेरा लौट आना (मधुमत्) मीठा हो। मैं (वाचा) वाणी से (मधुमत्) मीठा (वदामि) बोलू, ताकि (मधुसन्दृश) मधु जैसा ही (भूयासम्) हो जाऊँ [अथवा मधुदर्शी हो जाऊ]।

उन्नति के अभिलाषी मनुष्य को सर्वदा मीठे वचन बोलने चाहिये, इतना ही नहीं उसको अपना व्यवहार ऐसा बनाना चाहिये जो सब को मीठा और प्यारा लगे। महाराज मनु ने अपनी स्मृति (४।१३८) मे इस सबन्ध मे लिखा है: **"सत्यं ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातन"** अर्थात् "सदा प्रिय सत्य यानी दूसरे का हितकारक वचन ही बोले। कभी भी अप्रिय सत्य यानी काणे को काणा न कहे"। किन्तु इस स्मृति वचन का नियमन करते हुए महर्षि दयानन्द जी लिखते है। "सदा भद्र अर्थात् सबके हितकारी वचन बोला करे, शुष्क वैर अर्थात् बिना अपराध किसी के साथ विरोध या विवाद न करे। जो दूसरे के हितकारक वचन हो चाहे सुनने वाला बुरा भी माने तथापि कहे विना न रहे"। इसी सदर्भ मे विदुर नीति (३७।१५) को उद्धृत करते हुए महर्षि लिखते है "इस ससार मे दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने मे अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करने वाला हो उसका कहने और सुनने वाला मनुष्य दुर्लभ है"। महाकवि भारवि ने भी लिखा है 'हित मनोहारी च दुर्लभ वच" अर्थात् किसी को यदि उस के हित की बात कहो तो प्राय वह उसे अच्छी नही लगती। वह उसमे वक्ता का स्वार्थ ही ढूढता है। इस ऊहापोह का इतना ही तात्पर्य है कि मनुष्य को सर्वदा सत्य ही बोलना चाहिये। यदि ऐसी आशका हो कि सत्य कहने मे सुनने वाला बुरा मनायेगा तो भी सत्य कहने से चूकना नही चाहिये। हा कहते समय इस ढग से वचन बोलने चाहिये कि सुनने वाले को कम से कम कटु लगे और ऐसा प्रतीत हो कि यह बात उसके हित की है और कि वक्ता का इसमे अपना कोई निजी स्वार्थ नही। यदि यह भावना जागृत हो जायेगी तो अनायास ही उसकी हृदयतन्त्री से कृतज्ञता का स्वर आलापित होगा।

—o—

मीठी बाणी

—कविराज बनवारी लाल शादाँ

मीठी बानी बोलिये, सबका हृदय लुभाये।
अपने को भी सुख मिले, हर्ष दूसरा पाये॥

सुख देती है व्यथित को, पहुचाती सन्तोष।
इसमे वह अमृत भरा, घटे न इसका कोष॥

शीतल मलहम है अजब, भरे घाव ततकाल।
दुखिया और निराश को, सकती यही सभाल॥

दुखी दिलो को शान्त कर, हरती सब सन्ताप।
इससे जो मिटता नहीं, ऐसा एक न ताप॥

बिना झिझक तकलीफ के, इसे करो स्वीकार।
इसको मन मे धार कर, सकट करलो पार॥

छोटे बडे समान को, इससे सकते जीत।
सब पर यह जादू करे, इसकी अद्भुत रीत॥

बडे प्रेम से विनय से, सबसे करिये बात।
मीठी बाणी का मधुर, स्रोत बहे दिन रात॥

सबसे मिलिये प्रेम से, मीठी बानी बोल।
कडवी बानी जानिये, जहरीला है घोल॥

मीठी बानी रत्न है, जिसका होये न मोल।
उपजावै आनन्द वह, जिसे न सकते तोल॥

इससे बस मे हो सके सुखी दुखी सब लोक।
सिद्ध करो इस मन्त्र को, जीतो तीनो लोक॥

हरदिल मे दर्शन करो, बसते हैं भगवान।
उनका कडुऐ बचन से, मत करना अपमान॥

प्रभु के नाम अनेक है सब मे उसका बास।
बह दूर से दूर है, और पास से पास॥

प्रभुका मन्दिर देह मम, शादाँ, खोल कपाट।
दर्शन पाकर आप भी, सशय सकते काट॥

—o—

बदनाम पुस्तक "प्राचीन भारत" जब्त

कुछ मास पूर्व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने दिल्ली के स्कूलो की ११ वी कक्षा मे पढाई जाने वाली बदनाम पुस्तक "प्राचीन भारत" के अनेको अशो पर आपत्ति उठाकर भारत सरकार से श्री राम शरण शर्मा द्वारा लिखित इस पुस्तक को जब्त करने की माग की थी। आर्य जनता को यह जानकर सन्तोष होगा कि भारत सरकार ने उपरोक्त पुस्तक के अग्रेजी-हिन्दी दोनो सस्करण जब्त कर लिये है।

आर्य समाज राजौरी गार्डन ६।

आर्य समाज राजौरी गार्डन का वार्षिक चुनाव ७-५-७८ को सम्पन्न हुआ, जिसमे अगले वर्ष के लिये निम्नलिखित अधिकारी चुने गये :—

प्रधान—श्री जयराम कोचड, उपप्रधान—सर्वश्री दौलत राम नागपाल, धर्मवीर, गणपतराय, शान्तिप्रकाश सेठी, मन्त्री—श्री राधाकृष्ण सहगल, सयुक्त मन्त्री—श्री सजयकुमार, उपमन्त्री—सर्वश्री देशराज सेठी विनोद, भाटिया; कोषाध्यक्ष—श्री सदानन्द सिंधी

सम्पादक सरदारीलाल वर्मा, सहसम्पादक सत्यानन्द शास्त्री, एम० ए०

प्रशासकों के लिये आचार-संहिता

—श्री बलभद्र कुमार कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

[क्रमागत]

आज केवल मन्त्री लोग ही राजा नही। मन्त्रियो के साथ लोक सभा राज्य सभा के सदस्य, विधान सभाओं के सदस्य, पचायती राज्य के नेता, प्रमुख प्रधान, सरपच एव पच सब राजगद्दी पर विराजमान हैं। उनके साथ उनके सचिव, आयुक्त, कलक्टर, एस० डी०ओ०, विकास अधिकारी तहसीलदार पटवारी, पुलिस विभाग के अफसर, सिंचाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा जगल श्रम, डाक रेल सभी विभागो के अधिकारी जो अपने-अपने सिंहासनो पर विद्यमान हो रहे हैं—वे सब ही राजा है, क्यो कि **चमकते हैं**। चमकते है, इसलिए कि सेवक हैं। यदि वे ठीक ढग से सेवा नही करेगे तो चमकेगे नही। यदि चमकेंगे नही तो राजा कैसे ? स्मरण रहे कि राजा शब्द की निष्पत्ति "राजृ दीप्तौ" धातु से होती है जिसका अर्थ है **"चमकना"**।

राजा का जीवन बडा कठोर होता है। उस पर बहुत कठोर प्रतिबन्ध है। वह दूसरो के लिए ही जीता और दूसरो के लिए ही मरता है। सार्वजनिक जीवन शरशय्या है। इस के योग्य बनने के लिए अपने आपको तपाना पडता है, कठोर साधना करनी पडती है।

उपरोक्त हिदायतो से स्वामी जी के अध्ययन और मनन की अनन्त सीमाओ का पता चलता है। जहाँ उन्होने राजाओ के नैतिक स्तर को ऊँचा करने के तरीके बताए है, वहाँ उनके लिए शरीर को स्वस्थ रखने पर भी अत्यावश्यक बल दिया है। राज्य को एव राष्ट्र को कैसे सुदृढ एव सुसगठित किया जाए इस बारे मे भी प्रभावशाली सुझाव प्रस्तुत किए है।

यदि देखा जाय तो भारत के आज के सविधान की रूपरेखा स्वामी जी की हिदायतो मे पूर्णरूपेण पायी जाती है।

दयानन्द का लक्ष्य कुम्भकर्ण की निद्रा मे पडे हुए देश को जगाना था। वह सिंह पुरुष था और उसके सिंहनाद का बूढे जर्जरित देश पर काफी असर पडा। देश ने करवट बदली। कुप्रथाओ से छुटकारा पाना शुरू हुआ। जगह-जगह स्कूल खुले, हस्पताल खुले पत्र-पत्रिकाएँ जारी हुईं। लोगो के मस्तिष्क बदले। उनके आदर्श ऊँचे हुए। कहा तो वे कूप-मण्डूक बने हुए थे, कहा अब उन्होने विदेश यात्रा शुरू की। उन्हे पता लगा कि हम कहा हैं, जमाना किधर जा रहा है और हमे किधर जाना है।

सबसे बडी चीज जो दयानन्द ने भारतीयो को सिखलाई वह थी आत्मनिर्भरता! वह जानते थे कि किसी बाहरी शक्ति को हिन्दुस्तान को ऊँचा उठाने की क्या गर्ज पडी है ? आत्मनिर्भरता से ही हिन्दुस्तान ऊँचा उठ सकता है। हमे अपनी ही शक्ति का बढाना होगा। व्यक्तिगत रूप से एव सामाजिक सगठन से, इसलिये वह ब्रह्मचर्य पर जोर देते थे, स्वाध्याय एव सत्सग पर जोर देते थे, वैदिक शिक्षा और वेदानुसरण पर जोर देते थे, क्यो कि वेद मे आत्मिक और शारीरिक बल बढाने के मन्त्र है तेज, ओज, वीर्य, बल, मन्यु और सहिष्णुता बढाने की प्रार्थनाएँ है। ये इकट्ठा मिलकर काम करने की प्रेरणा देते हैं। वहा सबके ऊपर सुख की वर्षा की कामना है, सौ वर्ष तक काम करते हुए जीने की इच्छा है सौ वर्ष तक और उसके भी बाद सुखी स्वस्थ रहते हुए सर्वहिताय (जनहिताय) काम करने की अभिलाषा है। लेकिन आत्मनिर्भरता तभी आती है जब मनुष्य मे आत्मविश्वास हो और आत्मसम्मान की भावना हो। सदियो से गुलामी मे जकडे हुए भारत पर तरह तरह के प्रहार किये जा रहे थे। सबसे घातक प्रहार था उसके आत्मसम्मान पर। भारत की ऊँची उडानो को भुला दिया गया था। केवल इसी बात का प्रचार किया जाता था कि भारतीय जाहिल है, वहमी है, बुतपरस्त है दूसरो पर आश्रित हैं, कमजोर है। दयानन्द ने इस बात का खण्डन किया। उसने भारतीय साहित्य के सस्कृत के भण्डार से अनेको अनमोल रत्न ससार के आगे प्रस्तुत किये और चैलेंज दिया कि ऐसे अनमोल रत्न कही और से ढूंढ कर प्रस्तुत कर सकते हो तो करो। इसीलिए उन्होने अग्रेजी का अध्ययन नही किया, एव विलायत नही गये, ताकि कही विदेशो लोग यह न कहे कि यह सब उन्होने विदेशो मे सीखा है। वह भारत के उज्जवल अतीत की याद ताजा करना चाहते थे। वह भारत-वासियो मे आत्मसम्मान की भावना पैदा करना चाहते थे। वह ससार को यह दिखाना चाहते थे कि भारतवर्ष सदा गिरा हुआ ही नही था, वरन् एक समय यह जगद्गुरु था और अब भी बन सकता है ? इस ध्येय मे उन्हे आशातीत सफलता भी मिली। उनकी जगाई ज्योति से भारत चमक उठा और उनके बाद, एक के बाद दूसरी ज्योति चमकी। फलत भारत अगस्त १९४७ मे स्वतन्त्र हुआ और उसके बाद उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है।

आज दयानन्द नही हैं लेकिन उनका कार्यक्रम देश अपना चुका है। जात-पात का भेद मिटता जा रहा है। देशवासी एक सूत्र मे बँध चुके हैं। शिक्षा का प्रचार बढता जा रहा है। स्त्रियो का सती होना बन्द हो चुका है। बाल-विवाह अब प्राय बन्द हो चले हैं। लोग ब्रह्मचर्य की महिमा को समझते है। मूर्तिपूजा मे जो अन्धविश्वास था वह उठ चुका है। लोग जानते है कि परमात्मा उन्ही की मदद करता है जो स्वय अपनी मदद आप करते हैं। इसी लिए तो देश ने योजनाबद्ध प्रगति के कार्यक्रम को स्वीकार किया है और देश के कोने-कोने मे अथक परिश्रम, निरन्तर सघर्ष जारी है। विधान सभाओ मे, पचायतो मे सब जगह विकास की चर्चा है। लेकिन सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब देश मे विद्वान् ब्राह्मण, शूरवीर क्षत्री, कार्यकुशल नागरिक पैदा हो। इसीलिए तो यजुर्वेद मे यह प्रार्थना की गई है —

> ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्,
> आ राष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽति व्याधि महारथो जायताम्,
> दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशु सप्ति पुरन्धिर्योषा
> जिष्णु रथेष्ठा सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्,
> निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु,
> फलवत्यो न ऽ ओषधय पच्यन्ताम्
> योगक्षेमो न कल्पताम्॥ य० २२/२२

'हे परमात्मन् हमारे देश मे ऐसे ब्राह्मण पैदा हो जो वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञ हो, जिनकी आत्माए ज्योतिर्मय हो, ऐसे योद्धा पैदा हो जो युद्धशास्त्र मे निपुण हो, दुश्मन का नाश करने वाले हो, वीर और निर्भय हों। हमारे पास उत्तम गायें हों जो खूब दूध दें, अन्य अच्छे पशु हो, द्रुतगामी घोड़े हो, ऐसी महिलायें हो जो सब तरह से निपुण हो, जो ऐसे पुत्र पैदा करे जो सदा विजयी हो और समाज मे चमके। हमारा देश ऐसे राजाओ के राज्य मे हो जो बुद्धिमान और विद्वान् मशीरो के परामर्श से रिआया के लिये सुख और समृद्धि प्राप्त करें और ऐसे नवयुवक तैयार करें जो युद्ध मे विजय पाये और बुद्धिमान हो। हमारे यहाँ प्रचुर मात्रा मे, सामयिक वर्षा हो, फलो की भरमार हो, बलवर्धक अन्न हों और अच्छी से अच्छी जडी-बूटियाँ हो, हमारी सब आकाक्षाएँ एव मनोकामनाएँ पूरी हो। जो हमारे पास नही है वह हमे प्राप्त हो, जो है उसकी परिवृद्धि हो।

(समाप्त)

प्राचीन आचार-मर्यादा

'आर्य सन्देश' के पाठक १४ मई १९७८ के अक में **भारतीय संस्कृति** का मूल्याकन पढ चुके है। यदि थोडे से शब्दों मे वर्णन करना हो तो यह कहा जा सकता है कि "यहाँ के लोग उदार, सरल, धर्मपरायण, विश्व-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत, शरणागत-वत्सल, अतिथि-सेवारत और गो-रक्षक हुआ करते थे। अहिंसा और संयम इस देश के वासियो के स्वभाव का अभिन्न अग था। आचारमर्यादा की दृष्टि मे भारतवासी स्वच्छ, खरे और उदात्त भावनाओ से अनुप्राणित हुआ करते थे।

प्रात उठकर मल-त्याग कर हाथ मुह धोना, दान्त साफ करना और नहाना भारतीयो का नित्याचार था। यथासभव वे इस मे नागा नही होने देते थे। खडे होकर पेशाब करना बुरा समझा जाता था।

प्राय: सभी लोग पूर्व दिशा की ओर सिर कर के सोते थे। पश्चिम और उत्तर की ओर सिर कर के सोना निन्दित समझा जाता था। ऐसा करने से स्वास्थ्य की हानि होती है, यह विचार उन में घर कर गया हुआ था। इस विचार का मूल संभवत भूमि के भीतर की किसी भौतिक प्रक्रिया से सम्बन्धित था। महर्षि सुश्रुत अपने ग्रन्थ मे लिखते हैं कि शल्य-चिकित्सक को चाहिये कि चीर-फाड करते समय रोगी का सिर पूर्व की ओर ही रखे।

भारतीय लोग सदा स्वच्छ और शुद्ध कपडे पहनते थे। वे दिन के कपडे रात को धारण नही करते थे। घर में भी एक के पहने हुए कपडे दूसरा नही पहनता था।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

सम्पादकीय

संस्कृत वर्णमाला

दो तीन भाषाओं (जर्मन, रूसी और ग्रीक) को छोडकर युरोप की सब भाषाओं (अंग्रेजी, फासिसी, अतावली आदि आदि) रोमन लिपि मे लिखी जाती हैं। इस लिपि का क्रम अत्यन्त अवैज्ञानिक है। एक-एक अक्षर कई-कई ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। अंग्रेजी के शब्द 'But' में स्वर U की ध्वनि 'अ' है, शब्द 'Put' मे U की ध्वनि 'उ' है और शब्द 'Busy' में U की ध्वनि 'इ' है। यही कारण है कि Concise Oxford English Dictionary के सम्पादक को "Key to Pronunciation" नामक लेख मे ये शब्द लिखने पडे है "Our alphabet is therefore very far from being a perfect alphabet, which would have a distinct letter for each sound, and would always represent the same sound by the same letter" अर्थात् "हमारी वर्णमाला इस विषय मे पूर्ण वर्णमाला की अपेक्षा अत्यन्त हीन है जिस मे प्रत्येक ध्वनि के लिए एक पृथक् अक्षर होता है और जो सदा उसी ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है।" जर्मन, रूसी तथा ग्रीक वर्णमालाओं का रूप भिन्न है, किन्तु क्रम यही है। अत जो दोष रोमन वर्णमाला मे हैं वे सब इन भाषाओ की वर्णमालाओ मे भी उसी तरह वर्तमान है।

इस के विपरीत संस्कृत वर्णमाला जिसमे आजकल हिन्दी भाषा भी लिखी जाती है का प्रत्येक वर्ण एक एक ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात् प्रत्येक ध्वनि के लिये इस वर्णमाला मे पृथक् पृथक् वर्ण नियत हैं। इस का फल यह हुआ है कि संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओ (जिन मे बरमी, सिंहली, नेपाली और तिब्बती भाषायें भी शामिल हैं) मे Spelling ('हिज्जे') तथा Pronunciation (उच्चारण) के रटने तथा घोटने का घोटाला नहीं है। अंग्रेजी भाषा का शब्द "Psychology" अक्षर योजना के अनुसार "प्साईचोलोगाई" बोला जाना चाहिये, किन्तु बोला जाता है "साईकालोजी"।

अरबी वर्णमाला तथा युरोप की भाषाओं की वर्णमालाओ मे स्वर और व्यजन मिला के रखे गये हैं। किन्तु संस्कृत वर्णमाला मे स्वर व्यजन पृथक् पृथक् रखे गये हैं और स्वरो को प्राथमिकता दी गई है। उन भाषाओ की वर्णमालाओं मे वर्णों का कोई क्रम नहीं है। संस्कृत वर्णमाला मे इस का बहुत वैज्ञानिक विचार किया गया है। छाती से ऊपर उठकर जब वायु मुख में आती है तो सर्वप्रथम उसका सम्पर्क कण्ठ से होता है, पुन तालु से, पश्चात् मूर्धा से, तदनन्तर दान्तों से और सब के पश्चात् ओष्ठ से। इस लिये देखिये व्यजनों मे पहले कवर्ग [क, ख, ग, घ, ङ] है, उस का स्थान कण्ठ है। फिर चवर्ग [च, छ, ज, झ, ञ] आता है, उस का स्थान तालु है। फिर टवर्ग [ट, ठ, ड, ढ, ण] मूर्धस्थानीय है। तदन्तर तवर्ग [त, थ, द, ध, न] दन्तस्थानीय है। अन्त मे पवर्ग [प, फ, ब, भ, म] ओष्ठस्थानीय है। स्वरो मे भी इसी क्रम को दृष्टि मे रखा गया है। तात्पर्य यह है कि संसार मे संस्कृत भाषा की वर्णमाला जिसमे आजकल हिन्दी भाषा लिखी जाती है ही केवल पूर्ण और वैज्ञानिक वर्णमाला है। संसार की शेष सब वर्णमालायें अपूर्ण और अवैज्ञानिक है। सत्यानन्द शास्त्री

—०—

यज्ञ में नोटो की वर्षा

यूं तो गुजरात प्रदेश मे कट्टरता तथा जातपात की ऊँच-नीच आज भी बहुत देखी जा सकती है, परन्तु इस प्रदेश ने पिछली शताब्दी मे और उससे पहले भी मानवमात्र के लिये समानाधिकार की आवाज उठाई थी। धार्मिक क्षेत्र मे सब को वेद पढने और यज्ञ करने का अधिकार देने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती भी यहीं पैदा हुए थे।

उन से प्रेरणा पाकर गुजरात प्रान्त के खम्भात क्षेत्र मे सौराष्ट्र के निवासी पौराणिक सन्त श्री पूर्णगिरि महाराज ने १९७६ मे व्रत लिया था कि उदेल मे हरिजनों के हाथो विशाल यज्ञ करवायेगे और ऐसा न होने तक वह अन्न ग्रहण नही करेंगे। उनकी यह प्रतिज्ञा किन्ही पौराणिक ब्राह्मणो द्वारा हरिजनों से विधिवत् यज्ञ न कराने के कारण पूरी नहीं हो सकी।

अन्त मे बडौदा की आर्य कुमारसभा के पंडित आनन्दप्रिय जी ने उनको सहयोग देने की ठानी। उनकी ही प्रेरणा पर २७ अप्रैल को सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पुरोहित श्री पंडित राजगुरु शर्मा यज्ञ कराने उदेल पहुच गये। उनकी अध्यक्षता मे उदेल हायर सैकण्डरी स्कूल के विशाल मैदान मे ९ यज्ञ कुंडो मे ३ दिन तक यज्ञ चलता रहा। प्रारभ मे केवल ५००० हरिजनो ने परिवारसहित उस यज्ञ मे भाग लिया। चूकि यज्ञ करने से पूर्व यज्ञोपवीत को धारण करने की धर्मशास्त्र की आज्ञा है, अत यज्ञ के ब्रह्मा श्री राजगुरु शर्मा ने ५०० हरिजन युवको को यज्ञोपवीत धारण कराये।

इस रूढि परम्परा के टूटने पर अगले दिन गावो के सवर्णो ने यज्ञ मे भाग लेकर अभूतपूर्व उत्साह दिखाया। अंतिम दिन २९ अप्रैल को पूर्णाहुति पर १० ००० व्यक्तियो ने यज्ञाग्नि का दर्शन किया तथा श्री राजगुरु की अपील पर दर्शको ने सत श्री पूर्णगिरि जी पर नोटो की वर्षा की तथा हजारों रुपये दान मे दिये। बाहर से आये हुए तथा यज्ञ मे भाग लेने वाले स्त्री-पुरुषो के भोजन की व्यवस्था खम्भात के सेठ श्री दया भाई तथा उनके साथियो ने की। इस अवसर पर सवर्णो ने हरिजनो को प्रेम से भोजन कराया एव उनकी झूठी पत्तलो को उठाकर भाई-चारे का प्रेमभरा वातावरण उपस्थित किया। ० ० ०

पंजाबी गीत :

दयानन्द ने धरम दी खातिर

—धर्म देव "चक्रवर्ती"

☐ दयानन्द ने धरम दी खातिर
अपनी जान दुखा विच पाई।

☐ बाग कमल दे फुल सी खिलया
राज कुमारा ताई पलया
मखमली फरशा ते जो चलया
ओह कंडया-राह अपनाई।
दयानन्द ने कौम दी खातिर
अपनी जान दुखा विच पाई।

☐ सुख-आराम सब घर दा छड के
मात-पिता दा मोह भी तज के
ओम् दा झण्डा हाथ विच फड के
वेद दी अलख जगाई।
दयानन्द ने वेद दी खातिर
अपनी जान दुखां विच पाई।

☐ कई-कई राता भुखिया कट्टिया
नई-नई मुसीबता झल्लिया
वेद-निन्दका दिया जड़ां पट्टिया
ते उजडी राह बसाई!
दयानन्द ने धरम दी खातिर
अपनी जान दुखा विच पाई!

☐ छूत-छात दा कलक मिटा के
हरिजनां नू गले लगा के
जात-पात दा कोढ हटा के
ते विगडी बात बनाई!
दयानन्द ने कौम दी खातिर
अपनी जान दुखां विच पाई।

☐ तडप रही सी विधवा-नारी
मरना मुशकिल जीना भारी
विवाह दी आग्या दे ब्रह्मचारी
ने उस दी लाज बचाई!
दयानन्द ने धरम दी खातिर
अपनी जान दुखां विच पाई।

—०—

वेदकथा

आगामी २२ से २८ मई १९७८ तक आर्य समाज मन्दिर तिलक नगर नई दिल्ली मे प्रतिदिन रात को ९-१५ से १०-१५ तक प० अशोककुमार विद्यालकार की वेदकथा हुआ करेगी। कथा से पहले एक घण्टा तक प० महेश चन्द करतार सिंह की भजनमण्डली के भजन हुआ करेंगे। सभी धर्मप्रेमी सज्जनो से अनुरोध है कि निश्चित समय पर पहुंच कर धर्मलाभ प्राप्त करें।

क्या आर्य लोग मांसाहारी थे ?

—श्रीमती तोष प्रतिभा एम० ए०

क्या प्राचीन आर्य लोग मांसाहारी थे ? इस प्रश्न का उत्तर है बिल्कुल नहीं ? उन दिनों समाज मे मांसाहार का प्रचलन न था । कम से कम उस युग मे जब लोग वेद की शिक्षाओं पर चलते थे मांसाहार को समाज की स्वीकृति प्राप्त न थी। यदि कोई व्यक्ति इस बुराई को अपनाता था तो अपने साथियों द्वारा नीची निगाह से देखा जाता था। ऋग्, यजु, साम तथा अथर्व सहिताओं मे इस धारणा का समर्थन करने के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं —

यजुर्वेद (४०।७) मे कहा गया है —

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः क शोकऽ एकत्वमनुपश्यत ॥

अर्थात् जो व्यक्ति सम्पूर्ण प्राणियों को केवल आत्माओं के रूप में ही देखता है (स्त्री, पुरुष, बच्चे, गौ, हिरण, मोर, चीते तथा सांप आदि के रूप मे नहीं) उसे उन को देखने पर मोह अथवा शोक (ग्लानि=घृणा) नही होता। उन सब प्राणियो के साथ वह एकत्व (समानता अथवा साम्यता) का अनुभव करता है।

जो लोग आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म तथा एकत्व (समानता=साम्यत्व) के सिद्धान्तो मे विश्वास रखते थे जैसा कि आर्यों को समझा जाता है), वे अपने क्षणिक स्वाद की तृप्ति अथवा,जले पेट की पूर्ति के लिये उन पशुओ को कैसे मार सकते थे जिनमे उन्हे अपने ही पूर्व जन्मों के प्रिय जनों की आत्माओ के दर्शन होते थे ? वास्तव मे ऐसा कभी नही हो सकता। पुन यजुर्वेद (३६।१८) मे कहा गया है:—

"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥

अर्थात् "मुझे सब प्राणी अपना मित्र समझें तथा मैं भी उन से अपने मित्रो जैसा व्यवहार करू। हे परमात्मा ! कुछ ऐसी विधि मिलाओ कि हम सब (प्राणी) एक दूसरे से सच्चे मित्रो जैसा व्यवहार करे"। प्राचीन आर्य लोग "प्राणी मात्र के लिये अथाह मैत्री के उपर्युक्त वैदिक सिद्धान्त में न केवल आस्था ही रखते थे, अपितु इसे ईश्वरप्रदत्त धर्म का अंग जानकर अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते थे। उन आर्यों के सम्बन्ध मे यह धारणा रखना कि वे अपनी जिह्वा की लालसा की क्षणमात्र की तृप्ति के लिये उन प्राणियो का, जिन्हें वे मित्रतुल्य प्रिय मानते थे, वध करते थे अनर्गल नही तो और क्या है ?

"प्राणी मात्र के लिये अथाह मैत्री" के इस वैदिक सिद्धान्त का परिणाम यह है कि समाज मे दोपायो (मानवो) और चौपायो की हिंसा पूर्णरूप से निषिद्ध घोषित कर दी गई थी। यजुर्वेद मानव के प्रति अहिंसाभाव का कठोर आदेश देता है —

"...... **मा हिंसीः पुरुषम्** ...." (१६।३)

पुनः यजुर्वेद पशुओ के मारे जाने पर कठोर प्रतिबन्ध लगाता है.—

"**मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः**" (१२।३२)

"**इमं मा हिंसीर्द्विपाद पशुम्**" (१३।४७)

इसी तरह यजुवद मे गोबध का निषेध किया गया है क्यों कि "मानव जाति के लिये गौ शक्तिवर्द्धक घी दूध आदि पदार्थ प्रदान करती है —

"......**गां मा हिंसीरदितिं विराजम्**" (१३।४३)

" .... **घृतं दुहानामदितिं जनाय......मा हिंसीः**"(१३।४९)

इसी प्रकार यजुर्वेद मे पुन कहा गया है कि घोड़े का बध किसी भी स्थिति मे नही किया जाना चाहिये.—

"**अश्वं ...मा हिंसी.......**" (१३।४२)

"**इमं मा हिंसी ......वाजिनम्**" (१३।४८)

ऐसे ही यजुर्वेद मे भेडो (बकरियो समेत) के वध पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया है —

"**अविं......मा हिंसीः.......**" (१३।४४)

ऋग्वेद में गोवध को, मनुष्यवध जैसा क्रूर अपराध घोषित किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जो व्यक्ति यह अपराध करता है, उसे मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिये जैसा कि मनुष्यवध करने वाले को दिया जाता है —

"**आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु.......**" (७।५६।१७)

ऋग्वेद में एक और स्थान पर भी इसी भावना की प्रतिध्वनि मिलती है:—

"**आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्.......**" (१।११४।१०)

इसी प्रकार अथर्ववेद गौ, अश्व और पुरुष का हनन करने वाले को गोली से उड़ा देने का आदेश देता है —

"**यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।**
तं त्वा सीसेन विध्यामः......." (१।१६।४)

अर्थात् "यदि तुम हमारी गाय, घोड़े और पुरुष को मारोगे तो हम तुम्हें सीसे (सक्के की गोलियों से) बीन्ध देंगे।" अहिंसा के उपर्युक्त सिद्धान्त का कठोरता से पालन करने वाला समाज अपने सदस्यों को मांसाहार की इजाजत कैसे दे सकता था ?

(क्रमशः)

डा० इकबाल के दो रूप"

—अनूपसिंह प्रवक्ता, आर्य इण्टर कालेज मुजफ्फरनगर, देहरादून

डा० शेख मौहम्मद इकबाल की जन्म शताब्दी भारत व पाकिस्तान में पूर्ण आदर व सम्मान के साथ मनाई गई। प्रारम्भ में डा० इकबाल की शायरी में भारतीयता का रंग था जो निम्न पद्यों से सुस्पष्ट है :—

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा॥
गुरबत में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं हमें भी, दिल हो जहाँ हमारा॥
मजहब नहीं सिखाता आपस मे वैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दुस्ता हमारा॥"

डा० इकबाल के दिल में देश की आजादी के लिए कितनी तड़प थी इसका उदाहरण उनकी 'तस्वीरे दर्द" नामक कविता में मिलता है—

"वतन की फिक्र कर नादा, मुसीबत आने वाली है;
तेरी बर्बादियों के मशवरे हैं आसमानों मे।
न समझोगे तो मिट जाओगे ए हिन्दुस्ता वालो;
तुम्हारी दास्ता तक भी न होगी दास्तानो मे॥"

भारतवर्ष के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा को डा० इकबाल ने यू प्रकट किया है:—

"खाके वतब का मुझको हर जर्रा देवता है"

यह है डा० इकबाल के एक रूप की तस्वीर। उनके दूसरे रूप की तस्वीर उनकी इस कविता से प्रकट होती है.—

"चीन-ओ-अरब हमारा, हिन्दुस्ता हमारा।
मुस्लिम है हम वतन है, सारा जहाँ हमारा॥"

डा० इकबाल की इस फिरकापरस्ती और मजहबपरस्ती की चुटकी लेते हुए प्रसिद्ध शायर अकबर इलाहाबादी ने लिखा था —

"कालेज मे हो चुका जब इम्तहा हमारा;
सीखा जुबा से कहना, हिन्दुस्ता हमारा।
रक्वे को कम समझकर, 'अकबर' वो बोल उठे;
हिन्दुस्तान् कैसा ? सारा जहाँ हमारा॥"

"मुस्लिम है हम वतन है सारा जहाँ हमारा" इस गीत पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए पजाब के प्रसिद्ध शायर श्री 'त्रिलोकचन्द महरुम' ने लिखा था :—

"इकबाल ने छोड़ी है राहे वतनपरस्ती
गाकर यह नया तराना सारा जहा हमारा।
हमने भी एक मिसरे मे बात खत्म कर दी,
कि सारा जहाँ तुम्हारा, ये हिन्दुस्ता हमारा"॥

[शेष पृष्ठ ६ पर]

स्वामी श्रद्धानन्द के आत्मसंस्मरण (१४)

"कुछ आप बीती, कुछ जग बीती"

—प्रिंसिपल कृष्णचन्द्र एम० ए० (त्रय), एम० ओ० एल०, शास्त्री

(क्रमागत)

१८९५ ई० में वकालत की परीक्षा :—

वकालत की परीक्षा दिसम्बर मास मे हुआ करती थी। उस वर्ष के जून मास मे दयानन्द एङ्ग्लो वैदिक कालेज खुल चुका था। श्रीमान् हसराज जी कालेज की सेवा के लिए जीवन दान कर चुके थे और मियानी निवासी श्री लाला ज्वाला सहाय जी के आठ सहस्र रुपयों के दान ने कालेज का खुलना सम्भव कर दिया था। इन घटनाओ के पश्चात् नवम्बर मास के अन्तिम शनिवार तथा रविवार के दिनों मे आर्य समाज लाहौर का वार्षिकोत्सव हुआ। यद्यपि रोग से निवृत्त होने के पश्चात् निर्बलता हो गई थी और परीक्षा की तय्यारी का भार अधिक था तथापि अपने आर्य समाज के प्रति मेरे हृदय में प्रेम की भावना इतनी अधिक थी कि उत्सव से एक क्षण भी अनुपस्थित होना असम्भव प्रतीत होता था।

यह प्रथम अवसर था कि पण्डित गुरुदत्त जी को मैंने दयानन्द कालेज के लिए आर्य समाज लाहौर के मञ्च से अपील करते हुए सुना। इसी व्याख्यान से मेरा हृदय पण्डित गुरुदत्त जी की ओर आकर्षित होना आरम्भ हो गया और अधिक समीप आने से मैंने धीरे धीरे अनुभव किया कि यही एक आत्मा है जिसके साथ मेरे विचार मेल खा सकते है और जब मैं दूसरे दिन, विशेष रूप से पण्डित गुरुदत्त जी को मिलने गया तो उन्होने भी अपने विचारों द्वारा यही प्रकट किया कि हम दोनो एक दूसरे को समझते हैं।

परीक्षा का भयानक भूत —

अब परीक्षा के दिन निकट आ रहे थे। अत मैं उसी कार्य में तल्लीन हो गया परन्तु मेरे साथ पढ़ने वाले मुख्तार महोदय मुझे एक विचित्र जन्तु समझते थे। मैंने परीक्षा से दो दिन पूर्व ही पढ़ना, त्याग दिया। और जब परीक्षा आरम्भ होने के समय से एक घण्टा पूर्व उन्हें रटते हुए देखा तो मुझे उन पर दया आई और मैंने कई मित्रो को तोते के स्थान पर पुन मनुष्य बनाने का यत्न किया। परन्तु मुझे इस स्नेह का क्या पुरस्कार प्राप्त हुआ? केवल गालिया और कुछ नही।

—परीक्षा में एक अन्य बात मेरे सहपाठियों को आश्चर्य-चकित करती थी। मैं निरन्तर तीन घण्टे के प्रश्न-पत्र का उत्तर और उस पर पुन दृष्टिपात सवा घण्टे मे ही समाप्त कर के चल देता। केवल एक साम्राज्य की अवस्था से सम्बन्धित प्रश्न-पत्र बडा लम्बा था। जिसके समस्त प्रश्नो के उत्तर मैं सवा घण्टे मे लिखकर बाहर आया था। इस प्रश्नपत्र के समस्त प्रश्नों के उत्तर कोई परीक्षार्थी भी तीन घण्टे मे समाप्त नही कर सका था। मैं समस्त विषयो में उत्तीर्ण हो गया। परन्तु फौजदारी कानून की मौखिक परीक्षा मे दो अको से अनुत्तीर्ण रहा। इसकी भी एक कहानी है। जिसे सुने बिना पाठको की समझ में कुछ अन्य कहानिया न आ सकेंगी। मौखिक परीक्षा के समय गवर्नमेण्ट कालेज का परीक्षा का हाल परीक्षार्थियों से भर कर उन्हे इस कच्ची हवालात मे भर दिया जाता था। पुन: एक एक छात्र को परीक्षक के कमरे मे बुला कर परीक्षा ली जाती थी। वहा से निकल कर कालेज की बड़ी सीढ़ियों पर से बूट को चिरचिराता हुआ छात्र बाहर चला आता था।

(क्रमशः)

हजार रुपये पुरस्कार

श्री नवनीतलाल एडवोकेट ने अपनी धर्मपत्नी स्वर्गीया सत्यप्रिया की स्मृति को स्थिर रखने के लिये "नवनीतलाल सत्यप्रिया धर्मार्थ ट्रस्ट" स्थापित किया है। ट्रस्ट का मुख्योद्देश्य सुपात्र सुयोग्य विद्यार्थियो की आर्थिक सहायता एवं असहाय रोगियो की चिकित्सा तथा सहायता करना है। ट्रस्ट ने पिछले वर्ष लगभग २०००) रु० सहायता कार्य पर व्यय किये।

इस ट्रस्ट की ओर से घोषणा की गई है कि जो विद्वान् विद्यार्थियों को सदाचारी बनाने के लिये असाम्प्रदायिक धार्मिक और नैतिक शिक्षा की कम से कम १५० पृष्ठ की सबसे उत्तम पुस्तक लिखेगा उसको १०००) रु० पुरस्कार रूप में भेंट किये जायेंगे।

लेख-भाषण-वादविवाद प्रतियोगितायें

चन्द्र-आर्यविद्यामन्दिर भवन, सूरज पर्वत, लाजपत नगर, नई दिल्ली मे चन्द्रवती चौधरी स्मारक ट्रस्ट की ओर से रविवार, २ जुलाई, १९७८ को ८ से ९ बजे प्रात. तक लेख प्रतियोगिता, ९ से १० बजे प्रात तक भाषण प्रतियोगिता, १० से ११ बजे प्रात तक वादविवाद प्रतियोगिता और ११ बजे प्रात से आरम्भ होकर जब तक चले तब तक बड़ों की गोष्ठि होगी। इन सारी प्रतियोगिताओं आदि का विषय होगा, "आर्य समाज का प्रचार कैसे हो?" और इनमे भाग लेने वाले होंगे स्कूलो के छात्र और छात्रायें।

लेख, भाषण और वाद-विवाद प्रत्येक मे प्रथम को ४०), द्वितीय को २५) और तृतीय को १०) इनाम मे दिये जायेंगे और प्रथम संस्था को चलविजयोपहार। जो पुरस्कार किसी बालक या बालिका को दिया जायेगा उतनी ही भेंट उसको तैयार कराने वाले अभिभावक/अध्यापक/अध्यापिका को भी दी जायेगी।

यह प्रतियोगितायें विद्यार्थियो मे धार्मिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने, वैदिक धर्म के प्रति प्रेम बढाने, उनको आर्यसमाज के कार्यों मे सहयोग देने योग्य बनाने और शारीरिक उन्नति के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्यो से की जाती हैं। चाँदी के ११ चलविजयोपहारो (शील्डों) के अतिरिक्त लगभग १०००) प्रतिवर्ष पुरस्कारों में दिये जाते हैं। आप भी अपने बालक-बालिकाओं को इन प्रतियोगिताओ मे भाग लेने की प्रेरणा करें।

—०—

गरमी

—श्री अरुणाभ विद्यार्थी

ओहो! कितनी तीव्र धूप है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आग बरस रही हो। कमरे से बाहर पाव रक्खे नही पडता, और भीतर ठहरा भी नही जाता। अन्दर गरमी से सिर उबलने लगता है और बाहर लू झुलसे जाती है। वस्त्र भी तो जलने लग गए हैं। यदि इन्हे पहिना जाए तो वायु के संसर्ग से शरीर मे सर्वत्र जलन होने लगती है। वायु भी क्या है आग की ज्वालाएं हैं। सच पूछो तो ज्वाला से भी अधिक तप्त। शरीर के जिस अवयव से छू जाए उस मे ताप का सचार कर देती है। यदि कहीं सिर पर कृपा हो जाए तो मनुष्य के प्राण समाप्त।

अधिक गरमी के कारण कुछ सूझता नही। आखें मिची जाती हैं। सोने को जी चाहता है, पर नीद नही आती। मक्खियो ने घू घू कर के तङ्ग कर मारा है। गरमी के कारण कपडा लिया नहीं जाता और नगे शरीर ये सोने नही देती। नीद मे दूसरी बाधा पसीना है। पसीना क्या है? शरीर से टप २ कर के जल की धाराए बह रही हैं। मैं तो आजकल पसीने मे कई बार नहाता हूं। पसीने के सूखने के पश्चात् शरीर चिप-चिप करने लगता है। अग से अग लगा नहीं कि मन मे ग्लानि उत्पन्न हुई नही। इस की दुर्गन्ध तो एक नई विपत्ति है। अभी शुद्ध वस्त्र पहनो क्षण भर में पसीने के कारण दुर्गन्ध देने लग जाते हैं।

भाई क्या करे? कहां जाएं? हमे तो कोई ठौड-ठिकाना दीखता नही जहा सुख से दिन बिताया जा सके। दिन भी क्या है? पहाड है। समाप्त होने मे ही नही आता। रात तो तुरन्त बीत जाती है पर दिन प्रात काल से आरम्भ हो कर साय काल तक खतम होने मे नही आता। रात होने पर कही चैन पडती है। आषाढ मे वर्षा पड़ने पर ग्रीष्म ऋतु समाप्त होगी तो चैन मिलेगा।

※

कर्त्तव्य कर्म

लाला जगन्नाथ जी ने स्वामी दयानन्द जी से पूछा—"महाराज! मनुष्य का कर्त्तव्य कर्म क्या समझा जाए?"

स्वामी जी ने उत्तर दिया—"आदर्श प्राप्ति के लिए कर्त्तव्य कर्म किया जाता है। मनुष्य के सामने आदर्श 'परमात्मा की प्राप्ति' है। इस लिए इसका कर्त्तव्य कर्म है कि जैसे दयालु ईश्वर सब पर दया करता है, यह भी सब पर दया करे। ईश्वर सत्यस्वरूप है, मनुष्य भी सत्यवादी बने। इस प्रकार ईश्वर के गुणों को अपने अन्दर धारण करने का अभ्यास करे और अन्त में परमेश्वर को उपलब्ध करे।" (दयानन्द प्रकाश)

[पृष्ठ ४ का शेष]

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि डा० इकबाल के विचारों में यह परिवर्तन क्यों आया ? उत्तर स्पष्ट है कि जब मुस्लिम साम्प्रदायिकता का भूत सर पर सवार हो जाता है तो मुसलमान अहले इस्लाम के गीत गाने शुरु कर देता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि डा० इकबाल इस मुस्लिम धर्मान्धता (साम्प्रदायिकता) की परिधि से बाहर न निकल सके। इस धर्मान्धता के चक्कर में आकर ही मोहम्मद अली ने जो कांग्रेस के सदर भी रह चुके थे, कहा था कि एक फासद और फाजर मुसलमान गांधी से हजार दर्जा बेहतर है। इस धर्मान्धता में फंसकर ही शायरे इनकलाब (जोश मलिहाबादी) शायरे पाकिस्तान बना। भारतवर्ष को इस धर्मान्धता के कारण न जाने कितना नुकसान उठाना पड़ा है। भारतवर्ष का इतिहास इस धर्मान्धता के दुष्परिणामों से भरा पड़ा है।

[पृष्ठ २ का शेष]

सध्या, हवन, स्वाध्याय, जप, पूजा, पाठ करने तथा मन्दिर जाकर प्रवचन आदि सुनने का समस्त भारत में रिवाज था। पूजादि-कर्मविहीन लोगों की सख्या इस देश मे बहुत कम थी।

प्राय सब भारतवासी सत्य बोलते थे। ब्राह्मणो की सत्यप्रियता विशेषतया प्रसिद्ध थी। ह्यूनत्साग आदि चीनी यात्री मुक्तकण्ठ से इस बात के लिये भारतीयो की प्रशसा करते हैं। कचहरी मे गवाही देते समय भी कोई विरला अभागा ही झूठ बोलता था।

भारतवासी जूता पहने कभी भोजन नही करते थे। वे सदा मुह हाथ धो, पैर प्रक्षालन कर, कुल्ला करके, आसन पर बैठ भोजन करते थे। भोजन के आरम्भ मे थोड़ा सा आचमन और मध्य मे थोड़ा सा जलपान किया करते थे। वे भोजन के अन्त मे जल न पीते थे। भोजन की समाप्ति पर वे हाथ-मुह धोकर दान्तो को पूरी तरह से स्वच्छ कर लेते थे। उन मे किसी प्रकार की झूठन वे लगी न रहने देते थे।

भोजन प्रात साय दो काल ही होता था। तीसरे काल में कोई दूध आदि पी लेता था। पहले सब निरामिष भोजी थी। ऋतु ऋतु के अनुसार भोजन बदलता रहता था। भोजन मे षड् रस होते थे। भोजन के आरम्भ मे मीठे, मध्य मे लवण और खट्टे तथा अन्त मे कटु रसयुक्त पदार्थ खाये जाते थे। इसी तरह आरम्भ मे द्रव पदार्थ मध्य मे कठिन पदार्थ और अन्त मे पुन द्रव पदार्थ लिये जाते थे।

मार्ग मे चलते हुए रोगी, दुखी, वृद्ध, स्त्री, भारवाहक और विद्वान् के लिये सदा मार्ग छोड दिया जाता था। बडो के आने पर छोटे उठकर खड़े हो जाते थे। पहले सदा छोटा अभिवादन करता था, पुन प्रत्युत्तर मे बड़ा बोलता था।

विद्यार्थी गुरुभक्त और गुरुसेवक, भृत्य स्वामिभक्त और सेवावृत्तियुक्त, पत्नी मधुरभाषिणी और पतिपरायणा तथा राजा प्रजारंजक होते थे।

गौ, ब्राह्मण, आग और अन्न को कोई झूठे मुह नहीं छूता था। कोई सुच्चे मुख भी इन को पाव नही लगाता था।

परनिन्दा से प्राय सब ही परे रहते थे। परनिन्दक इस देश मे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। सैद्धान्तिक भेदभाव होने पर भी सदा सप्रेम विचार-विनिमय हुआ करता था। समाज मे कठोर-वाक् का प्रयोग न था। अनुद्वेगकर वाक्य की सर्वत्र श्लाघा होती थी। अश्लील शब्द कहने, गाली देने का प्राचीन भारत मे रिवाज न था।

(एक इतिहास-प्रेमी की लेखनी से)

कन्या गुरुकुल हरिद्वार

हरिद्वार मे सबसे पुरानी शिक्षण सस्था कन्यागुरुकुल कनखल मे इस वर्ष से कन्याओ को सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री परीक्षाओ की शिक्षा-व्यवस्था पर विशेष बल दिया जा रहा है। जिससे कन्याए आयुर्वेद मे गतिशील हो सके एव सस्कृत माध्यम से बी० ए०, एम० ए० भी कर सकें। हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग की भी प्रथमा, मध्यमा, साहित्य-रत्न परीक्षाओ की यहा व्यवस्था है। इन दोनो विभागो मे बालिकाओ को प्रविष्ट कराने के इच्छुक व्यक्ति आचार्या जी से दो रुपया मूल्य भेज कर नियमावली मगा सकते है।

आर्य समाजों के सत्संग

२८-५-७८

अन्धा मुगल प्रतापनगर—प० उदयपाल सिंह, **अमर कालोनी**—श्री मोहनलाल आर्य; **अशोक विहार, के० सी० ५२ ए**—प० देवराज, **कालकाजी**—डा० देवप्रकाश महेश्वरी, **किग्जवे कैम्प**—प० सत्यदेव शास्त्री; **किदवाई नगर**—प० ब्रह्मप्रकाश, **गांधीनगर**—प० वेदपाल; **ग्रेटर कैलाश**—प० हरिदेव, **जंगपुरा भोगल**—डा० नन्दलाल, **जनकपुरी बी** २ बी/२६६—प० ओ३म्प्रकाश, **जहांगीरपुरी**—स्वा० स्वरूपानन्द, **तिलक नगर**—पं० महेशचन्द भजनमण्डली; **तोमारपुर**—श्री वीरेन्द्र परमार्थ, **नांगल राया**—प० गणेशदत्त, **बसई दारा पुर**—स्वामी भूमानन्द; **महावीर नगर**—स्वा० ओ३म् आश्रित, **रघुवर पुरा नं० २**—प० दिनेश चन्द; **रघुवीर नगर**—प० तुलसीराम, **राणा प्रताप बाग**—स्वा० सूर्यानन्द, **रोहतास नगर**—प० प्राणनाथ; **लड्डू घाटी**—प० देवेन्द्र आर्य, **लाजपत-नगर**—प्रिंसीपल चन्द्रदेव; **विक्रम नगर**—प० ईश्वरदत्त, **सराय रोहेला**—प्रो० सत्यदेव बेदार, **हनुमान रोड**—प्रो० भारतमित्र स्नातक।

आवश्यक सूचना

सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है कि श्री भगवान देव अब श्रद्धानन्द सेवाश्रम, आर्य भवन जोर बाग, नई दिल्ली की सेवा मे नही है। उसका १-२-७८ के बाद स्वामी श्रद्धानन्द अखिल भारतीय स्मारक ट्रस्ट और पिछडे वर्ग सेवा संघ से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नही है। वह चार्ज देकर नही गया है। उसके पास इन संस्थाओं की कुछ रसीद बुके, रजिस्टर, फाइलें, कागजात और सामान है, जो वह इस कार्यालय से ले गया है। सब भाईयो को सावधान किया जाता है कि श्री भगवान देव को इन संस्थाओ के नाम पर कोई कार्य-व्यवहार करने का और इन संस्थाओ की ओर से लेन-देन का अधिकार नही है।

—नवनीतलाल मन्त्री, श्रद्धानन्द सेवाश्रम, नई दिल्ली।

ऋषि-वचनामृत

कल्याणकारी कर्म

काशी मे एक धुनिया विनयपूर्वक नित्यप्रति स्वामी जी की सत्संग-गंगा मे स्नान कर अपने अन्तरंग को निर्मल बनाया करता था। स्वामी जी महाराज ने उस पर अपार दया करके उसे 'ओ३म्' पवित्र का जाप करना सिखाया। एक दिन भक्त धुनिए ने प्रार्थना की—"महाराज जी! जाप के अतिरिक्त मुझे और क्या काम करना चाहिए जिससे मेरा कल्याण हो।" महाराज जी ने उपदेश किया—"सदाचार-पूर्वक जीवन बिताओ। जितनी रुई किसी से लो, तुम धुन कर उतनी ही उसे पीछे लौटा दो। यही सद्-व्यवहार तुम्हारे लिए एक उत्तम कल्याणकारी कर्म है।"

(दयानन्द प्रकाश)

कर्म फल

(१) बरेली मे भक्त स्काट ने स्वामी जी से पूछा—"महाराज! कर्मफल का कैसे पता लगे?"

महाराज जी ने पूछा—"आप लगडे क्यो हैं?"

स्काट ने कहा—'ईश्वरेच्छा।"

महाराज जी ने कहा—"इसे ईश्वरेच्छा न कहिए; यह कर्म-फल है। सुख-दुख के भोग का नाम कर्म-फल है। जिस भोग का यहाँ कोई कारण दिखाई न दे, उसे पूर्व जन्म के कर्मों का परिणाम कहते हैं।"

(दयानन्द प्रकाश)

(२) "जीव जिसका मन से ध्यान करता है, उसी को वाणी से बोलता; जिसको वाणी से बोलता, उसी को कर्म से करता, जिसको कर्म मे करता, उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ, कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करने वाले जीव ईश्वर की न्यायरूप व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते है तब रोते है।"

(सत्यार्थ प्रकाश)

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली-१ के लिए श्री सरदारी लाल वर्मा (सभामंत्री) द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा भाटिया प्रेस गुरुनानक गली गांधीनगर दिल्ली में मुद्रित कार्यालय १५ हनुमान रोड, नई-दिल्ली।

master of the dance closes the Sunday hop with a lottery

"For two hours beforehand, there is a trophy procession preceded by drums and fifes. Brrroum, brrroum, brrroum. . . . It's under my window, it's in the house. . . . Till nightfall the ophicleides will bellow, the fifes will whistle and the cornets din. In the midst of such a Kaffir orchestra, you can guess what will become of mathematics! Let's be gone! A mile away I know a lonely, stony desert that the locusts and the wheatear love. I take my book, a few pieces of paper and a pencil and am gone to that solitude. Oh! beautiful silence!"

As the car left Pernes behind and began to pass through a land of lonely, sandy hillocks, covered with thyme, Margaret suggested that it was probably Fabre's *solitude.*

"It strikes me," said Giles some time later, "that our sister is showing her special genius for losing us on a perfectly straight road! There's a big bridge ahead. We are going to cross the Rhone and yet Pernes, from which we have come, and Avignon, to which we go, are both on the left bank with a straight road between them."

"The last sign-post said Villeneuve, Remoulins, Nîmes," remarked Margaret.

Villeneuve! exclaimed Penelope. That is really luck! Fabre used to go out to Villeneuve from Avignon to collect centipedes. He was writing a book about them as part of his examination for

the doctorate. While he was looking for centipedes, he met his first Languedoc scorpion, a very nice beast for our next story, but, on the whole, someone ordinary people would rather avoid meeting.

The Tale of The Languedoc Scorpion[15]

"I would raise a stone," writes Fabre, "and there he was, horrid hermit! His tail curved over his back, a drop of poison at the end of his spear and his claws spread out at the entrance of his hole!

"Brr! Leave the dangerous beast alone! The stone fell back. They are real hermits, passionate lovers of solitude. Never have I met two under one stone; or to be more accurate, when there have been two, one has been eating the other. They are eight or nine centimetres long and the colour of dead straw. Their weapons are front claws and tail. With the first, they clutch the enemy and hold him motionless, while the tail, curved right over the back, strikes and poisons him.

"They have eight eyes, two in the middle of the hideous thing that serves for head and chest in one, and the rest arranged three by three over the arch of the mouth, but all eight look sideways. So that the scorpion, in spite of many eyes, is short-sighted and squint-eyed and has to move by feeling his way like a blind man."

It was not, however, at Villeneuve, but many

years later at Sérignan that Fabre made his real study of scorpions. He caught them by the tail with pincers, forced them head first into a twist of strong paper and carried them home in a tin box. There, he arranged a portion of his garden to please some and others he caged. But those in the garden fled and those in the cage refused to be happy and well in so small a space. He only managed to keep them by building them a palace of glass. Even from that they began to escape; and remember they were dangerous. The glass walls of their palace had to fit into wooden corners. The scorpions climbed up the wood! Fabre tarred it. They escaped. He oiled and soaped, that did not worry the scorpions. He covered it with glazed paper, which puzzled the fat ones, but the thin climbed even that. At last he covered the glazed paper with soot and then no one reached the top and liberty.

The palace had a floor of sand with twenty-four grottoes made of broken flower-pots; between the grottoes there was space for long corridors and walks. The captives began to dig at once under the potsherds to secure themselves a shady house. They stood on their fourth pair of legs and used the other three pairs for digging. Scorpions never use their long arms to dig; those are reserved for fighting and feeling their way. As they dig, they sweep away the rubbish with their tails and if it does not go far enough to please them, they go at it again till it does.

Scorpions are very good at fasting. Fabre at first expected, when he visited their homes, to find the remains of an ogre's feast; he found instead the crumbs of a hermit's fast. If he offered them dainty bits, they flicked them away with their tails like the dust. From October to April they eat nothing. Towards the end of March he has seen them nibbling a tiny morsel.

"I try them," he writes, "with the field-cricket —fat and melting like a pat of butter. I put half a dozen of these in their cage with lettuce leaves to console them for finding themselves in the lions' den. The singers seem careless of their terrible neighbours; they sing and munch their salad. If a scorpion walks by, they look at him; they point their delicate antennæ at him without other sign of fear at the passing of the monster. He, the monster, retires as soon as he sees them; he is afraid of making a mistake with strangers."

But when the scorpion met a food he liked better, a beetle to his taste, the story was different. He advanced, the beetle remained still. "It was not a hunt," said Fabre, "but a plucking—no haste, no struggle, no movement of the tail, no use of poison. With its two-fingered arms, the scorpion snatched the tit-bit; held it to its mouth, and, without changing position, devoured it. But the live prey objected, struggled, and then the tail curved forward right over the mouth and speared him. He was thenceforward motionless while the feast continued. The scorpion touched him from

time to time gently with the end of his tail, looking, for all the world, as if he were taking mouthfuls with a fork. After a few hours the dinner was done and the scorpion used his fingers to take the remaining bits out of his mouth, like an old man picking his teeth. He would not eat again for a long time.

"But in May, when mating time comes, this frugal fellow becomes a greedy-guts. I have often found him—but it is always her—eating scorpion as if it were any ordinary game. A stomach must be very yielding to take in a dinner as large as the diner."

There were times in his experiments when Fabre teased some other large insect into attacking a scorpion and the scorpion, who is generally a coward, into repulsing the attack. The scorpion always won and then in the glory of victory, ate his adversary. But, let us repeat, except for a habit of eating their husbands and an unusually aggravating enemy, scorpions are small eaters.

In the course of his experiments also, Fabre found out a strange fact about the scorpions' poison. All the insects, great and small, died when stung; but the worms that in the future were going to turn into those insects lived quite unaffected by the stinging. Speaking of the silkworm, he says, "the worms have a fine skin; so that each time the scorpion's spear plunges in, they bleed. The little table, where my curiosity makes me commit these barbarities, gets covered

with blood, like drops of liquid amber. Yet, when they are put back on the mulberry leaves, the wounded worms begin to eat with their usual appetite and ten days later are weaving perfect cocoons. From those cocoons come moths who will die for certain from a single scorpion sting".

You remember that the palace of glass had long sandy walks. Now you shall hear why, in Fabre's own words:

"Spring returns. From the middle of April, every evening, at dark, between seven o'clock and nine, there is a great stir in the palace. What seemed a desert by day, becomes a scene of rejoicing by night. As soon as supper is over, the whole family goes to look. A lantern hanging in front lets us watch events.

"It's our amusement after the day's work; it's our play. In this theatre, where the actors are insects, the plays are so interesting that immediately the lantern is lit, we all, big and little, come and take our place in the pit—all, even Tom the dog.

"Near the glass, on the sand in the lighted zone, collects a numerous scorpion company. Everywhere else, lonely scorpions promenade and at length, attracted by the light, leave the shade and join the lighted dance. The newcomers mix in the crowd, while others, tired with the excitement, withdraw into the shadow, rest a few minutes and return to the play.

"It's quite an attractive saraband, the dance

of these horrors gone mad with joy. They come out of the distance—slowly and seriously they come out of the shadow; suddenly, with a rapid little run, like a slide, they join the lighted crowd. They are as agile as tripping mice. One seeks a partner; she is gone like a flash as soon as he touches her fingers, just as if they had burnt one another. Some of them roll about together, then scamper off in confusion; get back their assurance in the shadow and return.

"Sometimes, there is quite a lively tumult. The place is aswarm with claws, with snatching fingers and curved tails. In the scrimmage two points light up and shine like carbuncles. You would take them for flashing eyes, but in reality they are two facets in the forehead, polished to such an extent that they act as reflectors. They are all in the hubbub, big and little; you would say it was a fight to the death, a general massacre, and it is only a mad game. The group separates; everyone takes a rest and there isn't a wound or even a sprain among them.

"Here they come back, they pass and re-pass, they come and go, often meeting face to face. Someone in a hurry walks on someone's back. He doesn't mind. The worst that happens is a cuff from a friend, a tap of the tail—that's their way of shaking hands.

"There is something better than this mixture of claws and brandished tails; sometimes they put themselves into most original positions. Face to

face and fingers together, two of them stand on their hands and raise their whole body, tails and all into the air. Then, with those tails they tickle one another, rub them up and down, hook them together, undo them, hook them again and so on. Suddenly, the friendly pyramid falls down and each one decamps in haste.

25th of April, 1904 Holà! What's this I haven't seen before? Two scorpions are face to face, hands held out and fingers clasped. Knight and lady they are; she is fat and brown, he is thin and pale. With measured step and their tails prettily curled, the pair stroll before the glass. He is in front, walking calmly backwards. She follows obediently, held by the tips of her fingers and face to face with him who draws her.

"They halt in their walk without changing their position; they go on again, here, there, from end to end of the palace . . . they loiter, they dream, they exchange glances. Just so, on a Sunday evening in my village the young people loiter along the hedgerows.

"They often change their direction and it is always he who decides. Without letting go of her hands, he makes a graceful half turn, places himself at her side and caresses her spine with his tail.

"I watch unwearied for full an hour. At about 10 o'clock, something happens. He has arrived at a potsherd that seems to please him. He lets go one of his lady's hands. But holding hard with the other, he digs with his feet, dusts away the

sand with his tail until a grotto opens before them. He goes in and gently, little by little, he draws his patient lady in after him. The pair are at home. . . .

"To the happy story of the evening succeeds the atrocious tragedy of the night. On the morrow, our lady is under the potsherd all right. Her little husband is there too, but slain and a little of him eaten. His head is gone, an arm and two legs. I carry the corpse outside All day the lady hermit refuses to touch it. But at night, coming out, she finds the dead on her path and carries him off to give him honourable burial, that is to say, to finish eating him."

If the scorpion is a disagreeable wife, she is a charming mother. Fabre found her one morning with all her family; some had scrambled on to her back, but others were still in their transparent egg.

"The little creature was condensed into a grain of rice and had its tail folded against its stomach, its claws against its chest and its feet against its sides, so that nothing stuck out. On its front, dark spots showed where the eyes would be. The little thing was floating in a drop of liquid enclosed in the tenderest possible skin. I see the mother gently bite this skin, tear it, take it off and eat it. She is as gentle with her new-born baby as a sheep or a cat . . . there go the little ones, carefully washed, quite clean and free. They are white. As each one's toilette is finished, he climbs

on to his mother's back by her claws which she keeps on purpose lying flat on the ground so that the climb may be easy.

"On a hot afternoon the sight of mother scorpion and her little ones is almost as pretty as that of a hen and chickens. Most of the family are on the ground close around mother, some are climbing up her tail, some are camped at the top and seem to be enjoying watching the crowd from their lofty seat. Other acrobats clamber up and take their places from them. Everyone wants the view!

"Around the mother it is swarming with children. Some creep underneath her so that you can see nothing of them but their shining black eye-points. The most lively prefer her feet. Those are their gymnastic apparatus. On them they do trapezium exercises. Then when they are tired, the whole troup get back on to their mother's spine and all is still."

Chapter IX

The Sacred Beetle

"When God had finished the stars and whirl of coloured
suns
He turned His mind from big things to fashion little
ones,
Beautiful tiny things (like daisies) He made, and then
He made the comical ones, in case the minds of men
Should stiffen and become
Dull, humourless and glum "

Harvey

The words "a walled city" have a different meaning for those who have seen Carcassone, Aigues Mortes and Avignon and for those who have not. The walls of those cities have not crumbled or covered themselves with moss or lost themselves in the city's heart like the walls of York or Chester They stand lofty, as high as churches; they go on and on unbroken; at regular intervals their round towers still strike wonder and fear into the watcher; at regular intervals too their deep, shade-haunted gates are still the entries into the town. Through one of these Penelope took her car with careful caution, on account of the traffic on the other side, and came out into a brilliant clarity of sunshine which is the special privilege of the South. Under the bridge, the tremendous Rhone poured its rapid waters brimming from the early melting snows. To the right, the lovely broken bridge of ancient Avignon

whispered that there are "sermons in stones" and tales in everything. Ahead the great main road ran to Nîmes and beyond to Spain and the Pyrenees But the children that morning were looking for a big umbrella and a dung beetle. They therefore turned to the left. It was not far before Penelope slowed down. On the one side all was mingling waters, a great expanse of gleaming, sun-smitten river, for there the big Durance flowed into the swollen Rhone. On the other side there were barren stony cliffs covered with ilex scrub.

This must be Issarts Wood, she said.

"Wood!" exclaimed Giles "Where? This is scrub, not as high as one's head, not a bit of shade."

Here, said Penelope, when Fabre came back to be professor at Avignon, he used to come in his free time to watch his beasts, and if it is as hot as this in April, you can imagine what it was like in July and August. He had no shelter from sunstroke but a great umbrella under which he would sit for hours. And sometimes he would have to lie flat to get the shade of a small bank, and even, he has cooled his poor burning head by thrusting it into a rabbit burrow! Up that cliff, to the right, is the village of Les Angles.

The very flies used to take refuge under the umbrella, and once Fabre was startled by various noises like nuts dropping on the silk. However it was nothing but wasps suddenly landing to

fetch the flies for dinner They had discovered the excellent larder and Fabre had an observation laboratory all handy.[16]

The children wandered a little over the arid ground, with its loose stones and sweet-scented thyme; but the notice that it was all "*champ au tir*" (shooting butts) made them timid and they sat down instead to listen to Fabre's adventures in this place that he called his little *Arabie petrée*, or stony desert

Fabre tells us, said Penelope, that the school children used to come out here on Thursday half-holidays to search the ground for spent bullets which they sold by weight, quite a quantity for a halfpenny or so. One day he wanted them to find him a sacred beetle's ball with a worm inside, and they stood round him in a circle munching their apples while he explained to them what they were to do. A whole franc they were to have for a ball with a worm in it; balls without worms to count nothing. He tells us how their eyes sparkled at the thought of so immense a sum.

"I had just upset their ideas of value by putting such a mad price on a bit of dirt," he said.

He gave them a few halfpence of earnest money and the search began. But never a ball with a worm in it did any of them find in two weeks. Fabre paid the hardest workers for their work, but for success he had to depend on himself. The story of why he wanted a ball with a worm in it is:

The Tale of the Sacred Beetle[17]

"They are handsome fellows fit to decorate a collector's box," says Fabre, "on account of their severely simple dress, which is always irreproachably polished, and their odd head decorations. Though the European sacred beetle always wears ebony black, tropical fellows deck themselves in sparkling gold or glowing copper. And all this fine dressing—to do what work do you suppose? A dustman's duties! When cow, horse, mule or sheep inadvertently soils the world, the sacred beetles rush up, one, two, a whole crowd and carry the dirt underground. No wonder the ancient Egyptians called them sacred and even went the length of regarding them as gods! When the smell brings them to a heap of dung, some scratch away the surface; some open corridors to the centre of the mass, seeking special tit-bits; others simply bury the lowest layers there on the spot, some in a great hurry sit down to dinner where they are. But the majority lay in a store on which they may feast for days together in some sure retreat; because, remember, a nice fresh lump of dung is not always to be found in the middle of these stony thyme-scented plains—it's a gift of the gods."

"Who is this trotting up to the heap," writes Fabre, "rather afraid he is late, his long legs advancing with a quick awkward movement, his little antennæ opening their fan—a sign that he

is both anxious and greedy? It's himself, the sacred beetle, dressed in black, the biggest and most famous of the dung beetles. He has a broad flat edge to his head, fortified with a semicircle of angular projections. That's his digging and cutting tool, the rake that separates and throws out any vegetable which he does not find good to eat, that chooses out the best stuff and rakes it together. Beetles know how to choose. They are not over-particular when they are collecting food for themselves; but if it is for their children they are most scrupulously exact.

"Look at him at work! To right and left go those curved front legs of his with edges like saws, sweeping a semi-circle free for himself, gathering armfuls of food and pushing them backwards under his tummy where his four other legs, curved into arcs for the purpose, turn the food over and over till it becomes a ball. Watch that surprising ball grow till it is many times the size of the beetle and often as big as an apple!

"Next the ball has to be taken home. The beetle embraces it with his two hindmost legs, uses the next two as supports and walks backward on the front two, pushing the ball behind him, his head touching the ground. Those two back legs keep the ball in its place and move it along with gentle pushes first with the right and then with the left. He doesn't get home without accident. There is a hill in the way—Sir Beetle—or is it Milady?—slips, and the ball rolls

to the bottom of the valley turning the pusher head over heels on the way. She picks herself up and harnesses herself once more to the load.

"Why doesn't the silly go along the bottom of the valley where there is a good path? Not a bit of it, she climbs the hill again. Well, if her house is on top, perhaps she has to, but she might take the little gentle path. Not even that! If there does happen to be a really steep hill which it is not possible to climb, Madame Beetle is sure to climb it. Sisyphus had not a harder task. One
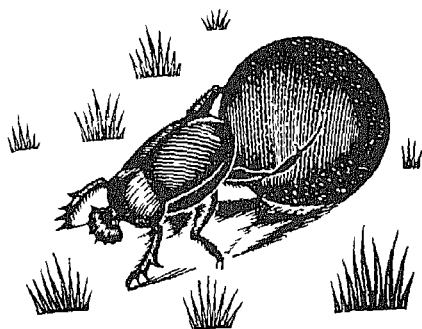
wonders how such a mass can be persuaded to balance on the slope. Ah! a false movement brings to nought all that tiring work; the ball rolls down again and the beetle after it. Again she goes up, and this time carefully avoids the grass root which caused the last fall.

"Carefully! carefully! the slope is dangerous, a nothing can destroy everything. There she goes, her foot has slipped on a polished pebble,

pell-mell, ball and beetle to the bottom again! Ten times, twenty times she will fail, but she will never give in till the ball has been pushed home."

Sometimes she gets a helper. People, who have not watched as carefully as Fabre, will tell you that beetles have kindly characters and that when one beetle finds herself in trouble, with her ball stuck in a pit from which she cannot extricate it, she will go and fetch an ally to give her a hand. But Fabre, the "incomparable observer", as Darwin calls him, draws other conclusions from what he has *seen* He has often put a ball and its beetle into a pit, but never has the beetle gone to fetch a friend No, when an industrious beetle has made a splendid ball, some lazy newcomer, who has only just begun his ball, slips away from the crowd and lends the first a hand unasked—and that not for kindness, but in the hope of sharing the meal or even of stealing the ball. Fabre has seen this newcomer, instead of helping to push or to pull, calmly sitting on top and being pushed. He holds on so firmly, that when the ball rolls down the slope, he goes with it, and adds to its weight when the original owner is pushing it up again. Or he even, from his vantage point on top, fights the owner, trying to become sole possessor of the beloved ball. Yet he does sometimes help too, but always to get a meal.

The beetle's den is a hollow as large as a fist with a short gallery leading to the open air. Once

inside, the beetle shuts the door by sweeping over the opening rubbish which she has left there on purpose. Then, shut securely in with none to disturb her, she sits down to the feast and eats without stopping.

"To see her thus," writes Fabre, "absorbed on the edge of that massed immundity, you would say, almost, that she realised her duty as cleanser of the earth; and that she did her work as if aware of that wonderful chemistry, which, out of dirt, creates flowers to be a joy to the sight and beetles' wings to adorn our spring-time lawns.

"And as this wonderful change has to happen with the least delay possible for the sake of the general health, the sacred beetle is endowed with a power of digestion beyond everything else."

Fabre watched one for twelve hours who ceased not all that time to devour. And all that time, as the food in front of the little beast was eaten and went down, behind, just as continuously, it re-appeared in a long black cord, three or four millimetres of it every 54 seconds. In twelve hours the trail of the food that had passed through the beetle was 2 metres, 88 centimetres, or about 3 yards long.

One day a shepherd brought Fabre a pear, a beautiful shining brown pear which he said he had found in a beetle's den. The children stood around begging it for a toy. The shepherd said he had found an egg in another pear which he had crushed by mistake, an egg about the size of

a grain of wheat. Fabre could scarcely believe it, for he had been expecting all the time to find the beetle's eggs in a round ball, seeing that he had never seen them make anything but round balls. No, he could not open it to see, because he might never find another. He had to wait till morning and go with the shepherd to try and find more pears like it. And he was not disappointed. As the shepherd raised the earth with Fabre's little trowel, there in the hollow lay the pear. Now to find the egg, in the middle? Or at the end? The story is long; again you must read it for yourself.

Here is very briefly what Fabre learnt from the pear. When Madame Beetle is thinking of her baby grub, she chooses the very best and most nutritious dung, the cow's. She makes the ball with infinite care, knowing all the dangers she has to provide against. For instance, if the drought gets through as far as her den and the grub's ball dries, the grub will find it impossible to eat; so the beetle polishes and hardens the surface till it becomes like a jar to keep the food inside soft and moist. At one end of the ball, she makes a small round depression with the edges standing out much like the mouth of a humanly-made jar. In fact, a picture of the pear at that stage looks like a man-made jug. She polishes the inside surface of the depression and in it she places some beautifully soft, almost liquid food which she has, like the pigeons, first

chewed and spat out. In the middle of that she lays her egg and then draws the edges together smoothly, but leaving room for air to pass in. Lastly, she gives the whole the beautiful form of a pear. When the grub awakes he will find that he has plenty of air through the gathered-up end and just the food he needs to begin on. If he had awakened in the middle of the pear he would have been suffocated. When he is older, he eats into the rounded part of the pear, but if it has grown too hard for him, escape is open behind.

To see these things happen, Fabre put the beetle and her food in a glass box in two storeys with a sloping platform from one to the other. Over the bottom storey he placed a removable shutter. By opening that rapidly he got glimpses of the beetle at work before she escaped upstairs to the dark, which she always did at the faintest approach of light. But with the grub he was not so successful. He broke a slit in the food ball to see that young thing at work and was surprised to see the slit instantly mended by master grub. As often as Fabre made a hole in the polished outside of the ball, the grub threw at it some of its own excrement which mended it completely.

It was those balls, the pear-shaped balls, which the children on these rocks never found, and for a very good reason—they are always underground The beetles do not roll their babies about, but make the nursery balls in the dens and leave their babes in utter stillness. If all goes well, the

egg hatches out into a grub who becomes a hump-backed, fat, caterpillar-shaped creature, who transforms the stored food into himself until he fills the whole pear. After three or four weeks he casts his skin and becomes a beautiful nymph with "long wings folded beside his body like a sheath and front legs bent under his head. He is almost transparent and honey-yellow like a statue cut in amber". For four more weeks that is his form; then he becomes a beetle with "a dark red head and chest, a white abdomen and transparent white wings slightly tinged with yellow. This magnificent costume in which are associated priestly white and cardinal's red is only temporary and gradually turns to ebony black. In another month the beetle is ready to break through the shell of the pear and to make his way to the upper air. If a little, even a little rain, comes to help him with the hardness of his walls he is lucky and he uses his first day in the light warming himself in the delicious sun".

"What is he thinking," asks Fabre, "while he takes his first bath of radiant light?"

CHAPTER X

Visitors

"Il donna ici les cours publics de sciences, organisa le museum Requien, fit ses decouvertes de chimie industrielle, et reçut la visite de Victor Duruy, Stuart Mill, Pasteur."

THE morning after their visit to Les Angles, the Yew Tree family happened to be passing the church of St. Martial, when Geraldine discovered the inscription on the door which none of them had seen on their former visit. From 1852 to 1870 Fabre lived in Avignon and himself lectured in that same church where he had received his memorable chemistry lesson. Penelope translated the inscription: "Here, he gave public lectures in science, organised the Requien museum, made discoveries in industrial chemistry and received visits from Victor Duruy, Stuart Mill and Pasteur." She was just about to explain why these visitors were so famous as to be mentioned in an inscription, when her banker friend passed, and, lifting his hat said: "I am sure if you want to know more about Fabre, his nephew, whose office is near-by, will be glad to talk to you about him."

The four needed no further invitation, but their hearts failed them for shyness as they faced the great marble staircase of an ancient palace and were told that M. Henri Fabre was upstairs.

So the three sat respectfully in the cool shade on the lowest step and sent Penelope alone on the exciting search. When she returned with them to the sunny gardens she had a great tale to tell.

No, Jean Henri's nephew and godson was not like his uncle's statue; but he was just as delightful. He was short, with brown eyes of a very glistening and very kind variety; probably those were just like Jean Henri's; he was kindness itself, with the most enchanting French manner and he had told her so many stories that she did not know where to begin. First, it was quite visible that Fabre was a hero to his own family. M. Henri had taken her to see all Fabre's books in his bookcase and shown her two medals; one where Fabre was shown studying with a magnifying-glass a plant with a cocoon on it. The reverse was quite enchanting, a view of his garden, the garden we are going to see at Sérignan with Mont Ventoux behind and plane-trees in front and insects in the foreground. It was quite a small medal and yet even the tiny insects were beautifully cut.

M. Henri had himself attended Fabre's lectures in the church, and imagine it!—they were so popular that it was necessary to have police to keep back the crowds who wished to go to them. People were attracted partly by the interest of his subject, but also by his wonderful eloquence, an eloquence which he never strove after, but

which arose naturally from his deep knowledge, his accuracy and the great clearness of his mind which expressed itself in his crystal clear language. Happily, we have his *Souvenirs* where everyone, who knows French, can still hear and love that beautiful eloquence.

"Fabre," said his nephew, "was a 'well of knowledge'. He lived to be ninety-two but almost the last thing that he said was: '*Il y a tant à faire*'—there is so much to do!"

When M. Henri was a boy, he used to learn his uncle's poems by heart and once, on his birthday, instead of a present, he recited them to him in Provençal The old man was so delighted that tears of emotion poured down his cheeks and the pleasure the nephew was able to give has remained one of his best memories, a joy and happiness for all his life.

In one of his rooms there was a beautiful picture of Fabre at work in his study; he is looking up and his face is full of energy—a loving and beautiful face. Another picture was of Fabre, his wife and his son, half buried in earth watching insects.

He, like the baker of Carpentras, told how eager Fabre was to talk at length and with great seriousness to anyone who really wanted to know; but to those who visited him out of curiosity he would not say a single word "*Pas un mot!*"

Fabre was a great friend of the English

economist, John Stuart Mill, who lived in Avignon. You have probably heard what a wonderful little boy was that same Mill. Before he was eight he knew Greek so well that he had read in that language serious books of history and philosophy.

Mill went to Avignon on a visit with his beloved wife; but because she died there, he bought land and built a house with a window looking out on her grave in the cemetery and there he lived until he too died He used often to call on Fabre to talk of knowledge and of the education of women in which they both believed. In those days learning was reserved for men; you shall hear later on how punished Fabre himself was for teaching science to girls.

The Story of Pasteur's Visit[18]

You all know the name of Pasteur, because you have all heard of pasteurised milk. Some day you will know more about the greatest Frenchman of all, who discovered how to conquer some of the germs that bring disease and so saved perhaps more lives than any other single man. One day, quite unexpectedly, he rang Fabre's bell. Silkworms were sick and the French government had sent Pasteur to the south, to find out how to cure them. He had never seen a silkworm, so Fabre was the right person to come to.

"Could you get me a cocoon?" asked Pasteur

"Nothing easier!" replied Fabre. "My landlord is himself a dealer in cocoons and lives next door. If you'll be kind enough to wait a moment I will bring you what you want. I hasten to my neighbour's, where I stuff my pockets with cocoons. On my return I offer them to the scientist. He takes one; turns it over and over in his fingers; with curiosity examines it, as we should some singular object which had come from the other end of the world. He shakes it against his ear. 'It rattles!' he says, quite surprised. 'Is there something inside?'

" 'Why, yes!'

" 'But what?'

" 'The chrysalis.'

" 'What's that, the chrysalis?'

" 'I mean the sort of mummy into which the caterpillar turns before it becomes a moth.'

" 'And in every cocoon there is one of these things?'

" 'Of course! It's to protect the chrysalis that the caterpillar spins.'

" 'Ah!' "

So Pasteur went away with his cocoons and saved the silkworms and the silk industry of France.

And Fabre said: "Encouraged by the magnificent example of Pasteur, I have made it a rule to adopt the method of ignorance in learning about the instinct of insects. I set myself stubbornly face to face with my subject until I contrive to

make it speak. I know nothing. So much the better."

The Visit of the Chief Inspector[19]

Schoolmasters and schoolmistresses are often afraid of inspectors. Even Fabre, when the inspector came into his lesson on graphs hastened to pick out the best graphs of his best pupil to win his admiration. But the inspector was not interested. They called him "the crocodile", so you would not expect him to be very agreeable. But Fabre was really disturbed when the great man put the good school work aside indifferently. What could be the matter?

"Are you a rich man?" asked the inspector suddenly.

Fabre was very poor indeed. He was doing almost as many things as his old schoolmaster of St. Léons to try to earn enough to keep his growing family.

"Poor? That's a terrible pity!" exclaimed the inspector. "I have read your writings. You are a true observer, you care for research, you speak well and write with ease; you would have filled a chair of science with distinction at the university."

"That's just what I am aiming at."

"Renounce all thought of it."

"Have I not the right knowledge?"

"Yes, but you are not rich! To hold a university chair you can be as dull and mediocre

as you like; but you must have enough money to play a public part. Poverty with a professorship spells mere misery."

"Sir, I thank you. I will see if I can earn enough money first to enable me to do advanced teaching."

"That's sarcastic," said Geraldine, her head on one side and puzzlement in her eyes

The Visit of Victor Duruy[20]

Fabre planned to earn the money which would enable him to teach at the university by finding a better and cheaper way of extracting alizarin dye from the madder plant which was one of the chief industries of his district. He had found in his chemical work that it was possible to make a chemical dye, but to put it on the market would have been to destroy the madder industry and throw the labourers out of work. So he kept his discovery secret and worked at improving the madder dye But just as he was verging on success, the Germans discovered chemical alizarin and all his hopes were dashed But his work in dyes won him a friendship perhaps as good as a fortune.

One day as he lent over his vats, his hands blood-red with the stuff he was working in, a man with a familiar face came in. Fabre had seen him once and envied the teachers of literature whose inspector he was, for having such a much nicer

man to help them with their teaching than the mathematical inspector. Now the man he would have liked to know, Victor Duruy, had been made Minister of Education under the Emperor Napoleon III and was actually in his laboratory.

"I have just a few minutes left of this visit to Avignon," Duruy said, "and I would like to spend them with you."

"Confused at the honour," wrote Fabre, "I began to excuse myself for being in shirt-sleeves and having these hands like boiled lobsters."

"No excuses!" said Duruy. "I wanted to see you at work, and a workman is always best in his blouse. What are you doing?"

When he had had that explained to him, Victor Duruy asked what Fabre wanted for his laboratory.

"Nothing," was the answer.

"You are different from the rest, who always want something."

"I will accept one thing."

"What?"

"The distinguished honour of shaking hands with you."

"There, what else?"

"A crocodile skin, when one dies at the Zoo. I want to hang it in the roof to rival the old necromancers."

The minister looked round, pausing at the vaulted roof and laughed. "Now I know the chemist," he said. "I knew you before as a

naturalist and writer. I have heard of your little beasts. I should have liked to meet them. Now I have a train to catch—walk with me to the station, there'll be nobody to interrupt us."

So they walked, the two talking of madder and beasts and forgetful of all else in the joy of talk.

An old beggar woman held out her hand and Duruy gave her a gift.

"It's the Emperor's minister who has given you that," said Fabre.

"*Que lou bon Dieu ié done longo vido e santa, pecaire!*" said the old woman.

Fabre translated: "She wished you long life and health, and, as to *pecaire*, it has all the heart's tenderness in it." And he too repeated that wish of good luck to the gentle-hearted minister.

But as they entered the station, to Fabre's horror he saw assembled to honour the minister, the commander-in-chief, the prefect and his secretary, the mayor and deputy, the school inspector and other educational dignities. As the great men bowed to the minister, Fabre said he felt like St. Roch's dog—the dog who used to sit with the saint and share all the bows the pilgrims made to his master.

Then Duruy seized his hands which he was hiding in his hat behind his back and said: "Let me show you these."

"A workman's hands," said the prefect.

"A dyer's hands," said the general.

"Yes," said Duruy, "hands that may help the chief industry of your district and which also use the pen, the pencil, the magnifying-glass and the scalpel. As you seem not to know about that here, I am enchanted to have the pleasure of telling you."

Fabre says he wanted the earth to swallow him up and was sincerely glad that the train left at that moment, carrying away a laughing and jestful minister.

But it was not long before Fabre heard from Duruy again. He received a letter calling him to Paris. Afraid that he was going to be offered another school in the capital, which would have separated him from his dear country beasts, he refused. Then Duruy wrote again: "If you don't come, I shall send my police to fetch you."

When Fabre arrived in Paris, Duruy gave him a newspaper saying: "Read that; you refused my chemical apparatus, you won't refuse that." And he saw that he had been given the greatest distinction in France, that of the *Légion d'Honneur*. Duruy himself pinned on the red ribbon, kissed him on both cheeks and telegraphed the glorious news to his home. Then he handed him an envelope to pay, as he said, his travelling expenses. But in it Fabre found 1,200 francs and when he protested and wished to refuse, Duruy said: "Take it, or I shall grow scarlet with rage and what's more, you have to come and see the

Emperor with me to-morrow. Don't try to escape, remember the police!"

And on the morrow, try to imagine our Fabre being ushered through the stately rooms of the Tuileries by splendid chamberlains in knickerbockers and silver-buckled shoes. What do you think they reminded him of? His beetles, of course, with, instead of wings, brown frock-coats, key-patterned behind. There was present a crowd of people who had done distinguished work: explorers, geologists, botanists, archivists. Fabre had scarcely time to note them when the Emperor entered—a very ordinary man, he said: "Un homme comme les autres," a roundish man, with long moustaches and half-closed sleepy eyes. But for all that, he had to be awake enough to talk to each of these distinguished men on their special hobby or work. With Fabre he spoke for five minutes on the "Hypermetamorphosis of the Meloïdes".

Something for you there to find out, said Penelope with a teasing laugh.

Then all the Emperor's guests went to a State lunch and talked about everything, even the broken bridge of Avignon where everybody dances. The day after, in spite of many invitations to take part in the gaiety of gay Paris, Fabre went home to Avignon, full of hope that at last, now that important people were interested in his work in madder dyes, success was going to be his. By success, you know he meant: to earn just

enough money by madder dyes to enable him to teach natural history in the university and to study beasts.

But, alas, it was just at that moment that the news of the German discovery of chemical dyes reached France. Fabre's discovery was useless and his hopes dashed. But a greater disappointment far was in store for him. Even his work at the school at Avignon was to be taken from him. In his enthusiasm for his beasts he had been giving, as you have been told, really interesting lessons that people crowded to hear as if the lecture-room was a theatre. It was very natural that girls should wish to join in the new excitement and desire to hear this eloquent professor. You will be surprised to know that at that time girls did not go to lectures. Duruy, Fabre's friend in Paris, had made a beginning with the higher education of girls. This was already twenty years after Frances Mary Buss had founded the first Girls' High School in England. Fabre, too, believed that girls should be taught, and his girls' classes grew in popularity. He taught them, as he says, "what air and water are; whence the lightning comes and the thunder; by what device our thoughts are transmitted across the seas and continents by means of a metal wire; why fire burns and why we breathe; how a seed puts forth shoots and how a flower blossoms; all eminently hateful things in the eyes of some people whose feeble eyes are dazzled by the light of day".

These are things that every girls' school teaches now, but in those days they seemed to most people terrible knowledge at enmity with God. The Powers of the town decided that higher education for girls was a definite sin. The old ladies who owned Fabre's house turned him out of it. He was too poor to move into another. Besides, the old ladies' action was part of a plot to get rid of him. He decided not to resist, but to go. But even the money to transfer his belongings from Avignon to Orange was not there.

It was at the time of the Franco-Prussian War of which you have heard, and Paris was besieged by the Prussians. Fabre's ordinary salary could not be sent to him. In his distress he appealed to Mill to lend him the money. But Mill happened to be in England taking his seat there in Parliament, that famous Parliament of 1870, which said for the first time in English history that all children were to be educated. Mill sent far more money than he had been asked for; sent it by return of post and asked no promise from Fabre that it should ever be repaid. Nevertheless, you will be pleased to hear that it was.

CHAPTER XI

Swallows

"No blazoned banner we unfold
One charge alone we give to youth
Against the sceptred myth to hold
The golden heresy of truth"

A E

IT must have been with a very heavy heart that Fabre and his wife and their five children set out by train up the line of the strong-flowing Rhone to find a new home in Orange.

The Yew Tree children, in their speedy little car, along the great highway, with the hottest of April suns and the bluest of April weather, found it hard to believe that anyone could be heavy-hearted. They had scarcely left the long walls behind and were doubting which they admired most—the three-lined highway, snow-capped Ventoux or the rugged Dentelles—when they found themselves passing through the village of Pontet.

There, said Penelope, in the farm of Roberty, a charming adventure befell Fabre while he was still living in Avignon. He used to walk out there to visit his old father, who had been given a home by the prosperous farmer, and one day he watched some potter-wasps try to make their nests in a coat and a hat which the farm hands had hung on the wall while they had dinner. Unfortunately, those young farmers were not so

devoted to little beasts as they should have been, so after dinner they took their hats and coats, shook them and dislodged whole masses of mud which these strange insects had fastened on to them in preparation for their nests. Fabre wished his coat had been hanging on the wall, for he would have left it to the winged builders to see what happened next.

As they approached Orange, the Dentelles, or the lace mountains, were looking just like coarse, giant, grey lace against the sky, because their peaks are of bare, rugged rocks that end in very sharp points. Fabre says[21] that, near the top there is a cliff so straight and smooth that it is like the wall of some Titan's rampart topped by crenellated battlements. He was collecting flowers at its foot when he saw a flight of "wall swallows", and looking at the cliff wall, he saw thousands of their nests fastened to it. It must have been from living in such places, he reflects, long, long ago, before the walls of human houses were built, that that kind of swallow learned to fasten its nest to walls.

Those swallows reminded him to tell a tale of

a domestic swallow who would insist on making her nest in his room. "I am willing," he said, "to give her up the shed, the cellar porch, the dog-kennel, the wood-house and other outhouses. But that is not enough for her ambitions. She wants my study; the curtain-rod and even the window-sill would suit her. Vainly I try to make her understand, as I destroy the foundations of her building, how dangerous a place a moving window is for the young; how disagreeable my curtains would find her mud and her infants' dirt. I don't succeed in persuading her. I keep the windows shut, but if I open them too early, back she comes with her mouthful of earth.

"Once I allowed myself to be persuaded. She had fixed her nest in the angle of the wall and ceiling over a marble-topped chest covered with books. Knowing what would happen, I moved the books. All went well till the hatching; but as soon as those baby birds arrived, things changed. The six infants became intolerable; every minute: flac! flac! guano on the chest! Constant broom! Constant smell! And then, what slavery! The room was closed at night. The father slept out, and, as soon as the babies began to grow, the mother did the same. Then, at earliest dawn, they were at the window breaking their hearts before the glass barrier. To open to the sad hearts, I had to get up in a hurry, my eyes heavy with sleep. No, I shall not let myself be tempted again."

So they came to Orange (called O-rònge), which once belonged to William of Orange (called Or-inge), and passing under a stupendous wall, that soared into the sky, they asked what it could be and heard that, within, was the wonderful stone theatre the Romans had built. Fabre had gazed at its mightiness every day for the nine years he lived at Orange. For he had chosen a lonely house in the fields just outside the town. And from his window he saw nothing but wide-stretching, flowery meadows, the beautiful, ruined theatre and the hills beyond. As well as the meadows, his house possessed another treasure —an avenue of splendid plane-trees where birds sang in spring and cicadas made music in summer For nine years, Fabre enjoyed them; but when his landlord cut them down to make a little money, he was too sad to go on living in the house and left Orange.

Orange is a good place for walks and Fabre was a great walker. When he set out he used to look like one of the peasant madder-workers going out to work; for he carried a trowel, a knapsack on his back, boxes, glass tubes, pincers and a magnifying-glass.

He loved to wander over the tableland of Sant Amans, or to climb the Dentelles, or best of all, to make his way to the top of Ventoux. That was not surprising, for it must be fun for anybody to walk from the tropics to the arctic in one day; but for someone like Fabre, who liked meeting

the flowers of Africa and the tiny plants of the North Cape, wild in his own France, the journey was full of adventure. It was sometimes dangerous, too, for when a mist came down on that mountain—and who can be sure of mists?—one's next step might be down a precipice

Fabre and his friends were once lost in a mist on Ventoux[22]. They had been botanising, picking a flower here and there or examining a root, turning north, south, east or west. When the mist came, they had no idea of where lay the south or where the north. Yet it was important! For the north of that mountain was sheer precipice, but to the south was the mountain hut which meant safety. When the misty rain began, had it come from the south, they asked one another. Yes! When it began. But it seemed then to be coming from everywhere, and indeed on mountain-tops that is the custom of mists and of winds. They have a way of changing too. If this wind had not changed, they decided that they would be wetter on one side than on the other. Outside, every man was equally wet. They had to feel their skins. To everyone's relief everyone was wetter on the left skin than on the right. So to the left they turned and walked into the rain. Their feet began slipping among stones, on a gradual slope, no precipice. Then came low shrunken trees and a darkness intense; how could they find their way to the little hut, a mere speck on the vast sides of Ventoux? Fabre felt the bushes and was stung.

What joy! Nettles! Nettles that grow only on the path to man's habitation. "Feel for stings!" "Follow the sting!" became the watchword. His friends scarcely believed him—except a famous botanist, who was among them. He too knew that nettles grow only where men have lived. Sure enough the stings brought them to the hut, a warm fire, dried clothes and food.

But perhaps you have an idea that Fabre's life was a very jolly one. You must not forget money. It is a thing difficult to live without. Fabre was in great poverty. He tried to earn a living for himself and his family by writing school books. One he called *The Earth* and another *The Sky*, but in those days text-books in science did not bring their authors comfortable royalties as they do to-day.

He published that wonderful book the first volume of the *Souvenirs Entomologiques*, but the world did not like the title and few people discovered that it was more enthralling than a novel. So neither did that bring him relief from anxiety.

At Orange, too, he had the terrible grief of losing his son Jules. Fabre was a quite delightful father who used to share his fascinating work with his children. It must have been fun to have a father who set you to watch beetles and caterpillars and was as excited as you were at your discovery of a chrysalis, or a new flower, or strange little beast.

His elder children, Antonia, Claire, Jules and

Emile, all helped him. If one of them was away, he or she would send him packages containing strange finds. When they were at home they all joined in the hunt for the specimens he needed, or helped him to dig deep, deep into the ground to find a hidden beetle's home. But it was one of the very youngest who became his most eager fellow-worker—little Paul.

Little Paul is always being mentioned in his father's book. He was full of common sense, afraid of nothing, did not hesitate to hold caterpillars in his hand, or to turn over the horridest dead moles to see how the work of the burying beetles was getting on. The whole family worked together, or played together, whichever you like to call it. And if only they had had enough money, they would all have been as happy as tinkers in their garden full of wild cyclamen and ranunculus and anemones.

CHAPTER XII

Insects in Sérignan

"Wherever Reason has dominion, there dwells a severe beauty, a beauty which is the same in all the worlds and under all the stars This universal beauty is order"—FABRE.

ORANGE's arch of golden stone was looking even more than usually like a soaring kingly gateway in fairy-land, when, in the early, dewy morning, the children waved it good-bye on their way to Sérignan, the village where Fabre spent the greater part of his life.

"I have never seen anything so beautiful," said Margaret, "as that shimmery mist of golden poplars stretching out into the distance through that golden gate. We ought to have stopped to look at the sculptures on it. Are they battles or just men?"

But no one answered her, for Penelope was threading her way through a string of high-wheeled mule-carts and Giles and Geraldine were both hanging out of the window looking for the river Aygues and the turn to the right for Sérignan.

There it was, the bridge over the broad white expanse of pebbles!

"That's it! that's it! stop, Penelope! Those are the pebbles that when the snows melt on the Alps, rush down the river-bed crashing on one another

with such a noise that Fabre heard them in his house a mile away."

"Why aren't they doing it now?" asked Giles.

Because the river is dry, just as it was when Fabre used to walk about among the pebbles studying the mason-bees. Let's get out, and, if we find a nest and the bees at work, you shall hear:

A Tale of Mason-Bees[23]

Just here, among the stones of the river Aygues, Fabre captured his two mason-bees. He wished to know whether, if you carried them a long way away from their nest, they would know how to return. He had to capture them with great care so that they would be in no wise injured; whether *he* would be or not did not matter. While they were at work, he covered them with a glass, and, as they flew up into that, he shook them out into a screw of paper and so placed them in safety in a tin. Then he carried the tin the two-and-a-half miles to his house in Orange and there marked the bees. A very difficult operation it was, for he dared not hold them firmly for fear of damaging their delicate wings. When they were marked with a white splash on their neck, he let them free. Away flew one; the other was not so eager. Next morning Fabre came back here to the river-bed to sit by the empty nest. Empty? No, there was a bee working at it, but a bee without a mark.

Had she lost her mark? Wait! Presently someone came flying, buzzing—a marked bee. Then began a battle. In the landlady's enforced absence a new tenant had taken possession and would not listen to reason. Not for long, however! Bees never, says Fabre, fight to kill and the one who has the right always wins. So the marked bee regained possession of her house. One bee had come back covered with pollen. She had not wasted time during her two-and-a-half miles of flight, but had gathered honey on her way.

On another occasion Fabre took forty bees from nests under his roof in Orange and carried them here to the bed of the Aygues. He had not enjoyed marking forty stinging bees, and perhaps when they stung him he *had* pinched some rather hard; for only twenty set out home with the gay flight he liked to see. Meanwhile, his daughter at the top of the ladder was waiting for the bees' return. When Fabre himself got back, the daughter reported two bees returned in less than three-quarters of an hour after being released; two-and-a-half miles in forty minutes and against a strong wind was not bad. A serious elderly lawyer came on a visit at that moment and when he heard what was afoot, he left his reverend papers and hat and dashed bareheaded up the ladder to watch in a torrid sun for the bees' return. Of that company, fifteen returned before a great storm came on which prevented Fabre from counting any more.

Then with beating hearts the four returned to the car. They were now quite close to Sérignan, the place of all others most nearly connected with their hero, where he had found his heart's desire in a little house and garden of his very own and where he had met all his most interesting insects.

"Creep," said Geraldine, "let us have time to look." And truly the land was worthy of a long, long gazing. To their right were airy mountains touched with snow and in front the sharp-cut Dentelles. To the left was a deep blue distance and near at hand the silvery, sparkling mist of olive leaves in the wind. The newly-turned earth was bright red and the young vine shoots springing up in it were shining gold. Then came a white bower of cherry-trees in bloom and suddenly from time to time the dark, heaven-pointing finger of a cypress or a clump of sombre holm oak to make the colour more intense

"I could scream with the beauty of it," said Margaret.

"That orchard is medlars," remarked Giles, "their large flopping light pink flowers are just like Grannie's and that big farm has orange-coloured houses, or what colour *would* you call them? Yellow ochre they are and with their red roofs against those almost black ilexes they look like a Spanish painting."

"It's a *nice* land," said Geraldine, wrinkling her nose, "you can smell the thyme and I like the ribbon of bright blue grape hyacinths that is

running all along the road, though you are not looking at them."

That old woman gathering salad in the ditch with her head tied up in a bright cotton handkerchief probably knew Fabre?

But she did not, when they stopped to ask her, for she was a stranger newly come to Sérignan.

Yet they were glad they had stopped, for her face was wrinkled like a winter apple and her eyes were grey, and overhead among the pears in bloom the birds were holding parliament in an exquisite confidential chit-chat.

There was a dog barking too that reminded them of something. Penelope had stopped her engine and ahead there was a long high wall with cypresses above it. Yes, they had found it; that was La Harmas, Fabre's own house, his hermitage for which he had built this long high wall to shut himself and his insects away from the world.

"But before we go any nearer," said Giles. "What are those huge whitish-grey things in the pine-trees? Are they all wasps' nests?"

Oh, no! exclaimed Penelope, why! those must be the Pine Processionaries! Above the wall they could see tall gaunt pine-trees, many of their branches almost needleless and decked with long thick bags of greyish cobweb.

The Tale of the Pine Processionaries[24]

"Every year the caterpillar," writes Fabre, "takes possession of my pines and spins his big

purses. To protect the foliage, which they destroy and leave the tree as if burnt by fire, I have to get rid of the nests every winter with a forked lath. Gluttons! If I left you alone, you would soon deprive me of my murmuring pines, for they would be bald. Let us examine the lower branches of a tree. Pine leaves grow two by two; where they join is a kind of silky white muff, slightly tinted with pink and covered with little, lovely, transparent, white scales fixed on the top of one another like tiles on a roof. They are fastened at the top, free at the bottom and neither blowing nor pushing can get them off. If you stroke them upwards they rise and remain open; if you stroke them down, they fall flat again. And they are soft as velvet to the touch. They form a roof to protect the eggs of a mother—the pine bombyx. No drop of rain or dew can possibly penetrate under the roof. Those scales the mother moth has made with a part of her own body to protect her eggs. Like the eider-duck she has made a warm greatcoat for her eggs with her own powdery skin.

"With the pincers I raise the scaly covering; there are the eggs like little white enamel pearls, tightly grouped in nine rows. In one row I count thirty-five eggs: the nine being parallel and practically the same; that makes a total of three hundred eggs. A nice family for one mother!

"Young and old, learned and ignorant, we should all say as we look at the bombyx's ador-

able little spike: it's beautiful! And what would strike us most would not be the enamel pearls but the way they are put together, so regularly, so geometrically. A serious thought: exquisite order and law rules the work of a mindless thing, one of the humblest of humble things. A frail moth obeys the harmonious laws of order."

Fabre goes on to tell us the strange history of the scraplet of life that springs from those pearl-like eggs. First there comes the tiny caterpillar whose head is twice as wide as his body with a large strong (comparatively speaking) mouth fit to grind the hard pine needles. One mere hour after his birth he is walking in procession and spinning himself a little silky shelter against the rays of the sun which he detests. As he grows he wanders farther and farther up the tree making himself larger tents. The tents are spun around the needles, so that master grub is able to sit at home and eat his roof-top. When, in consequence, he having eaten the needles the tent was fastened to, his whole tent blows away in the wind, he goes higher up the tree and makes another.

But when winter is approaching, the caterpillars all together make those great hanging winter nests that have so alarmed Giles. Fabre comments on the wonder of their instinct: that they, who have had no experience of cold, and whose dead mother has taught them nothing, should all the autumn weave a huge, warm nest for a winter home, just as if they knew how cold

it would be! He tells how he found that the caterpillars turned out to be barometers. By watching their movements, he knew what weather was coming; and the weather forecast in the newspaper agreed with theirs.

Every day in fine winter weather they came out of the nest, and, following a leader would descend the tree in procession, the nose of the second close up to the tail of the first and so on, for the whole nest full, which sometimes numbered three hundred. Each, who walked, left a silk thread as he passed, and the whole procession made a broad and silken high road, which would take them home on the darkest night.

One day, seeking for experiments to put their intelligence or lack of it to a test, it entered Fabre's head to wonder what they would do if their silk thread could be made to go round in a circle. Luck favoured him, for the procession one day began to climb up the side of a large garden vase. As they reached the top and began to wander around the edge, Fabre brushed away that part of the procession which was still below and sent a scrubbing-brush around the vase to get rid of any silk roads that might have been left on its surface. Round and round the caterpillars walked. Eating time came and passed. Sleeping time came and they slept on the edge. Procession time returned and they returned to their circular walk. Day followed day and still they walked . . . round and round seven times in

twenty-four hours; they might be hungry; they might be tired; they might be cold or sun-scorched; but so long as their silken pathway grew broader, they knew their way; so long as they had a leader in front, they thought that all was well.

When they were tired out a road accident saved them. Exhausted, they fell over the vase precipice and found their way home. In spring they made their last procession and, finding suitable soil, dug their own graves and buried themselves, but not of course to die, only to change their form underground and become each a cocoon.

Fabre wanted to know how a delicate large-winged moth could possibly dig itself out of the ground when the time came for the cocoon to change into a moth, so he buried some in glass tubes full of hard sand. Presently he saw the nymph, no moth, but a slim, smooth mummy, her wings folded close beside her, her antennæ flattened backwards, her head armed with a hard strong digging tool, dig herself out of the sand with her forehead alone. Only after she came to the surface did she take the form of a moth and open her plumed antennæ and her spreading wings.

That was the lady who laid the eggs and Fabre, interestedly examining her, to find where she got the little scales with which she made the egg-house, found that when he rubbed her tail a dust

flew up, a dust of little scales. Unsuspicious, he continued his watching until his eyelids began to swell and his fingers to burn. His family thought him ill when he went down to dinner, but he had guessed that the burning, which was like nettle stings, was connected with the moth. Later he found that the inside of the nests and the caterpillars both gave off invisible and poisonous prickles which would suggest that it was as well to be careful in handling the bombyx of the pines.

CHAPTER XIII

Fabre's Garden

"Speak not,—whisper not,
  Here groweth thyme and bergamot,
Softly on the evening hour
  Secret herbs their spices shower,
Dark-spiked rosemary and myrrh,
  Lean-stalked purple lavender"

WALTER DE LA MARE

As the high, narrow green door in the wall opened at their ring, Geraldine stood rooted to the spot. Sometimes people are disappointed, but one much-famed thing could never disappoint anybody and that was Fabre's garden on a hot April day.

The little girl had no eyes for the guide-girl who had opened the door and was talking pleasantly to Penelope, nor even for the long-bodied, short-legged, white dog who was making friends with Giles.

She had never heard of such a garden, she had never dreamed such a garden could be. "It's full, full, full of the sound of bees! And it's all, all, all mauve and pink and purple with flowers," she murmured, standing with her hands clasped, a slip of blue under bowers of heavy scented lilac which left her only a narrow lane to see the two great shading plane-trees and the pond and the masses of rosemary in bloom and the irises thick in what might have been the path.

Bewitched she wandered on, forgetting the others who followed her with their youthful guide; starting every now and then as a bee buzzed into her face, pausing to sniff the scented air; gently, with reverent fingers, pulling aside the long sprays of flowering bramble, or rosemary or lavender or marjoram that in wild profusion often blocked her way; treading carefully to avoid the wild yellow and purple irises and the tufts of pink thyme that everywhere had taken possession of her path. It was a big garden, a wild garden, a place to lose oneself and a place to hide oneself. It was all avenues of tall flowers, far taller than Geraldine, and the flowers were of the kind that are covered with blossom from the ground to the sky. And behind the avenues there were thickets of flowers, impenetrable thickets, a chaos of flowers, out of which here and there grew tall fruit trees in bloom and at the end of the garden one cherry-tree, whose only business was to hang heavy with masses and masses of flowers. Neither Geraldine, nor the bees, had ever seen such a sight and they were both making the best of their joy.

From the end of the garden you could not even see the house, nor catch a glimpse of it down any of the avenues. The guide-girl came up and as if she had answered a thought, said: "The flowers are all wild things that have come with the wind or been brought by Fabre from the slopes of Ventoux: here is purple savory that

makes bigger clocks than any dandelion; here, savage thistles loved by the liners of cradles because of their down; broom with its big yellow flowers, cystus tall and low and many coloured, juniper bushes, strawberry trees, violets still smelling sweet but almost over, and lavender. But there is more rosemary than anything else as you see. Here are thyme and sage and strange southern cactus and trails of blue periwinkle, dwarf oak and pink centaury and yellow gorse.

"Fabre had all his life desired a laboratory out of doors where undisturbed he could watch insects. This place at last he was able to buy. It was just a *harmas*,[25] a bit of stony land too poor to be ploughed, where stones shared the territory with rock cystus and thyme, but where someone had dug and tried to grow useful plants and then abandoned the attempt, so that thistles and nettles and couch-grass, which always follow men's neglected work, had taken possession.

"Fabre built the wall, cleared the ground, and planted it with all kinds of lovely rare flowers sent to him by his friends in the botanical gardens, but alas, most of them could not bear this grilling sun and the fierce mistral wind which often blows here. So he took the delicate ones into the glass-house and the strong native ones are those you see filling the garden. You will have much ado to find all the different kinds, but all the insects from far and near, common insects and rare insects, discovered their own particular food and made

their home here just as if they came on purpose for Fabre to watch.

"In many other laboratories people study parts of dead little beasts, in this garden laboratory, Fabre studied living beasts, watched them at their hunting, at their building, at their loving, at their feeding and at the education of their children. Sometimes, of course, he had to watch them at their dying, but he had severe critics when he did"

The Story of the Tarantula[26]

One day he was trying to discover whether the black-bellied tarantula, an immense spider, which kills the powerful carpenter-bee instantaneously with a single sting in the neck, was dangerous to creatures of another kind.

"I make it," he writes, "bite the leg of a young sparrow which has got his feathers and is all ready to fly. A drop of blood flows, the bitten spot turns red, then violet. The bird loses the use of his leg almost immediately and drags it with his claws crumpled up; he limps on the other. But he doesn't seem much troubled about it and he has a good appetite. My daughters feed him on flies, crumbs and apricots. He is going to get better, grow strong again; the poor victim of scientific curiosity shall have his freedom again. We hope so, all of us Twelve hours after, our hope for a complete cure increases. The invalid accepts his

food eagerly—calls for it if we are late—I think his paralysis is only temporary and will soon pass off. The next day he refuses food, wraps himself up in his stoicism and his ruffled feathers, turns himself into a ball which twitches sometimes and sometimes is quite still. My daughters keep him warm by holding him in their hands and breathing on him. His convulsions become more frequent. A yawn is the sign that all is over. The bird is dead.

"At supper there was a certain coldness. I read in my family's eyes mute reproach about my experiment; I felt a vague accusation of cruelty. The end of the unhappy sparrow had made the whole family sad. And I too was remorseful; the price was too great for so slight a result."

But . . . It is just as well to know, said Penelope, without trying it on a human being, if the bite of a tarantula is really dangerous to man, so Fabre tried again with a large toad. That too died. It is just as well, even for large animals, to keep out of the way of tarantulas.

"Does the tarantula have to keep out of the way of anything?" asked Giles.

Oh, yes! Of men and other things, but especially of the little digging-wasps, the pompilus. Once, but only once in all his life in this very garden, Fabre saw the pompilus capture a tarantula. He says it was the most striking of sights to see "the intrepid poacher dragging by one hand the monstrous captive she had just

taken."[27] She—all the insects we talk about except one are shes—found her den and left the tarantula outside while she went in to see that all
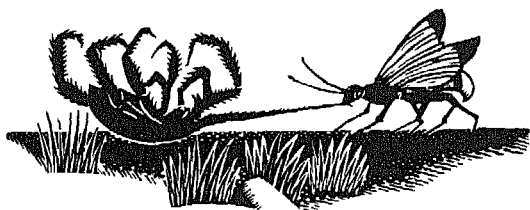
was well; then she dragged him in; came out, dragged bits of mortar to close the entrance of the hole and flew away. She had been laying her egg and filling her baby grub's larder. Fabre longed to see her actually fighting and capturing the tarantula. He never did, but he did see her fighting another large spider.

"The spider-hunter," he writes, "explores a wall, runs, jumps, flies, comes and goes, passes, repasses. A spider appears at the entrance to a hole and watches the watcher.

"The pompilus draws back, flies away. The spider goes back into his den The pompilus comes back, so does the spider—even comes out of his den and looks his enemy in the face, who flies away."

Fabre grew excited and longed to solve the problem of how the little pompilus could get the better of the fierce spider. He remained whole weeks contemplating the old dull wall.

He saw the pompilus quite often seize a

spider's claw and try to drag him from his hole, but the spider was always holding on to his walls with his two hind legs. Over and over again the wasp flies about, makes a sudden bound, seizes a hand, lets go—sometimes she does get the spider some way out but he gets back to his fortress. But patience conquers. Once she gets the spider up from the ground, lets him fall; he rolls into a ball in his distress and she has her opportunity. She stings him just in the one place where his nerves are gathered together so that a sting there paralyses him. The wasp knows that in his den the spider is full of fight, but a coward outside, so outside she must get him and does When he is captured, what do you think she does with him? Puts him back in his own hole and lays her egg on him. In his own silk-lined home her grub will have him to eat. He is not dead, remember, only paralysed and the grub will enjoy at the same time the warmth and softness of his house and the good flesh of the former master.

The tarantula, whatever her other faults, is a most charming mother. Fabre says he was most friendly to spiders, admitted them into the intimacy of his study, made a place for them among his books, offered them the sunshine of his window-sill and called on them enthusiastically in their country houses to ask them crowds of questions.

"What kind of questions?" asked Giles, sceptically, "and how could they answer?"

Oh! such questions as: What do you have for dinner? How do you hunt? What sort of a house is yours? Do you get on with your husband? Do you love your children as much as other people's children? and a thousand others. She answered them all with a famous word: "Come and *see!*"

The tarantula has many houses in this stony, thyme-overgrown garden, it is just the kind of place she likes. Her dwelling is a fortress and no villa, a deep hole first of all that makes a sudden turn underground, perhaps many twists and turns. At the end of the twisting passages is a room where the owner rests; the walls are covered with thin silk to prevent the dust falling in and to serve as rope supports for her feet when she is at the top of her watch-tower surveying the world. At her entrance door there is a circular parapet of small stones, fragments of wood, tiers of leaves bound together with silk. Fabre saw her big house near the window where he watched her for three years. She was a real stay-at-home who built her parapets with any materials close at hand. So Fabre asked her what kind of parapet she would make if she were rich To his special spider he gave smooth pebbles, small and big, raffia, bits of many-coloured wool, made her rich, in fact She answered without hesitation by building such a donjon as spider had never seen before. Visitors thought the variegated edifice of woven wool, raffia and stones two

inches high was a bit of Fabre's fancy-work.

The tarantula shuts her open door with a veil made of the rubbish about her doorstep, often the heads of the beasts she has eaten, woven in with silk. When the door is open she sits for hours head outside, her eyes in a fixed stare, her arms ready for a grab, and woe to anything eatable that passes by. When she is young, she lives houseless, travels to find her food, leaps into the air to seize it. But when she is grown up, she excavates her mansion. With what? Have you ever thought? Fabre asked her and watched her doing it with her unbelievable teeth.

But a strange thing he found out not only about the tarantula but about all insects. At a given moment in their lives they begin to do something, say to dig. That is their moment for doing that particular thing. They can't do it at any other moment. If he captured a spider who had dug down a quarter of an inch and put it on to the ground where a little pit a quarter of an inch deep had been already dug by himself the spider went on digging. If, however, he put her on ground with no pit, she did not know what to do, she just died. She could not begin and do again the part she had already done. No insect can make up its mind what it ought to do. Many were the experiments he tried. A bee who had reached the moment for filling a cell, if Fabre gave it a full cell, would pour its honey over the edge and go on closing the already closed cell.

But to return to the mother spider. She weaves a silken carpet on which to lay her eggs, lays them and then turns the edge over and makes a ball of the whole, a silken ball full of eggs.

That loved bag she carries about with her wherever she goes, resting, hunting, leaping. If an accident breaks its cords, she throws herself madly on her treasure, and embraces it adoringly, fiercely, ready to bite anyone who tries to take it from her. For three weeks daily she holds it for hours in her hind legs up to the sun to warm it, turning it and turning it, so that each side in turn receives the heat. If Fabre took it from her with pincers she would fight furiously; but if he gave her some other spider's ball of eggs she was quite happy; and just as happy too, if what he gave was a mere ball of wool, poor stupid spider!

Then comes the moment when the ball opens and the thousand babies break out and climb at once on their mother's back. Two or three layers thick, they cover her whole spine and she carries them about like that for a whole seven months. She looks very motherly, very admirable. They are very well-behaved, the little fellows; nobody moves, nobody tries to tease his neighbour. They stick close and form a kind of frock for mother. But they often fall off. That is not their mother's business! If they clamber back, well for them; but she doesn't care. If Fabre sweeps them all off and gives her someone else's family, she is quite content. If he, or accident, prevents any of them

returning to her care, she is equally content. She seems not to love her children. One day Fabre saw one mother, after a terrible fight, eat another mother and afterwards adopt all the orphan children as well as her own. "Henceforward," said he, "the two families so tragically united will make only one."

"How in the world does she feed them all?" gasped Geraldine.

They live on sun, pure sun! They never eat until they are big enough to do their own hunting, or so, says Fabre.

While they had been listening to the story of the tarantula, the four found themselves standing by a gorse bush in full flower. In the shade of the gorse, said Penelope, the fiercest of Fabre's insects lived. See what you think of the

Story of the Praying Mantis.[28]
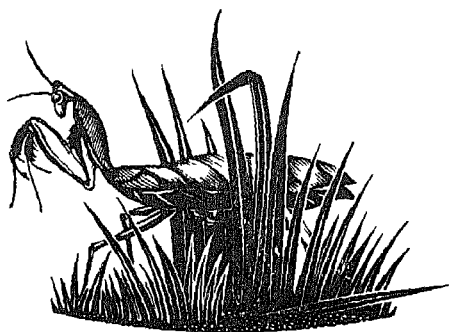
Here they call her *Lou Prego-Dieu* (the beast

who prays to God). The Greeks too called her *The Prophet.*

"Peasants," says Fabre, "are not particular about resemblances. They saw a stately-looking insect standing majestically on the sun-grilled grasses. They noticed her large delicate green wings hanging about her like a linen veil and her front feet, her hands so to speak, raised to heaven as if she prayed. That was enough for them, the thickets were peopled with prophetesses and nuns in prayer!

"Oh, dear innocent people, what a mistake you made! These holy airs and graces hide the most atrocious manners, these prayerful arms are horrible brigand's claws. The praying mantis is the tiger of the peaceful race of insects, an ogre in ambush. Alone among insects she can cast a glance, she inspects, examines, she has almost a face. Her weapons are her legs, for her thigh is a terrible saw with two parallel blades separated by a kind of gutter into which her lower leg, which also has a saw, folds when it is bent. And her foot is a sharp hook. Each leg has a sharp hook and two double saws. . . . How many times in my chase, clawed by the beast that I had just captured, and not having both hands free, I have had to seek aid to escape from my captive! None of our insects is more uncomfortable to manage. It clutches you with its bill-hook, stabs you with its sting, holds you with its vices and makes it almost impossible to defend yourself

if you want it alive, and can't kill it with your thumb.

"When the mantis is resting, that trapping machine looks innocent enough folded against its chest. Praying she is. But if something eatable passes, that praying attitude is gone in a flash. The three long pieces of the machine suddenly lengthen out and drag the captive back between the merciless saws. No cricket, grasshopper or even more powerful insect has any chance, once caught within the working of those four lines of sharp points."

To study the creature, Fabre kept several in captivity. He built them chalets with a metal meat cover, a flat stone and a tuft of thyme. Their needs in that way were small, but not so their greed. To satisfy that Fabre called in the help of the village boys—paid with some bread and jam and a slice of melon—to hunt living crickets and grasshoppers, while he himself, net in hand, made a tour of the garden to get his *boarders* more magnificent game. He did not want it exactly for their eating but to test the boldness of the mantis, for his captives were to be bigger than the mantis itself and to include two of the biggest and fiercest kinds of spiders.

"The bold huntress hesitates at nothing. At the sight of the largest of the crickets the mantis starts, turns, and throws herself into a terrifying posture." Fabre says that, accustomed to it as he was, he could never see her sudden change without feel-

ing the surprise which a Jack-in-the-box causes.

"Her front wings opened, thrown back and to the sides; her larger wings spread to their full width, making a vast crest above her back; the end of her body twisted crossways and moved up and down with sharp shocks, making a kind of wind and a noise of puf! puf! Standing firmly on her four back legs, she shot out the armed front ones, showing her rows of pearls and her black circle with its white centre on her under-arm, her jewels of war kept secret in peace time. Motionless she watched the cricket, her eyes fixed, her back moving slightly as it moved. She was trying to make it weak with fear

"Does she succeed? No sign of feeling shows on the other's impassive mask. But it is certain that the threatened one knows the danger. He sees a spectre before him with its hook ready to fall; he knows he is facing death and yet he does not fly while there is time. He, who can jump so well far out of reach of those claws; he, the leaper with the long legs, stupidly remains standing or even goes a little nearer. . . .

"But, though what we have heard of the mantis is not prayerful, worse remains: not even the conduct of spiders is as ill-famed as hers."

In fact, children, she behaves so badly, you will have to read about it yourselves.

"Oh, no! Penél," said Giles protestingly, "it's just when they are bad, that they are interesting, what does she do?"

She is a cannibal who eats other mantis mothers, a thing not even done among wild animals.

"Oh, the fierce beasts!" Fabre exclaims. "They say dog does not eat dog. The mantis has no scruples; she feasts on her fellows even when her favourite food, the cricket is plentiful around her."

But there's worse still: Let's go to a mantis wedding! It is not easy to meet a mantis gentleman. There are few of them and you will soon know why. Still, there he is "an affectionate wisp" as Fabre calls him. "He makes eyes at his large and powerful lady; he turns his head towards her, bends his neck, puffs out his chest. His little pointed phiz is almost an impassioned face. He contemplates the desired one for a long time in the same position. She keeps quite still, indifferent. The lover, however, has seen some sign of consent invisible to others. He approaches; spreads his quivering wings. That's his way of proposing. They embrace. But by next morning at latest she has seized him, has bitten his neck according to ancient custom and thereafter methodically, in little mouthfuls, has eaten him, leaving nothing but his wings." And like Henry VIII, she marries again, and eats her next husband or her sixth with equal appetite.

But now we must go into the house, for were we to stay in the garden until we had heard all the tales that happened here, we could never get home.

Chapter XIV

Friends to Dinner[29]

Fabre's house was pink with green shutters. Close to it was the round pond with a fountain in the centre, where the frogs used to congregate and keep him awake with their chorus till, his patience at an end, he ordered the lessening of their numbers. *That* pond was easy to find, it filled the space under the plane tree with coolness. Not far from it was the tank where the household washing was done and the path where Fabre used to erect the stand on which he placed decaying snakes and dead moles to find out how long the little burying-beetles would take to clear away entirely such big bodies.

As their guide-girl opened one of the two doors that led from the garden into the house, a hush of expectation fell on the four. This was the hermit's very cell. The first room they saw was the dining room, a simple old-fashioned large room, its walls covered with photographs, its floor, bare boards. This was the scene of those silent meals of which they had heard. Fabre, his eternal old felt hat always on his head, would

take his seat lost in thought; then the others would have to whisper so as not to disturb him; only a lost wasp or a buzzing fly dared to make a noise. Whatever was on the table, Fabre himself would eat only a fig or a few dates and fruit. He turned from foods which caused suffering to animals, especially that favourite luxury of the rich: *pâté de foie gras.* "Is it not buying too dear," he asked, "a mere mouthful of fat?" He knew that to produce it, geese were, in his time, tied down to grow fat without the chance of moving.

But sometimes he loved to please his friends with an odd menu of his own choosing: some specially-prepared toadstools from which he had taken the poison by boiling them in salt water; green and black olives; legs of mutton stuffed with garlic; white-fleshed or orange-fleshed melons or those little mountain cheeses that melt in the mouth.

Many famous people sat at that table with him, but he loved those best who needed his help in the solution of some difficulty, and he disliked most those who came from empty curiosity or to see a famous man. Those he sent away without ceremony and often rudely enough. His most frequent visitors were the village schoolmaster and the blind carpenter. They had permission to see him at all times and even to enter his study in his morning work hours. To them he read his books before they were printed. The blind

carpenter, Marius Guignes, often accompanied him on his walks and helped him by holding his parasol over him while he watched an insect at work during long hours.

Another friend of his was Favier the gardener, who had been an old soldier and travelled much and who knew most things because he had eaten them. One day a lady brought a new bulb for Fabre to grow. "There is its root," she said, "and there its young sprout."

"That is a sea urchin, Madame," said Favier, "I have often eaten them."

Sometimes, too, in this dining room, Fabre gathered little parties around him, friends, nephews and nieces and his own children. The talk ran round in the winter evenings while Mistral howled outside, gay talk about ideas, about history, amusing stories, memories of little beasts and of his own life—talk broken in on by the children's recitations and his own poetry.

Here is his own account of a meal he prepared:

"It's Shrove Tuesday, when they used to make carnival. I am planning a mad dish that Rome's mighty feasters would have loved. I must have tasters—specialists—each severally gifted to discern the merits of an unknown dish, of which no one, outside the ranks of very learned scholars, has ever heard.[24]

"We are to be eight—my family and my two friends, probably the only two people in the village in whose presence I dare to be mad. One

is the schoolmaster. The other is Marius Guignes, a blind man, a carpenter who uses the saw and plane in darkest night with the same exactness as a seeing man in daylight. He lost his sight in youth after having known the joys of light and the marvels of colour. As compensation for eternal darkness, he has acquired a gentle smiling philosophy, a keen desire to fill up the gaps in his elementary education and a sensitiveness of hearing which makes him quick to seize the subtlest of musical sounds."

There is a story that illustrates the blind man's smiling philosophy: when a friend was sympathising with him about his blindness he said: "If I had my sight, I shouldn't have my nice little pension from the *Quinze Vingt* for blind old men."

"He has too," said Fabre, "an astounding fineness of touch in hands hardened by work. In our conversations, if he needs information about a difficult construction, he holds out his palm and with my finger I trace on it the figure or plan to be made. Only the slightest explanation is necessary and his saw, his plane or his lathe will give reality to my idea.

"On Sunday afternoons we meet, especially in winter, when the logs burning on the hearth contrast deliciously with the sound of the savage mistral. We talk about everything (except hateful politics): philosophy, morals, literature, tongues, history, coins, archæology. At one such

meeting we plotted to-day's dinner. The unusual dish is to be *cossus*—much appreciated in ancient days; weevil is the translation.

"When he had eaten up nations enough, the Roman, brutalised by excess of luxury, began to eat worms. What exactly were these worms? They were big, not disagreeable, and above all, fat.

One beautiful winter afternoon, all my family —Paul with a cutting instrument—set out to dig into two old tree stumps. The wood, which is hard and dry on the outside, changes into a kind of slab of starch inside. In the heart of this damp, tepid rottenness there is a mass of worms, each as big as a man's thumb. I have never seen fatter. Examine one; it pleases the eye by its ivory white and the touch by its satiny smoothness. And if you are not prejudiced about eating worms, it is rather tempting, this bag of fresh butter. At sight of him, I knew him! That's the *cossus*, the real *cossus!* Why not try the famous dish?

"We gather a lot . . . to study . . . and to solve a kitchen problem. We must know the insect the thing is going to turn into; we must find out how good a weevil tastes. It's Shrove Tuesday, the right day for a mad dinner.

"I don't know with what sauce the Cæsars ate their *cossus*. Ortalons are roasted in front of the fire; they are too exquisite to be mixed with sauce. Let's treat the worms in the same way, they are the insect ortalon. Spit them and grill them

on a well-heated grill. A pinch of salt—that every dish must have—is the only seasoning. The roast grows gold, sizzles gently, weeps a few oily tears, that catch fire and burn with a white flame. It's done! Let us serve them hot!

"Encouraged by my example, the family bravely attack their little roast. The schoolmaster, dupe of an imagination that can't help seeing the big worms of the afternoon crawling about his plate, hesitates. We keep the smallest pieces for him because they are not so full of memories. My blind friend, who is freer from imaginary horrors, eats his with every sign of satisfaction

"The vote is unanimous: the roast is juicy, subtle and most tasty, with a certain savour of toasted almonds and a vague aroma of vanilla. Worms, a most acceptable dish; one might even use the word *excellent!*"

Chapter XV

A Moth and a Butterfly

"I have lain in the sun,
I have toiled as I might,
I have thought as I would,
And now it is night"

Robert Bridges

"Now," said the guide-girl, "we will go to Fabre's study." To do that, they had to go out through the front door into the garden again, turn to the right and enter the house by another door.

They found before them a winding stair leading to a large room. It was Fabre's study, just as he had left it—the laboratory in which he had watched so many little beasts tell him the secrets of their strange lives. There to their left were the two windows opening on to the garden, one of which was always left open so that the insects could come and go at will.

There, all round two sides of the room, were cases reaching to the ceiling, containing collections of shells, fossils, beetles. These were topped with a frieze of tall, neatly-tied brown paper books in unending line.

"What are those?" asked Geraldine, awed at their great number.

"Those," said the guide-girl, "are his collections of wild flowers. He began them when quite

a boy, and they contain all the flowers of the north and of the south, of the plains and of the mountains and all the seaweeds and the water-weeds."

The little girl stood silently counting the volumes of a book that went round four sides of a room and thinking of the strange plants inside, of their colours and of the long, long hours it must have taken to press so very many.

"Fabre was a *very* tidy man," she said.

"Perhaps you would not have thought so," laughed the guide-girl, "if you had seen his room when he was working here. For then, that table was covered with flasks, glass tubes, old sardine-boxes, which contained the things he was watching: germs developing or cocoons being made or eggs being hatched. There also were cases made of meat covers or old flower-pots, and glass jars containing dead and decaying beasts and ghastly smells. Smells that shocked his visitors, he seemed not to notice! So carried away he was with the

joy of watching even the wonder of a bluebottle making a dead snake rot, that his face was full of jubilation as he leant over the horrid mess."

The children saw the famous little table that Fabre had possessed nearly all his life and in whose honour he had written a charming chapter of his memories. On it were his pen, his ink-pot and one of his beautiful, finely-written manuscripts.

"What lovely neat tiny writing!" said Geraldine.

There, on the big centre table, were his only working instruments, his narrow trowel, his pen-knife, his magnifying-glass, his forceps. There were bottles still containing his preserved specimens and two immense and lovely moths clinging to a stick as if alive On the mantelpiece was the black clock that he always stopped, because it made a noise and he liked silence when he worked. The guide-girl told them how he insisted on having silence in the mornings. He would get up at dawn and stride up and down the kitchen eating his breakfast as he walked, for movement was strangely necessary to him. When he wanted to begin work he would first pace up and down his study to rouse all the fullness of life and energy within him. Then he would sit and write. You can see how the varnish has been worn from the floor in a circle round the table: that worn pathway will always keep the memory of this uncommon way of sharpening one's wits.

After his very early breakfast he would go out in the dewy morning, examine his shrubs and his beasts and go to his study. There he would bury himself in utter silence; and woe to anyone who disturbed him! He was sometimes observing, sometimes writing, sometimes putting his observations together. At twelve he would leave his study, "his face pale and drawn" with work to enjoy a free half-day. Not what we would call a holiday, however. He always had odd bits of pencils and paper on which he took notes of anything he saw and he was always seeing.

From two to four he taught his new family, for he had married a second time. For them, he took out once again all his chemical apparatus. He would tell the little ones charming fables and sometimes lose his temper with them and shake the blackboard at them, but generally he delighted them by sharing his work of watching beasts with them.

There is an amusing photograph of Mr. and Mrs. Fabre and the children all almost standing on their heads in the garden trying to reach the bottom of some beetle's sunken dwelling. They had to dig on that occasion a hole five feet deep and narrow too—not an easy task and all to find the minotaur beetle who makes a hole as deep as that for her grub.

"What was the most interesting thing that happened to Fabre in this study?" asked Margaret.

"That would be hard to say," replied the

guide-girl. "It might be the discovery of the minotaur's astounding secret; or the cricket's change of form, which Fabre called the 'best sight in the world'; or the osmia bee, herself making her babies into boys or girls according to which she happened to want at the moment; or the day of *le grand Paon*—the great peacock moth, of which we are reminded by those two on the table."

"Let's hear that one first," said Geraldine.

The Story of the Peacock Moth[30]

"It was a memorable evening. I shall call it the evening of 'The Great Peacock'. Who does not know this superb moth, the biggest in Europe, dressed in red-gold velvet and a white fur neck-cloth? Her wings, dusted with brown and grey, crossed by a pale zigzag and edged with smoked white, have a round eye in the middle, an eye with a black pupil and a many-coloured iris, in which are a succession of arcs of black, white, chestnut and amarinthine red.

"Now on the 6th of May in the morning, I see a female leave her cocoon on the table of my insect laboratory. I cloister her at once, damp with the moistures of her birth, under a wire-net bell. For my part, I have no particular intention concerning her. I imprison her because an observer does it mechanically, being always on the alert for what may happen.

"And what a good thing I did! About nine in the evening, the family just going to bed, there is a commotion in the next room. Half undressed, little Paul is running up and down, jumping, stamping, knocking over the chairs like a mad fellow. I hear him call me—'Come quickly, come and see these butterflies, they're as big as birds!'

"I run in. There's enough to justify the child's enthusiasm and his exaggeration. It's an invasion which has never had its like even in our house, an invasion of giant moths. Four have already been caught and housed in a sparrow's cage. Others, in great number, are flying about the ceiling.

"At that sight, I remember the prisoner of the morning.

"Get back into your clothes, boy, leave your cage and come with me. We are going to see something interesting.

"We go downstairs to get to my study which is in the right wing of the house. In the kitchen, I meet the servant aghast also at what is happening. With her apron she is chasing big moths which she has begun by mistaking for bats.

"The peacock, it appears, has taken possession of my house in every direction. What will it be like upstairs in the prisoner's room seeing she is the cause of the flood! Happily one of the two study windows has remained open. The way is free.

"Carrying a candle we enter. What we see is unforgettable. With a soft flick-flack the great moths are flying round the bell-shaped cage.
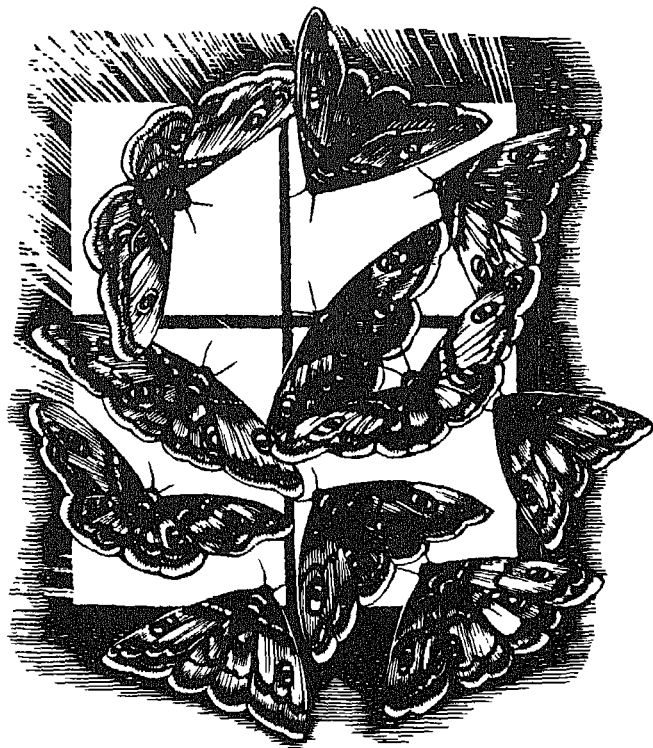
They stand, fly away, come back, flutter to the ceiling, come down again They throw themselves at the candle and put it out with a single

touch of their wings; they settle on our shoulders, stick to our clothes, brush our faces. It's the wizard's cave and his attendant vampires Little Paul holds my hand tighter than usual to give himself confidence.

"How many are there? Twenty about. Add to them those that have lost their way in the kitchen, the nursery and other rooms, and the total nears forty. It was a memorable evening indeed, the great peacock's evening!

"Come from every direction, having received the news I don't know how, forty eager lovers were there to present their homage to their lady born that very morning in the secrecy of my study.

"For to-day, don't let us trouble the swarm of lovers any more. The candle disturbs them, for they throw themselves into it wildly and scorch their wings. To-morrow we will resume our study with a few carefully-prepared and thought-out questions."

The great question that Fabre would have liked answered was: by what means had these knights-errant discovered that their fair lady was awaiting them. They came each night at dark between eight and ten. The weather was stormy, the sky overcast and the darkness such that in the garden, away from trees, you could not see your hand before your face.

"Added to the darkness," says Fabre, "there are other difficulties. The house is hidden under

lofty planes; it is approached by an alley with a thick hedge of lilacs and roses; it is protected against the mistral by groups of pine-trees and a curtain of cypress. Yet, through this thicket of branches, in complete darkness, the great peacock threads his way to the lady he seeks."

It was not sight that helped them. Could it be eyes of some mysterious kind? If it had been, the moths would have flown straight, but that they did not do. They fluttered into all the rooms of the house. Could it be smell? No human nose, not even the children's, could detect any smell in the moth. But, to make sure, Fabre filled the room with the strongest scent he could think of which would overcome any other smell, but still the moths came. The fact that they came at night made them difficult to study. If they could see, he could not. The fact that they lived so short a time, only time enough to find their lady and to die, made his experiments very difficult. A great peacock never eats—has, in fact, no eating apparatus. It lives to marry and have children, and for nothing else at all.

So Fabre determined to try to find a similar butterfly, who flew by day, to see if she would answer his question.

He had read in books of the banded minim. He had heard that she might be born in the tumult of a great city and yet the event would become known to her knights far away in the woods.

He had, however, never seen a banded minim, when, one day, a visitor came to the Harmas.

This is how Fabre describes the event: "A bright face, not washed every day, bare feet, torn trousers kept together by a thread, a small boy of seven, purveyor of turnips and tomatoes, arrives one morning with his basket of vegetables. After having received, counted one by one into the hollow of his hand, the few halfpennies his mother expected for the garden produce, he takes out of his pocket an object he has found the evening before in the hedge while he was getting grass for his rabbits. 'And that,' says he, holding the thing out, 'and that, will you have it?' 'Certainly I will. Try to find others, as many as you can, and next Sunday you shall have a ride on the hobby-horse. In the meanwhile here are two halfpence for you. Don't get them mixed with the turnip pence' . . .

"What sort of treasure is my penny purchase? Will the famous minim come out of it?"

It is rare, this minim,[31] very rare. Fabre had lived as Sérignan twenty years and never seen it—his little helper never found a second. For three whole years, he himself, his children, friends and neighbours, sought diligently and never found cocoon, caterpillar or butterfly.

"The banded minim is very rare around my village," he said.

"As I suspected, my unique cocoon was that of the celebrated butterfly. On the 20th of August

a lady issues from it. I establish her in a wire bell in the centre of my study, on my big laboratory table with its books, jars, dishes, boxes, retorts and other apparatus. . . . The rest of the day and the next day pass without anything happening worthy of mention. Hanging to the trellis on the sunny side, the prisoner is quite still, motionless. No quivering of the wings, no trembling of the antennæ—just like the great peacock. On the third day, the bride is ready, the fête begins. I was in the garden, already despairing of success, because of the long wait, when at three o'clock in the afternoon, in the heat, under a radiant sun I saw a crowd of butterflies circling round one another in the open window. The lovers come to visit the Fair! . . .

"Let's go up. This time, in daylight, not losing a single detail, I see once more the astounding vision that the great peacock had given me. In the study there is a cloud of knights that I should reckon at some sixty, as far as one can judge in such a moving confusion."

But that first minim answered no questions. Fabre in absence of mind caged a tiny praying mantis with the huge butterfly and the fay ate the giantess.

He had to seek three years to find another. I wonder if that other answered? Chance taught him one thing. She, too, three days after her birth was surrounded by a crowd of suitors and Fabre tried experiment upon experiment to find out

what strange sense showed them where to find her. If he put her in an *absolutely* closed box, no suitors came. But wherever else he put her, upstairs, downstairs, in drawers, in inner rooms, they came, so long as her hiding-place had the slightest connection with the outer air.

"One afternoon," he writes, "trying to learn if sight plays any part in the butterflies' seeking, I lodge the lady in a glass bell and give her as support a thin oak spray of dried leaves, and place the thing on a table in front of the open window. As they come in, the travellers can't fail to see the prisoner on their path. The dish with its layer of sand on which the lady has passed the night and morning under a wire net is in my way. I put it, without thinking, on the floor in a half-dark corner. It's about ten paces from the window.

"What happens upsets my ideas. Among the travellers, not one stops at the glass bell in which the lady is quite visible in the full daylight. Indifferently they pass her by, without a glance, without an enquiry. All of them fly over there, to the other end of the room into the obscure corner where I have put the dish and wire net . . . all afternoon till sunset they make love to the empty cage."

And the real lady sat by the window alone!

Fabre played her lovers tricks. He placed her on cotton-wool and when she had stood on it long enough, he put the cotton-wool by itself at

the bottom of a narrow-necked jar. And there they made love to the cotton-wool at the risk of their lives in a trap from which they could not escape. The slip of dried oak leaves he left upon a chair and upon it the butterflies congregated, pushing it to the floor and along the floor in their efforts to find the lady, who, all the while, sat alone in her glass dome as visible as glass could make her.

Then, because Geraldine could not stay there always, a hand on Fabre's little table, listening to strange stories of what an old man knew of the life stories of little beasts, the guide-girl opened the door and they went downstairs, knowing that they had reached an end—not *the* end.

Their journey to the home of the Insect Man was done. They heard the guide-girl saying that he lived to be very old and died a very simple peasant man, just as he had lived, on October the 11th, 1915, at the age of ninety-two.

But Geraldine slipped a hand into Penelope's and looking up at her under the lilacs asked: "How many more of Fabre's stories have you to tell me before I have finished them all?"

And Penelope, who knew what kind of question to expect, said: according to my counting, two hundred and eighteen, and each one more interesting than the other and more strange. But if you want to know the Insect Man really, you must read his stories for yourself and, better still, read them in his lovely French.

"I knew," Geraldine said contentedly, as the door closed, shutting in Fabre's garden, "I knew that there is . . . .

No End."
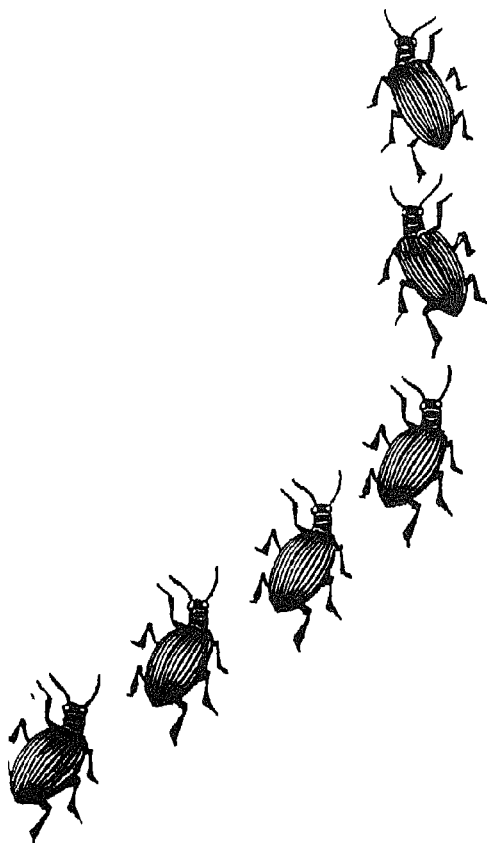
List of References

(The numbers are the reference numbers of the text)

1. Tale of the Cigale, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series V, Chapter XIII.
2. Tale of the Digger-Wasps, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series I, Chapter IV *et seq.*
3. Tale of Malaval, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VI, Chapter III.
4. Tale of the School, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VI, Chapter IV.
5. Tale of the Pond, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VII, Chapter XIX
6. Tale of the Toadstools, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series X, Chapter XIX
7. Tale of the Rodez School, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VI, p. 62
8. Tale of the Turkeys, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VII, p. 33
9. Tale of the Cockchafer, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VII, Chapters XXIV and XXV
10. Tale of the Lesson, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series X, Chapter XXI
11. Tales of Carpentras, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series X, Chapter XXI.
12. Tale of the Mathematics Lesson, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series IX, Chapter XIII.
13. Tale of the Anthrax Fly, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series III, Chapter VII.
14. Tale of the Chinese Pavillion, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series IX, Chapter XIV
15. Tale of the Scorpions, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series IX, Chapter XXI.
16. Tale of Issarts Wood, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series I, Chapter I.

17. Tale of the Sacred Beetle, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series I, Chapter I, Series V, Chapter I *et seq*

18. Tale of Pasteur, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series IX, Chapter XXIII.

19. Tale of the Science Inspector, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series X, Chapter XXII

20 Tale of Duruy, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series X, Chapter XXII.

21. Tale of the Swallows, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series IV, p. 62.

22. Tale of Ventoux, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series I, p. 209 *et seq.*

23. Tale of the Mason-Bees, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series I, p. 347 *et seq*

24. Tale of the Pine Processionary, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VI, p 321 *et seq*

25. Tale of the Harmas, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series II, Chapter I.

26. Tale of the Tarantula, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series II, p. 211.

27 Tale of the Pompilus, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series II, p. 219 *et seq.*

28 Tale of the Praying Mantis, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series V, p 310.

29. Tale of the Cossus, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series X, p 103 *et seq.*

30. Tale of the Peacock Moth, Fabre *Souvenirs Entomologiques*, Series VII, p. 362 *et seq*

31. Tale of the Banded Minim, Fabre, *Souvenirs Entomologiques*, Series VII, p 387 *et seq*